वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला का पुष्प नं. 333
ISBN 978-93-80353-86-9

समयसार मण्डल विधान

–मंगल प्रेरणा –

पूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी

–रचयित्री –

प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चन्दनामती माताजी

प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चन्दनामती माताजी के 23वें दीक्षा दिवस–
श्रावण शु. ग्यारस, 9 अगस्त 2011 के शुभ अवसर पर प्रकाशित

-प्रकाशक-

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान
जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.
फोन नं.- (01233) 280184, 280994
Website : www.jambudweep.org
E-mail : ravindrajain@jambudweep.org

प्रथम संस्करण	वीर नि. सं. 2537	मूल्य
1100 प्रतियाँ	श्रावण शु. 11, 9 अगस्त 2011	60/-रु.

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान द्वारा संचालित

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमाला में दिगम्बर जैन आर्षमार्ग का पोषण करने वाले हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, कन्नड़, अंग्रेजी, गुजराती, मराठी आदि भाषाओं के न्याय, सिद्धान्त, अध्यात्म, भूगोल-खगोल, व्याकरण आदि विषयों पर लघु एवं वृहद् ग्रंथों का मूल एवं अनुवाद सहित प्रकाशन होता है। समय-समय पर धार्मिक लोकोपयोगी लघु पुस्तिकाएं भी प्रकाशित होती रहती हैं।

–: संस्थापिका एवं प्रेरणास्रोत :–

परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी

–: मार्गदर्शन :–

प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चन्दनामती माताजी

–: निर्देशन :–

धर्मदिवाकर पीठाधीश क्षुल्लकरत्न श्री मोतीसागर जी महाराज

–: सम्पादक :–

कर्मयोगी ब्र. रवीन्द्र कुमार जैन

सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

प्रथम संस्करण-1100 प्रतियाँ (सन् 2008)

कम्पोजिंग-ज्ञानमती नेटवर्क
जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.

पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी का मंगल आशीर्वाद

समयसार ग्रंथ आध्यात्मिक ग्रंथराज कहा जाता है। परमपूज्य आचार्यश्री कुन्दकुन्दस्वामी ने आज से दो हजार वर्ष पूर्व 84 पाहुड़ ग्रंथों की रचना की थी उनमें से समयसार का नाम सर्वाधिक प्रसिद्धि को प्राप्त हुआ है। जबकि वास्तविक स्वरूप में मानव जीवन में जितनी आवश्यकता ग्रंथों की है उससे अधिक आवश्यकताग्रंथों की वाणी को जीवन में साकार करने वाले सच्चे गुरुओं की है, क्योंकि बिना मुनियों के मोक्षमार्ग की परम्परा नहीं चल सकती है।

समयसार ग्रंथ का स्वाध्याय मैंने अपने दीक्षित जीवन में पचासों बार किया है और उनकी मूल गाथाओं पर आचार्य श्री अमृतचन्द्रसूरि एवं आचार्य श्री जयसेन स्वामी द्वारा रचित क्रमशः आत्मख्याति एवं तात्पर्यवृत्ति टीकाओं का हिन्दी अनुवाद करते समय अत्यन्त सूक्ष्मता से समस्त विषयों को हृदयंगम किया है। आचार्यदेव ने पूरे समयसार में अनेक स्थानों पर अपनी मूल गाथाओं में ''मुणी'' एवं ''साहू'' शब्द का प्रयोग किया है, जिससे यह स्पष्ट झलकता है कि यह ग्रंथ मात्र दिगम्बर मुनिराजों के लिए लिखा गया है, क्योंकि वे ही अपनी मुनिचर्या का निर्दोष पालन करके समयसार जैसी वीतराग अवस्थारूप आत्मा की स्थिति को प्राप्त कर सकते हैं।

अनेक गुरु भक्त श्रावकों ने मुझसे निवेदन किया कि माताजी! समयसार ग्रंथ पर विधान पूजन की रचना होनी चाहिए। तब मैंने अपनी शिष्या आर्यिका चन्दनामती को प्रेरणा दी कि तुम इस विधान की रचना करो। उन्होंने अति अल्प समय में इस समयसार मण्डल विधान को लिखा है। मुझे विश्वास है कि इस विधान के माध्यम से सभी को जिनेन्द्र भक्ति के साथ-साथ अध्यात्म ग्रंथ के स्वाध्याय का लाभ भी प्राप्त होगा।

विधान की रचयित्री आर्यिका चन्दनामती के लिए मेरा मंगल आशीर्वाद है और यही प्रेरणा है कि वे इसी प्रकार से अपने सरल-सरस शब्दों में आचार्यों की वाणी जन-जन तक पहुँचाने में अपने समय का सदुपयोग करती रहें। सभी ज्ञान पिपासु एवं श्रद्धालु भक्तों को भी देव-शास्त्र-गुरु की भक्ति करते हुए समयसार ग्रंथ का जीवन में सदुपयोग करने हेतु शुभाशीर्वाद है।

सम्पादकीय

–कर्मयोगी ब्र.रवीन्द्र कुमार जैन

आचार्य श्री कुंदकुंददेव विरचित अध्यात्मग्रंथ – समयसार ग्रंथ के ऊपर प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चंदनामती माताजी ने ''समयसार मण्डल विधान'' लिखकर एक नूतन कृति जैन समाज को प्रदान की है। आज पूरे भारत वर्ष में विधानों की धूम मची है। 365 दिन में शायद ही कोई दिन ऐसा होता हो जबकि कहीं न कहीं कोई न कोई विधान अवश्य होते रहते हैं। लोगों को भक्ति रस में ज्यादा आनन्द आता है। भगवान की भक्ति करने से कर्मों की निर्जरा भी होती रहती है। भगवान के दर्शन से अनन्त-अनन्त उपवासों का फल मिलता है। आचार्यश्री पूज्यपाद स्वामी ने भगवान के दर्शन की महत्ता बताते हुए लिखा है –

श्री मुखालोकनादेव, श्रीमुखालोकनं भवेत्।
आलोकन विहीनस्य, तत्सुखावाप्तयः कुतः।।

अर्थात् श्री जिनेन्द्रदेव के मुख का अवलोकन करने से मनुष्य को श्री अर्थात् लक्ष्मी – धन की प्राप्ति होती है और जो भगवान का दर्शन नहीं करते, उनको लक्ष्मी सुख की प्राप्ति कैसे हो सकती है।

वास्तव में देखा जाए तो इस कलियुग में जबकि हीन संहनन है फिर भी साधु पद को धारण करके जो तपस्या करते हैं, वह बहुत दुर्लभ और कठिन है। इसीलिए आज कम समय में कर्मों की निर्जरा ज्यादा हो रही है।

पूज्य आर्यिका श्री चन्दनामती माताजी ने 11 वर्ष की छोटी सी उम्र में ब्रह्मचर्य व्रत लेकर पूज्य ज्ञानमती माताजी के संघ में रहकर खूब ज्ञानाराधना करके अपने ज्ञान का उपयोग करते हुए प्रज्ञा बुद्धि को साहित्यलेखन में लगाया। मनोकामनासिद्धि विधान, दशलक्षण विधान, कल्याण मंदिर विधान, भक्तामर विधान, नवग्रह विधान आदि कई विधानों की रचना की है। सरल भाषा में रचना कर विषयवस्तु को पूर्णरूप से लिखकर दो चार नहीं सौ से अधिक कृतियाँ प्रदान की है और अपनी ओजस्वी वाणी से-मधुर वाणी से पूजन की पंक्तियों को पढ़कर भक्तों को भक्तिरस में आनन्द लेने का सुअवसर प्रदान करती रहती हैं।

पूज्य माताजी इसी तरह से अपने ज्ञान गुण को लेखन के माध्यम से हम सभी को प्रदान करती रहें और सभी लोग उसे पढ़कर, पूजन विधान करके कर्मों की निर्जरा करते हुए एक दिन केवलज्ञान को, मोक्षपद को प्राप्त करें, यही मंगल भावना है। पूज्य माताजी दीर्घायु हों, स्वस्थ रहें, यही जिनेन्द्रदेव से प्रार्थना है।

प्रस्तावना

–आर्यिका सुव्रतमती

मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमो गणी।
मंगलं कुन्दकुन्दाद्यौ, जैन धर्मोऽस्तु मंगलम्।।

भगवान महावीर के बाद गणधरों में गौतम स्वामी और आचार्यों में आचार्यश्री कुन्दकुन्दस्वामी का नाम सर्वोपरि रहा है। जैन परम्परा में समयसार ग्रंथ व आचार्यश्री कुन्दकुन्ददेव का नाम दोनों पर्यायवाची से हो गये हैं। समयसार का व्याख्यान व स्वाध्याय वर्तमान शताब्दी में बहुचर्चित हुआ है। आचार्यश्री कुन्दकुन्ददेव के समयसार ग्रंथ पर 'आचार्यश्री जयसेनस्वामी ने **'तात्पर्यवृत्ति टीका'** लिखी एवं आचार्यश्री अमृतचन्द्रसूरि ने **'आत्मख्याति टीका'** लिखी। अभी तक दोनों आचार्यों की टीका का हिन्दी अनुवाद अलग-अलग ही प्रकाशित हुआ था किन्तु यह पहला अवसर है कि चारित्रचन्द्रिका परमपूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी ने आचार्यश्री जयसेनस्वामी कृत एवं आचार्यश्री अमृतचन्द्रसूरि कृत टीकाओं का भावार्थ, विशेषार्थ के साथ हिन्दी अनुवाद किया है जो कि अध्यात्म-जगत में चार चाँद लगाने वाला कार्य है। पूज्य माताजी द्वारा लिखित यह **''ज्ञान ज्योति हिन्दी टीका''** अनेक तथाकथित अध्यात्मवादियों की भ्रांत धारणाओं को दूर करने में एवं सहज जिज्ञासुओं को समीचीन दिशा बोध प्रदान करने में समर्थ है। इसमें हिन्दी अनुवाद के साथ-साथ भावार्थ, विशेषार्थ एवं गुणस्थानों को रखकर पूज्य माताजी ने आचार्यश्री कुन्दकुन्ददेव के मनोभावों को पूर्णरूपेण स्पष्ट कर दिया है। समयसार ग्रंथ की समस्त गाथाओं का बहुत ही सुन्दर एवं सरल शब्दों में पद्यानुवाद प्रज्ञाश्रमणी पूज्य आर्यिका श्री चंदनामती माताजी ने किया है।

श्री समयसार मण्डल विधान में पूज्य आर्यिका श्री चंदनामती माताजी ने समुच्चयपूजन की स्थापना में लिखा है–

श्री कुन्दकुन्द आचार्य रचित, चौरासी पाहुड़ ग्रंथों में।
है समयसार इक मुख्य ग्रंथ, जो है विभक्त नव तत्त्वों में।।
शुद्धात्म तत्व का सार इसे, पढ़कर जाना जा सकता है।
जो नग्न दिगम्बर मुनियों द्वारा, ही पाला जा सकता है।।

आचार्यश्री कुन्दकुन्द स्वामी ने 84 पाहुड़ ग्रंथ लिखें। किन्तु आज उनके लिखे 9 ग्रंथ ही उपलब्ध हैं– 1. दशभक्ति 2. अष्टपाहुड़ 3. रयणसार

4. मूलाचार 5. द्वादशानुप्रेक्षा 6. नियमसार 7. पंचास्तिकाय 8. प्रवचनसार 9. समयसार। अष्टपाहुड़ ग्रंथ को यदि पृथक्-पृथक् गिने तो 16 ग्रंथ हो जाते हैं। पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी ने इन सभी ग्रंथों में से प्रमुख-प्रमुख 108 गाथाएँ निकालकर 'कुन्दकुन्दमणिमाला' नाम से पुस्तक लिखी है, जो कि सभी के लिए बहुत उपयोगी है।

समयसार ग्रंथ में 10 अधिकार हैं–

1. जीवाधिकार 2. अजीवाधिकार 3. कर्ता-कर्म अधिकार 4. पुण्यपाप अधिकार 5. आस्रव अधिकार 6. संवर अधिकार 7. निर्जरा अधिकार 8. बंधाधिकार 9. मोक्षाधिकार 10. सर्वविशुद्धज्ञानाधिकार।

पूज्य प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चंदनामती माताजी ने इस ''समयसार मण्डल विधान'' में 6 पूजाएँ लिखी हैं। पहली समुच्चय पूजा है। दूसरी पूजन जीवाधिकार और अजीवाधिकार इन दो अधिकारों की सम्मिलित है। इसमें 73 प्राकृत गाथा, उनके पद्यानुवाद एवं मंत्र हैं अर्थात् प्रथम वलय में 73 अर्घ्य हैं। तीसरी पूजन में कर्ताकर्म एवं पुण्य पाप दो अधिकार हैं। इसमें– द्वितीय वलय में 100 गाथा, पद्यानुवाद एवं मंत्र हैं अर्थात् दूसरे वलय में 100 अर्घ्य हैं। चौथी पूजन में 'आस्रव संवर, निर्जरा, बंध' इन चार अधिकारों का वर्णन है इसमें– तीसरे वलय में 141 गाथा, पद्यानुवाद एवं मंत्र हैं अर्थात् तृतीय वलय में 141 अर्घ्य हैं। पाँचवीं पूजनमें मोक्ष व सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार का वर्णन है इसमें– चतुर्थ वलय में 130 गाथा, पद्यानुवाद एवं मंत्र हैं अर्थात् चतुर्थ वलय में 130 अर्घ्य हैं। पुनः अन्तिम छठी पूजा– समयसार के रचयिता आचार्य श्री कुन्दकुन्द स्वामी की है। इस प्रकार चार पूजाओं में कुल मिलाकर 444 अर्घ्य हैं तथा प्रथम एवं अन्तिम पूजन में कोई अलग से अर्घ्य नहीं है अतः इस विधान में कुल मिलाकर छह पूजा है, 6 जयमालाएँ हैं और एक बड़ी जयमाला है।

प्रथम वलय	**–73 अर्घ्य**
द्वितीय वलय	**–100 अर्घ्य**
तृतीय वलय	**–141 अर्घ्य**
चतुर्थ वलय	**–130 अर्घ्य**
	कुल –444 अर्घ्य

पूज्य माताजी ने इस समयसार मण्डल विधान की 6 पूजाओं में ही पूरे समयसार का सार भर दिया है। पूजा की एक-एक जयमाला में सम्पूर्ण विषय

गर्भित है। समुच्चय पूजा की जयमाला में पूज्य माताजी ने लिखा है–

श्री कुन्दकुन्द आचार्य रचित, यह ग्रंथ बड़ा महिमाशाली।
इस ग्रंथ का सच्चा स्वाध्यायी, बन जाता है गुणमणिमाली।।
यह ग्रंथ ''समयप्राभृत'' के नाम, से भी पहचाना जाता है।
इसका रहस्य जो समझ गया, वह आत्मतत्त्व का ज्ञाता है।।

अर्थात् आचार्यश्री कुन्दकुन्ददेवरचित समयसार ग्रंथ बड़ा ही महिमाशाली है, जो इस ग्रंथ का सच्चा स्वाध्यायी है, वह गुणों से सुशोभित हो जाता है। इस ग्रंथ को 'समयप्राभृत' नाम से भी जाना जाता है और जो भी इसके रहस्य को जान जाता है वह आत्मतत्त्व को भी जान जाता है। आत्मा की शुद्ध अवस्था का नाम ही समयसार है। जो कि मुख्यरूप से नग्न दिगम्बर मुनियों द्वारा ही पाला जा सकता है।

पूजा नं.-2 की जयमाला में पूज्य माताजी ने लिखा है–

इस जीव के संग कर्म का है बंध अनादी।
है इसके संग लगी सदा मिथ्यात्व की व्याधी।।
इसमें स्वसमय परसमय की बात कही है।
आत्मा व अनात्मा में भेदज्ञान यही है।।

अर्थात् इस जीव के साथ कर्म का अनादिकाल से संबंध चला आ रहा है। जीव के साथ मिथ्यात्वरूपी व्याधी लगी हुई है। इसी जीव में स्वसमय और परसमय की बात कही है। जो जीव दर्शन, ज्ञान, चारित्र में स्थित है वह स्वसमय है और जो पुद्गल कर्म के प्रदेशों में स्थित है वह परसमय है।

व्यवहारनय से जीव और शरीर एक है, निश्चयनय से जीव और शरीर पृथक्-पृथक् है। इस बात को पूज्य माताजी ने जयमाला में लिखा है–

माता सरस्वती मुझे वरदान दीजिए।
इस ग्रंथ का मैं सार गहूँ ज्ञान दीजिए।।
जीवरु शरीर एक हैं व्यवहार नय कहे।
जीवरु शरीर एक नहिं परमार्थ नय कहे।।

पूजा नं.-3 की जयमाला में कर्ताकर्म और पुण्यपाप अधिकार का वर्णन करते हुए पूज्य माताजी ने लिखा है–

कर्ता कर्म क्रिया के द्वारा आत्मा शुद्ध बनाओ।
समयसार के आराधक, गुरुओं को शीश झुकाओ।।
बोलो समयसार की जय, बोलो महासाधु की जय।।

सुन्दर-सुन्दर तर्जों में लिखा हुआ यह विधान बहुत ही महिमाशाली है। इसे

करने से असंख्य कर्मों की निर्जरा होती है, पुण्यकर्म का आस्रव होता है।

पूजा नं.-4 में आस्रव, संवर, निर्जरा, बंध अधिकार का वर्णन करते हुए पूज्य माताजी ने जयमाला में लिखा है कि मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग ये 4 आस्रव के कारण हैं, इनमें से मिथ्यात्व भाव आस्रव में प्रमुख है, ऐसा समयसार कहता है और आगे बताया कि आस्रव, संवर, निर्जरा, बंध यह क्रम समयसार में बतलाया है जिसे गौतम गणधर के क्रम से श्री कुंदकुंददेव ने समझाया है समयसार को अगर हमने अपने जीवन में साकार कर लिया, तो समझो सब कुछ पा लिया। इन भावों को पूज्य माताजी ने लिखा है–

आस्रव संवर निर्जरा बंध, क्रम समयसार में बतलाया।
गौतम गणधर के क्रम से ही, श्री कुंदकुंद ने समझाया।।
इनकी पूजन करके मेरे, मन में यह भाव उपज आया।
हो समयसार साकार अगर, जीवन में समझो सब पाया।।

पूजा नं.-5 में पूज्य माताजी ने मोक्ष व सर्व विशुद्ध ज्ञान अधिकार का वर्णन करते हुए लिखा है कि जिनशास्त्र का स्वाध्याय ही एक दिन मोक्षमार्ग को दिखाएगा और जो उसे आचरण में लाएगा वह मुनि बन जायेगा और जब तक मुनि न बन सके तब तक उनके गुण गाएंगे। सर्वविशुद्ध अधिकार में लिखा है कि जिस ज्ञान को अर्थात् केवलज्ञान को प्राप्त कर जिनवरों ने शुद्ध पद को प्राप्त कर लिया है उस पद को हम भी क्रम से प्राप्त करेंगे। जयमाला के अंत में पूज्य माताजी ने श्री कुन्दकुन्दाचार्य की सम्पूर्ण गाथाओं को नमन करते हुए लिखाहै–

पूर्णार्घ्य अर्पण कर उभय, अधिकारों को नमन।
सम्पूर्ण गाथा सूत्रों को, शत शत करें वन्दन।।
श्री कुन्दकुन्दाचार्य के, गुण को हम गाएंगे।
सच्चे मन से हम अर्घ्य चढ़ा, ज्ञानामृत पाएंगे।।

पूजा नं. 6 में समयसार ग्रंथ के रचयिता श्री कुन्दकुन्द स्वामी की सुन्दर पूजन लिखी है। इसके बाद बड़ी जयमाला है।

प्रशस्ति में पूज्य माताजी ने लिखा है कि गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी की पावन प्रेरणा से मैंने इस विधान की रचना की है। इस विधान को करके सभी अपने भावों को शुद्ध करें। भावों को शुद्ध करके कभी संसार में भटके नहीं।

श्री गुणभद्रसूरि ने स्वाध्यायी जनों के लिए बड़ी अच्छी बात लिखी है–

शास्त्राग्नौ मणिवद् भव्यः, विशुद्धो भाति निर्वृतः।
अंगारवत् खलो दीप्तो, मली वा भस्म वा भवेत्।।

अर्थात् इस शास्त्ररूपी अग्नि में भव्यजीव मणि के समान शुद्ध होकर निर्वृत्त हो जाता है, किन्तु खल–दुर्जन मनुष्य अंगारे के समान जलकर काला कोयला हो जाता है अथवा राख हो जाता है।

समयसार ग्रंथ में व्यवहारनय की उपयोगिता बताते हुए गाथा नं.-8 में बड़ी अच्छी बात कही है–

जह णवि सक्कमणज्जो, अणज्जभासं विणा उ गाहेउं।
तह ववहारेण विणा, परमत्थुवएसणमसक्कं।।

जिस प्रकार से किसी म्लेच्छ को उसकी भाषा में बोले बिना उसे समझाना शक्य नहीं है उसी प्रकार से व्यवहारनय के बिना परमार्थ का उपदेश ही अशक्य है

समयसार ग्रंथ जैनागम का एक महान ग्रंथ है। ऐसे आध्यात्मिक ग्रंथ पर विधान की रचना करना सरल बात नहीं है। व्यवहारनय और निश्चयनय के गूढ़ रहस्य को समझना-समझाना सभी के वश की बात नहीं है। यह तो पूज्य प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चंदनामती माताजी की प्रतिभाशक्ति है, जो कि उन्होंने इतने सुन्दर ढंग से आध्यात्मिक विषय पर विधान की रचना की है। पूज्य माताजी आशुकवियित्री, प्रभावी वक्ता, कुशल लेखिका हैं, सिद्धहस्त सम्पादिका हैं। आपमें गुरुभक्ति अटूट है। पूज्य माताजी ने आचार्यश्री वीरसागरस्मृति ग्रंथ, आर्यिका रत्नमती अभिनंदनग्रंथ, गणिनी ज्ञानमती गौरवग्रंथ, भगवान पार्श्वनाथ तृतीय सहस्राब्दि ग्रंथ आदि ग्रंथों का बहुत सुन्दर सम्पादन किया है। पूज्य माताजी की लेखनी से अब तक सौ से अधिक पुस्तकें लिखी जा चुकी हैं। सैकड़ों भजन, आरती, चालीसा लिखे जा चुके हैं। मात्र हिन्दी में ही नहीं पूज्य माताजी ने संस्कृत एवं अंग्रेजी में भी अनेक रचनाएँ लिखी हैं।

वर्तमान में आप पूज्य गणिनी श्री ज्ञानमती माताजी द्वारा षट्खण्डागम ग्रंथ पर रचित संस्कृत टीका का हिन्दी अनुवाद कर रही हैं जिनमें दशवें ग्रन्थ तक का अनुवाद पूर्ण हो चुका है एवं आगे का कार्य चल रहा है।

मैं अपने को बहुत ही सौभाग्यशाली मानती हूँ जो कि ऐसी महान प्रतिभा सम्पन्न पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी एवं प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चंदनामती माताजी का सान्निध्य, छत्रछाया और वरदहस्त प्राप्त है। पूज्य माताजी की कृपा प्रसाद से, आशीर्वाद से ही मैं ऐसे महान विधान के बारे में किंचित् लिख सकी हूँ। आगे भी इसी तरह पूज्य माताजी का आशीर्वाद हमेशा प्राप्त होता रहे, यही भगवान से मैं प्रार्थना करती हूँ।

समयसार मण्डल विधान में गाथाओं का क्रम जानें!

–जीवन प्रकाश जैन, जम्बूद्वीप

पूजा-भक्ति के माध्यम से समयसार जैसे महान आध्यात्मिक ग्रंथ का रसास्वादन कराना एक सुखद अनुभूति प्रदान कर रहा है। मैंने बचपन से समयसार का नाम तो सुना था, किन्तु उसके रहस्य से कब परिचित हो पाऊँगा यह चिन्तन भी नहीं कर पाता था।

पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी के सान्निध्य में मुझे इस दुर्लभ ग्रंथ से परिचित होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, जिसे मैं गौरव के साथ अनुभव कर सकता हूँ। उन्होंने समयसार ग्रंथ पर प्रवचन करते समय मुझे भी उसमें बैठने को कहा, तब मैंने देखा कि वे ऐसे उच्चतम विषय को भी किस प्रकार सरलरूप में प्रतिपादित करके सभी को समयसार के रहस्य से परिचित करा रही हैं। उनका कहना है कि जो लोग जिनवाणी के चारों अनुयोगों का स्वाध्याय क्रम से न करके प्रारंभ में ही इस द्रव्यानुयोग के ग्रंथ का स्वाध्याय करना प्रारंभ कर देते हैं वे आचार्य श्री कुन्दकुन्द की व्यवहार एवं निश्चय दोनों नयदृष्टियों का समन्वय न कर पाने के कारण केवल निश्चयावलम्बी बनकर कुन्दकुन्द के पदचिन्हों पर चलने वाले संयमी मुनियों के एवं संयम के प्रति विरक्त हो जाते हैं, जबकि कुन्दकुन्द स्वामी ने स्वयं कहा है कि पंचमकाल के अन्त तक संयम एवं संयमियों का अस्तित्व इस धरती पर रहेगा।

पूज्य आर्यिका श्री चंदनामती माताजी द्वारा रचित इस समयसार मण्डल विधान को करके सभी श्रावक-श्राविकाओं को भी समयसार का दुर्लभ ज्ञान सहज और सरसरूप में प्राप्त होगा। जहाँ विधान के अर्घ्य समयसार की सम्पूर्ण गाथाओं पर आधारित हैं, वहीं पूजन की जयमालाओं में समयसार के अध्यायों में निहित विषयों का सार भरा हुआ है।

गाथाओं की संख्या में अन्तर– गाथाओं की संख्या आदि में अन्तर देखकर यह प्रतीत होता है कि समयसार के प्रथम टीकाकार श्री अमृतचन्द्रसूरि को उस समय 415 गाथाएँ उपलब्ध हुईं अतः उन्होंने 415 गाथा पर संस्कृत में आत्मख्याति टीका लिखी, उस टीका में अनेक काव्यकलशों के द्वारा बहुत ही लालित्य एवं सौंदर्य का समावेश किया है। इनका काल लगभग 10वीं शताब्दी (डॉ. ए.एन. उपाध्ये के अनुसार) का माना जाता है।

पुनः श्री जयसेनाचार्य ने लगभग 12वीं शताब्दी के पूर्वार्ध में (डॉ. ए.एन. उपाध्ये के अनुसार) जब तात्पर्यवृत्ति नाम से संस्कृत की अत्यन्त सरल टीका लिखी तब उन्हें कुछ गाथाएँ और अधिक प्राप्त हुईं जिन्हें उन्होंने अपनी टीका में समाविष्ट किया है। इसीलिए उनकी टीका में 439 की संख्या प्राप्त होती है।

कुल मिलाकर श्री अमृतचंद्रसूरि की टीका में भी कई गाथाएँ अधिक हैं और श्री जयसेनाचार्य की टीका में तो अनेक गाथाएँ अधिक हैं। श्री अमृतचन्द्रसूरि ने पूरे समयसार को नौ अंक-नौ अधिकारों में विभक्त किया है और श्री जयसेनाचार्य ने दश अधिकार किये हैं यह अंतर जीवाजीवाधिकार से ही हो गया है।

इस विधान में श्री जयसेनाचार्य के अनुसार दश अध्यायों में गाथाओं को अर्घ्यरूप में चार वलयों में विभक्त किया है और पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी द्वारा अनुवादित दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर से प्रकाशित समयसार पूर्वार्ध और उत्तरार्ध रूप दो ग्रंथों में सम्पूर्ण गाथाएँ ली गई हैं उसमें यद्यपि अन्तिम गाथा में श्री अमृतचंद्रसूरि के अनुसार 415 नं. एवं श्री जयसेनाचार्य के अनुसार 436 नं. पड़ा है, फिर भी मध्य में जो गाथाएँ अधिक हैं उनमें गाथा नम्बर नहीं पड़ा है, सो उन गाथाओं को भी यथाक्रम से लेकर 444 गाथाएँ पूरी हो गई हैं।

इस विधान को सम्पन्न करके श्रद्धालु भक्तजन समयसार के सार को प्राप्त करें, यही मंगलभावना है।

विधान की प्रेरणास्रोत परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि
श्री ज्ञानमती माताजी का संक्षिप्त-परिचय

–प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चन्दनामती

जन्मस्थान–टिकैतनगर (बाराबंकी) उ.प्र.

जन्मतिथि–आसोज सुदी 15 (शरदपूर्णिमा) वि. सं. 1991, (22 अक्टूबर सन् 1934)

जाति–अग्रवाल दि. जैन, **गोत्र**–गोयल, **नाम**–कु. मैना

माता-पिता–श्रीमती मोहिनी देवी एवं श्री छोटेलाल जैन

आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत–ई. सन् 1952 में बाराबंकी में शरदपूर्णिमा के दिन

क्षुल्लिका दीक्षा–चैत्र कृ. 1, ई. सन् 1953 को महावीरजी अतिशय क्षेत्र (राज.) में आचार्यरत्न श्री देशभूषण जी महाराज से। नाम– क्षुल्लिका वीरमती

आर्यिका दीक्षा–वैशाख कृ. 2, ई. सन् 1956 को माधोराजपुरा (राज.) में चारित्रचक्रवर्ती 108 आचार्य श्री शांतिसागर जी की परम्परा के प्रथम पट्टाधीश आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज के करकमलों से।

साहित्यिक कृतित्व–अष्टसहस्री, समयसार, नियमसार, मूलाचार, कातंत्र-व्याकरण, षट्खण्डागम आदि ग्रंथों के अनुवाद/टीकाएं एवं 250 विशिष्ट ग्रंथों की लेखिका। सन् 1995 में अवध वि.वि. (फैजाबाद) द्वारा "डी.लिट्." की मानद उपाधि से विभूषित।

तीर्थ निर्माण प्रेरणा–हस्तिनापुर में जंबूद्वीप तेरहद्वीप, तीनलोक आदि रचनाओं के निर्माण, शाश्वत तीर्थ अयोध्या का विकास एवं जीर्णोद्धार, प्रयाग-इलाहाबाद (उ.प्र.) में तीर्थंकर ऋषभदेव तपस्थली तीर्थ का निर्माण, तीर्थंकर जन्मभूमियों का विकास यथा- भगवान महावीर जन्मभूमि कुण्डलपुर (नालंदा-बिहार) में 'नंद्यावर्त महल' नामक तीर्थ निर्माण, भगवान पुष्पदंतनाथ की जन्मभूमि काकन्दी तीर्थ (निकट गोरखपुर-उ.प्र.) का विकास, भगवान पार्श्वनाथ केवलज्ञानभूमि अहिच्छत्र तीर्थ पर तीस चौबीसी मंदिर, हस्तिनापुर में जम्बूद्वीप स्थल पर भगवान शांतिनाथ-कुंथुनाथ-अरहनाथ की 31-31 फुट उत्तुंग खड्गासन प्रतिमा, मांगीतुंगी में निर्माणाधीन 108 फुट उत्तुंग भगवान ऋषभदेव की विशाल प्रतिमा इत्यादि।

महोत्सव प्रेरणा–पंचवर्षीय जम्बूद्वीप महामहोत्सव, भगवान ऋषभदेव अंतर्राष्ट्रीय निर्वाण महामहोत्सव, अयोध्या में भगवान ऋषभदेव महाकुंभ मस्तकाभिषेक, कुण्डलपुर महोत्सव, भगवान पार्श्वनाथ जन्मकल्याणक तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव, दिल्ली में कल्पद्रुम महामण्डलविधान का ऐतिहासिक आयोजन इत्यादि। **विशेषरूप से 21 दिसम्बर 2008 को जम्बूद्वीप स्थल पर विश्वशांति अहिंसा सम्मेलन का आयोजन हुआ, जिसका उद्घाटन भारत की राष्ट्रपति श्रीमती प्रतिभादेवीसिंह पाटील द्वारा किया गया।**

शैक्षणिक प्रेरणा–'जैन गणित और त्रिलोक विज्ञान' पर अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी, राष्ट्रीय कुलपति सम्मेलन, इतिहासकार सम्मेलन, न्यायाधीश सम्मेलन एवं अन्य अनेक राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय स्तर के सेमिनार आदि।

रथ प्रवर्तन प्रेरणा–जम्बूद्वीप ज्ञानज्योति (1982 से 1985), समवसरण श्रीविहार (1998 से 2002), महावीर ज्योति (2003-2004) का भारत भ्रमण।

इस प्रकार नित्य नूतन भावनाओं की जननी पूज्य माताजी चिरकाल तक इस वसुधा को सुशोभित करती रहें, यही मंगल कामना है।

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान-संक्षिप्त परिचय

–पीठाधीश क्षुल्लक मोतीसागर

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान की स्थापना पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी की प्रेरणा से सन् 1972 में राजधानी दिल्ली में हुई थी। संस्थान का मुख्य कार्यालय सन् 1974 से हस्तिनापुर में प्रारंभ हुआ। इस संस्थान के अन्तर्गत अनेक गतिविधियाँ हस्तिनापुर में तथा अन्यत्र चल रही हैं–

1. सन् 1972 से वीर ज्ञानोदय ग्रंथमाला के अन्तर्गत लाखों ग्रंथ प्रकाशित हो रहे हैं।

2. सन् 1974 से इस संस्थान के मुखपत्र के रूप में 'सम्यग्ज्ञान' हिन्दी मासिक पत्रिका का निरंतर प्रकाशन हो रहा है।

3. सन् 1974 से 1985 तक हस्तिनापुर में जम्बूद्वीप रचना का निर्माण कार्य हुआ।

4. सन् 1974 से अब तक जम्बूद्वीप रचना के अतिरिक्त अनेक जिनमंदिरों का निर्माण हुआ है–कमल मंदिर, तीन मूर्ति मंदिर, ध्यान मंदिर, शांतिनाथ मंदिर, वासुपूज्य मंदिर, ॐ मंदिर, सहस्रकूट मंदिर, विद्यमान बीस तीर्थंकर मंदिर, आदिनाथ मंदिर, अष्टापद मंदिर, ऋषभदेव कीर्तिस्तंभ, स्वर्णिम तेरहद्वीप रचना, नवग्रहशांति जिनमंदिर, तीन लोक रचना एवं श्री शांतिनाथ-कुंथुनाथ-अरहनाथ की 31-31 फुट उत्तुंग प्रतिमाओं की स्थापना ।

5. जम्बूद्वीप पुस्तकालय जिसमें लगभग 15000 ग्रंथ संग्रहीत हैं।

6. णमोकार महामंत्र बैंक जिसमें भक्तों द्वारा लिखकर भेजे गये करोड़ों णमोकार मंत्र जमा किये जाते हैं।

7. समय-समय पर शिक्षण-प्रशिक्षण शिविरों तथा संगोष्ठियों के आयोजन किये जाते हैं।

8. यात्रियों के शुद्ध भोजन के लिए राजा श्रेयांस भोजनालय का संचालन।

9. यात्रियों के ठहरने के लिए आधुनिक सुविधायुक्त डीलक्स फ्लैट्स वाली नई धर्मशालाओं तथा कोठियों एवं बंगलों का निर्माण किया गया है।

10. जम्बूद्वीप परिक्रमा के लिए नौका विहार, ऐरावत हाथी तथा मनोरंजन हेतु मिनी ट्रेन, झूले आदि हैं।

11. ज्ञानमती कला मंदिरम् में हस्तिनापुर के प्राचीन इतिहास से संबंधित झाँकियाँ हैं।

12. तीर्थंकर जन्मभूमियों की वंदना एवं धार्मिक फिल्मों का प्रदर्शन करने वाले थियेटर से समन्वित गणिनी ज्ञानमती हीरक जयंती एक्सप्रेस।

दिल्ली, मेरठ, मुजफ्फरनगर, हरिद्वार, झाँसी, तिजारा आदि से जम्बूद्वीप स्थल तक आने के लिए दिन भर बसें मिलती रहती हैं।

दि. जैन त्रिलोक शोध संस्थान के अन्तर्गत भगवान महावीर जन्मभूमि कुण्डलपुर (नालंदा) बिहार में भव्य ''नंद्यावर्त महल'' तथा प्रयाग-इलाहाबाद (उ.प्र.) में निर्मित तीर्थंकर ऋषभदेव तपस्थली तीर्थ का भी संचालन होता है।

जम्बूद्वीप एवं अन्य रचनाओं के दर्शन हेतु हस्तिनापुर पधारकर आध्यात्मिक एवं भौतिक सुख की प्राप्ति करें।

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला के शिरोमणि संरक्षक

1. श्रीमती निर्मला जैन ध.प. स्व. श्री प्रेमचन्द्र जैन, तत्पुत्र प्रदीप कुमार जैन, खी बावली, दिल्ली-6।
2. श्रीमती सुमन जैन ध.प. श्री दिग्विजय सिंह जैन, इंदौर।
3. श्री महावीर प्रसाद जैन संघपति, जी-19, साऊथ एक्सटेन्शन, नई दिल्ली।
4. श्री महेन्द्र पाल हरेन्द्र कुमार जैन, सूरजमल विहार, दिल्ली।
5. श्रीमती मोहनी जैन ध.प. श्री सुनील जैन, प्रीत विहार, दिल्ली।
6. श्री देवेन्द्र कुमार जैन (धारूहेड़ा वाले) गुड़गाँव (हरि.)।
7. श्रीमती शारदा रानी जैन ध.प. स्व. रिखबचंद जैन, बाहुबली एन्क्लेव, दिल्ली-92।
8. डॉ. देवेन्द्र कुमार जैन, भोपाल (म.प्र.)
9. श्रीमती संगीता जैन ध.प. श्री संजीव कुमार जैन, शेरकोट (बिजनौर) उ.प्र.
10. श्री अनिल कुमार जैन, दरियागंज, दिल्ली
11. श्री बी.डी. मदनाइक, मुम्बई
12. श्री धनकुमार जैन, बाहुबली एन्क्लेव, दिल्ली-92।
13. श्री जितेन्द्र कुमार जैन एवं श्रीमती सुनीता जैन कोटड़िया, फ्लोरिडा, यू.एस.ए.
14. श्रीमती विमला देवी जैन ध.प. श्री ओमप्रकाश जैन, स्वालिक नगर, हरिद्वार (उत्तराखंड)।
15. श्री अमित जैन एवं संभव जैन सुपुत्र श्रीमती अनीता जैन ध.प. श्री मूलचंद जैन पाटनी, दिसपुर (कामरूप) आसाम।
16. श्रीमती अजित कुमारी जैन ध.प. श्री महेन्द्र कुमार जैन, ओबेदुल्लागंज (रायसेन) म.प्र.।
17. श्री नाभिकुमार जैन, जैन बुक डिपो, सी-4, पी.वी.आर. प्लाजा के पीछे, कनॅट प्लेस, नई दिल्ली।

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला के परम संरक्षक

1. श्री माँगीलाल बाबूलाल पहाड़े, हैदराबाद (आन्ध्र प्रदेश)।
2. डॉ. प्रकाशचन्द्र जैन, 792 विवेकानंदपुरी, सिविल लाइन, सीतापुर (उ.प्र.)।
3. श्री सुमत प्रकाश जैन, गज्जू कटरा, शाहदरा, दिल्ली।
4. श्री सुनील कुमार जैन, द्वारा-सुनील टैक्सटाईल्स, सरधना (मेरठ) उ.प्र.।
5. स्व. श्री प्रकाश चंद अमोलक चंद जैन सर्राफ, सनावद (म.प्र.)।
6. श्री प्रद्युम्न कुमार जवेरी, रोकड़ियालेन, बोरीवली (वेस्ट) मुंबई।
7. श्रीमती उर्मिला देवी ध.प. श्री कान्ती प्रसाद जैन, ऋषभ विहार, दिल्ली।
8. श्रीमती उषा जैन ध.प. श्री विमल प्रसाद जैन, ऋषभ विहार, दिल्ली।
9. श्री आनन्द प्रकाश जैन (सौरम वाले) , गांधीनगर, दिल्ली।
10. श्रीमती सरिता जैन ध.प. श्री राजकुमार जैन, किदवई नगर, कानपुर।
11. स्व. श्रीमती कैलाशवती ध.प. श्री कैलाश चन्द्र जैन , तोपखाना बाजार, मेरठ।
12. श्री भानेन्द्र कुमार जैन, द्वारा-श्री विद्या जैन, भगत सिंह मार्ग, जयपुर।
13. श्री प्रदीप कुमार शान्तिलाल बिलाला, अनूपनगर, इंदौर, (म.प्र.)।
14. श्री सुरेशचंद पवन कुमार जैन, बाराबंकी (उ.प्र.)।
15. श्री नथमल पारसमल जैन, कलकत्ता-7।
16. श्रीमती स्व. शांताबाई ध.प. श्री कमलचंद जैन, सनावद (म.प्र.)।
17. श्री रूपचंद जैन कटारिया, दिल्ली
18. श्री आशु जैन, कालका जी, नई दिल्ली

समयसार मण्डल विधान का नक्शा

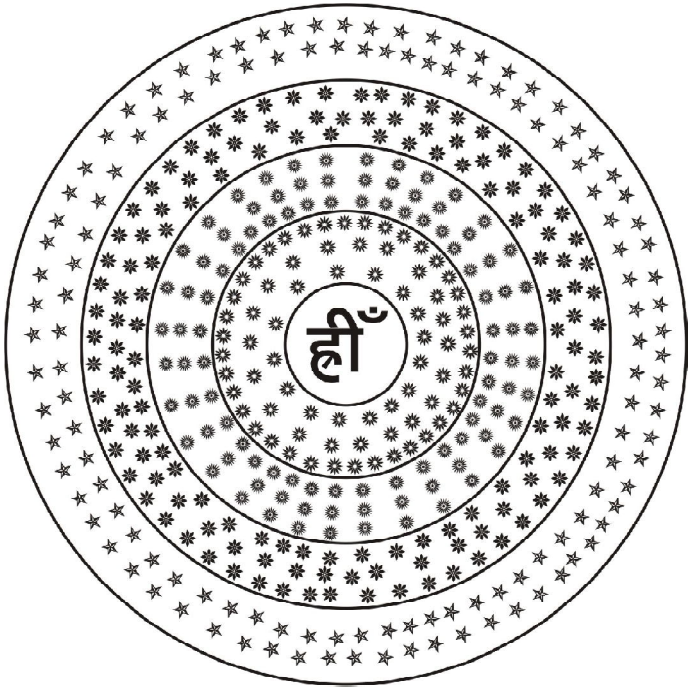

विषय-सूची

पूजा नं.	पूजा	पृष्ठ
1.	समुच्चय पूजन	1
2.	जीवाधिकार एवं अजीवाधिकार पूजन	8
3.	कर्ता-कर्म अधिकार एवं पुण्य-पाप अधिकार पूजा	41
4.	आस्रव-संवर-निर्जरा-बंध अधिकार पूजा	87
5.	मोक्ष अधिकार एवं सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार पूजा	149
6.	आचार्य श्री कुन्दकुन्द स्वामी पूजा	207
7.	बड़ी जयमाला	211
8.	प्रशस्ति	213
9.	समयसार मण्डल विधान की आरती	214
10.	समयसार भजन	215
11.	समयसार भजन	216

समर्पण

जिन्होंने कलिकाल सर्वज्ञ श्री कुन्दकुन्दाचार्य रचित
अध्यात्म ग्रंथ समयसार का शताधिक बार स्वाध्याय कर
उसके समीचीन सार को ग्रहण किया है।
समयसार की गाथाओं पर
आचार्य श्री अमृतचन्द्रसूरि द्वारा रचित आत्मख्याति टीका
एवं श्री जयसेनाचार्य द्वारा रचित तात्पर्यवृत्ति टीका
इन दोनों संस्कृत टीकाओं की ज्ञानज्योति हिन्दी
टीका करके आर्ष परम्परा का कीर्तिमान स्थापित किया है।
आस्था टी.वी. चैनल, पारस चैनल एवं
इंटरनेट के माध्यम से देश-विदेश के
ज्ञानपिपासु श्रद्धालु भक्तों को समयसार
का अध्ययन कराकर ज्ञानामृत प्रदान किया है
ऐसी इस युग की माता सरस्वती स्वरूपा
दिगम्बर जैन समाज की सर्वोच्च साध्वी
इस समयसार विधान लेखन की संप्रेरिका

युगप्रवर्तिका चारित्रचन्द्रिका वाग्देवी
परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि
श्री ज्ञानमती माताजी

के पवित्र करकमलों में

श्री समयसार विधान

नामक आध्यात्मिक भक्तिकाव्यकृति को
त्रिकरण शुद्धिपूर्वक समर्पित करके अपनी रत्नत्रय
से पवित्र काया को समयसारमयी
बनाने हेतु आशीर्वाद आकांक्षा के साथ-

श्रावण शु. एकादशी
9 अगस्त 2011

आर्यिका चंदनामती

श्री समयसार महाग्रंथ पूजन

पूजा नं.-1

(समुच्चय पूजन)

-स्थापना (शंभु छंद)-

श्री कुन्दकुन्द आचार्य रचित, चौरासी पाहुड़ ग्रंथों में।
है समयसार इक मुख्य ग्रंथ, जो है विभक्त नवतत्त्वों में।।
शुद्धात्मतत्व का सार इसे, पढ़कर जाना जा सकता है।
जो नग्न दिगम्बर मुनियों द्वारा, ही पाला जा सकता है।।1।।

-दोहा-

समयसार की अर्चना, करे शुद्ध नित भाव।
आह्वानन स्थापना, दे शुद्धातम भाव।।1।।

ॐ ह्रीं शुद्धात्मभावप्रतिपादकश्रीसमयसारग्रंथराज! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं।

ॐ ह्रीं शुद्धात्मभावप्रतिपादकश्रीसमयसारग्रंथराज! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं।

ॐ ह्रीं शुद्धात्मभावप्रतिपादकश्रीसमयसारग्रंथराज! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधीकरणं।

-अथ अष्टक-

तर्ज-ये क्या है.....

हम समयसार की पूजा करने आए हैं।
बन अन्तरात्म शुद्धात्म भावना लाए हैं।।
यह क्या है? जिनवाणी है, प्रभु कुन्दकुन्द की वाणी है।
यह समतारस निर्झरिणी है, शिवधाम हेतु यह सरणी है।। यह क्या है...।।
।।टेक.।।

गंगाजलधारा श्रुत के लिए समर्पित है।
मिट जाय जन्म मृति रोग भाव यह अर्पित है।।
यह क्या है? जिनवाणी है, प्रभु कुन्दकुन्द की वाणी है।
यह समतारस निर्झरिणी है, शिवधाम हेतु यह सरणी है।। यह क्या है..।।1।।

ॐ ह्रीं शुद्धात्मभावप्रतिपादकश्रीसमयसाराय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।।1।।

हम समयसार की पूजा करने आए हैं।
बन अन्तरात्म शुद्धात्म भावना लाए हैं।।
यह क्या है? जिनवाणी है, प्रभु कुन्दकुन्द की वाणी है।
यह समतारस निर्झरिणी है, शिवधाम हेतु यह सरणी है।। यह क्या है...

मलयागिरि चन्दन श्रुत के लिए समर्पित है।
भवताप नष्ट हो जाय भाव यह अर्पित है।।
यह क्या है? जिनवाणी है, प्रभु कुन्दकुन्द की वाणी है।
यह समतारस निर्झरिणी है, शिवधाम हेतु यह सरणी है।। यह क्या है..।।2।।

ॐ ह्रीं शुद्धात्मभावप्रतिपादकश्रीसमयसाराय संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।।2।।

हम समयसार की पूजा करने आए हैं।
बन अन्तरात्म शुद्धात्म भावना लाए हैं।।
यह क्या है? जिनवाणी है, प्रभु कुन्दकुन्द की वाणी है।
यह समतारस निर्झरिणी है, शिवधाम हेतु यह सरणी है।। यह क्या है....

मोती सम तन्दुल श्रुत के लिए समर्पित हैं।
अक्षय पद पाने हेतु भाव शुभ अर्पित हैं।।
यह क्या है? जिनवाणी है, प्रभु कुन्दकुन्द की वाणी है।
यह समतारस निर्झरिणी है, शिवधाम हेतु यह सरणी है।। यह क्या है..।।3।।

ॐ ह्रीं शुद्धात्मभावप्रतिपादकश्रीसमयसाराय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।।3।।

हम समयसार की पूजा करने आए हैं।
बन अन्तरात्म शुद्धात्म भावना लाए हैं।।
यह क्या है? जिनवाणी है, प्रभु कुन्दकुन्द की वाणी है।
यह समतारस निर्झरिणी है, शिवधाम हेतु यह सरणी है।। यह क्या है...
फूलों की माला श्रुत के लिए समर्पित है।
विषयों की आशा मिटे भाव यह अर्पित है।।
यह क्या है? जिनवाणी है, प्रभु कुन्दकुन्द की वाणी है।
यह समतारस निर्झरिणी है, शिवधाम हेतु यह सरणी है।। यह क्या है.....।।4।।

ॐ ह्रीं शुद्धात्मभावप्रतिपादकश्रीसमयसाराय कामबाणविनाशनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।।4।।

हम समयसार की पूजा करने आए हैं।
बन अन्तरात्म शुद्धात्म भावना लाए हैं।।
यह क्या है? जिनवाणी है, प्रभु कुन्दकुन्द की वाणी है।
यह समतारस निर्झरिणी है, शिवधाम हेतु यह सरणी है।। यह क्या है...
नैवेद्य थाल यह श्रुत के लिए समर्पित है।
क्षुधरोग विनाशन हेतु भावना अर्पित है।।
यह क्या है? जिनवाणी है, प्रभु कुन्दकुन्द की वाणी है।
यह समतारस निर्झरिणी है, शिवधाम हेतु यह सरणी है।। यह क्या है.....।।5।।

ॐ ह्रीं शुद्धात्मभावप्रतिपादकश्रीसमयसाराय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।।5।।

हम समयसार की पूजा करने आए हैं।
बन अन्तरात्म शुद्धात्म भावना लाए हैं।।

यह क्या है? जिनवाणी है, प्रभु कुन्दकुन्द की वाणी है।
यह समतारस निर्झरिणी है, शिवधाम हेतु यह सरणी है।। यह क्या है...
घृत दीपक श्रुत की आरति हेतु समर्पित है।
मोहान्धकार नश जाय भाव यह अर्पित है।।
यह क्या है? जिनवाणी है, प्रभु कुन्दकुन्द की वाणी है।
यह समतारस निर्झरिणी है, शिवधाम हेतु यह सरणी है।। यह क्या है....।।6।।

ॐ ह्रीं शुद्धात्मभावप्रतिपादकश्रीसमयसाराय मोहांधकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।।6।।

हम समयसार की पूजा करने आए हैं।
बन अन्तरात्म शुद्धात्म भावना लाए हैं।।
यह क्या है? जिनवाणी है, प्रभु कुन्दकुन्द की वाणी है।
यह समतारस निर्झरिणी है, शिवधाम हेतु यह सरणी है।। यह क्या है...
श्रुत पूजन हित कृष्णागरु धूप समर्पित है।
हों कर्मनाश बस शीघ्र भाव यह अर्पित है।।
यह क्या है? जिनवाणी है, प्रभु कुन्दकुन्द की वाणी है।
यह समतारस निर्झरिणी है, शिवधाम हेतु यह सरणी है।। यह क्या है....।।7।।

ॐ ह्रीं शुद्धात्मभावप्रतिपादकश्रीसमयसाराय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।।7।।

हम समयसार की पूजा करने आए हैं।
बन अन्तरात्म शुद्धात्म भावना लाए हैं।।
यह क्या है? जिनवाणी है, प्रभु कुन्दकुन्द की वाणी है।
यह समतारस निर्झरिणी है, शिवधाम हेतु यह सरणी है।। यह क्या है...
फल थाल हमारा श्रुत के लिए समर्पित है।
शिवफल की होवे प्राप्ति भाव यह अर्पित है।।
यह क्या है? जिनवाणी है, प्रभु कुन्दकुन्द की वाणी है।
यह समतारस निर्झरिणी है, शिवधाम हेतु यह सरणी है।। यह क्या है.....।।8।।

ॐ ह्रीं शुद्धात्मभावप्रतिपादकश्रीसमयसाराय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।।8।।

हम समयसार की पूजा करने आए हैं।
बन अन्तरात्म शुद्धात्म भावना लाए हैं।।
यह क्या है ? जिनवाणी है, प्रभु कुन्दकुन्द की वाणी है।
यह समतारस निर्झरिणी है, शिवधाम हेतु यह सरणी है।। यह क्या है...
यह अर्घ्यथाल श्रुत पूजन हेतु समर्पित है।
''चन्दनामती'' भावों की श्रद्धा अर्पित है।।
यह क्या है ? जिनवाणी है, प्रभु कुन्दकुन्द की वाणी है।
यह समतारस निर्झरिणी है, शिवधाम हेतु यह सरणी है।। यह क्या है....।।9।।

ॐ ह्रीं शुद्धात्मभावप्रतिपादकश्रीसमयसाराय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।9।।

-दोहा-

कंचन झारी में भरा, प्रासुक गंगा नीर।
जलधारा श्रुत के लिए, करती भवदधि तीर।।10।।

शांतये शांतिधारा

विविध वर्ण के पुष्प ले, श्रुत को दिया चढ़ाय।
यह पुष्पांजलि हृदय में, दे गुण पुष्प खिलाय।।11।।

दिव्य पुष्पांजलिः

जाप्य मंत्र—**ॐ ह्रीं शुद्धात्मभावप्रतिपादकश्रीसमयसारग्रंथाय नमः।**

जयमाला

-शंभु छंद-

श्री समयसार की पूजन से, आध्यात्मिक सुख मिल जाता है।
पूर्णार्घ्य थाल के अर्पण से, भव्यों का मन खिल जाता है।।
श्री कुन्दकुन्द आचार्य रचित, यह ग्रंथ बड़ा महिमाशाली।
इस ग्रंथ का सच्चा स्वाध्यायी, बन जाता है गुणमणिमाली।।1।।

ध्रुव अचल सिद्धपद प्राप्त सभी, सिद्धों को प्रथम नमन करके।
श्रुतकेवलि के वचनानुसार, आगम प्रमाण बतला करके।।

यह ग्रंथ समयप्राभृत के नाम से, भी पहचाना जाता है।
इसका रहस्य जो समझ गया, वह आत्मतत्त्व का ज्ञाता है।।2।।

आचार्यदेव कहते इसमें, आतम स्वभाव को पहचानो।
व्यवहार क्रिया पालन करके, तुम निश्चयनय को सरधानो।।
इस जग में काल अनादी से, हैं काम भोग अरु बन्ध कथा।
इन सर्व सुलभ आचरणों को, पालन कर खोया जन्म वृथा।।3।।

हे भव्यात्मन् ! दुर्लभ जग में, है आत्मतत्त्व की पुण्यकथा।
उस कथा को सुनकर ग्रहण करो, तो टल जाए भव व्याधि व्यथा।।
आत्मा शरीर हैं भिन्न भिन्न, बस यही भेदविज्ञान कहा।
कुछ जानो या मत जानो तुम, बस यह ही सच्चा ज्ञान कहा।।4।।

दश अधिकारों में है विभक्त, यह समयसार श्री ग्रंथराज।
श्री कुंदकुंद आचार्य कथित, तत्त्वों का क्रम भी सुनें आज।।
अधिकार प्रथम एवं द्वितीय में, जीव-अजीव को कहा गया।
उसके आगे कर्ता व कर्म, अधिकार तीसरा कहा गया।।5।।

फिर चौथे में है पुण्य-पाप, आश्रव पंचम अधिकार कहा।
संवर छट्ठा निर्जरा पुनः, बंधाधिकार अष्टम में रहा।।
मोक्षाधिकार नवमां पढ़कर, आगे दशवां अधिकार पढ़ो।
जो सर्व विशुद्ध ज्ञानमय है, इसको पढ़ ज्ञान विकास करो।।6।।

इस तरह चार सौ चव्वालिस, गाथाओं में यह ग्रंथ कहा।
इस समयसारमय बन करके, मुनियों ने आतम तत्त्व लहा।।
इसका अध्ययन करें हम भी, दोनों नय का आश्रय लेकर।
नहिं शास्त्र शस्त्र बन जाय कभी, यह लक्ष्य रहे मन के अन्दर।।7।।

सम्यग्दर्शन के साथ ज्ञान चारित्र कार्यकारी होंगे।
व्यवहार रत्नत्रय के पालक निश्चय के अधिकारी होंगे।।
इस समयसार की पूजन में, पूर्णार्घ्य थाल यह अर्पण है।
''चन्दनामती'' रत्नत्रयमय भावों का अर्घ्य समर्पण है।।8।।

-सोरठा-

जयमाला के साथ, अष्ट द्रव्य अर्पण करूँ।
हे जिनवाणी मात, वर दो मैं अध्यन करूँ।।9।।

ॐ ह्रीं शुद्धात्मभावप्रतिपादकश्रीसमयसारमहाग्रंथाय जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शांतये शांतिधारा, दिव्य पुष्पांजलिः।

-दोहा-

समयसार का सार ही, है जीवन का सार।
शेष द्रव्य का भार है, जीवन में निस्सार।।

।। इत्याशीर्वादः, पुष्पांजलिः ।।

(पूजा नं.-2)

जीवाधिकार एवं अजीवाधिकार पूजन

स्थापना –अडिल्ल छन्द

समयसार के दश अधिकारों में प्रथम।
और दुतिय अधिकार का इसमें है कथन।।
इसका अर्चन भेदज्ञान प्रगटाएगा।
पूजक तो श्रुतपूजन का फल पाएगा।।1।।

-दोहा-

समयसार की अर्चना, करे शुद्ध नित भाव।
आह्वानन स्थापना, दे शुद्धातम भाव।।2।।

ॐ ह्रीं जीवाधिकार-अजीवाधिकारसमन्वित श्रीसमयसार ग्रंथराज! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं।

ॐ ह्रीं जीवाधिकार-अजीवाधिकारसमन्वित श्रीसमयसार ग्रंथराज! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।

ॐ ह्रीं जीवाधिकार-अजीवाधिकारसमन्वित श्रीसमयसार ग्रंथराज! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्।

-अष्टक-

तर्ज - देखो तेरहद्वीप के अन्दर.....

कर लो समयसार की पूजन, अद्भुत आनंद आएगा। कर लो....
जीव-अजीव नाम के दो, अधिकार का इसमें सार कहा-2।
कर लो इसका अध्यन अर्चन, अद्भुत आनन्द आएगा।।कर लो...।। 1।।
कंचनझारी में प्रासुक जल, ले जलधारा करना है-2।
जनम मरण हो जाय विनाशन, अद्भुत आनंद आएगा।। कर लो...।। 2।।

ॐ ह्रीं जीवाधिकार-अजीवाधिकारसमन्वित श्रीसमयसाराय जन्मजरामृत्यु-विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।।1।।

कर लो समयसार की पूजन, अद्भुत आनंद आएगा।.... कर लो....

जीव-अजीव नाम के दो, अधिकार का इसमें सार कहा-2।
कर लो इसका अध्यन अर्चन, अद्भुत आनन्द आएगा।।कर लो...।। 1।।
काश्मीरी केशर घिस करके, श्रुत का अर्चन करना है-2।
भव आतप हो जाय विनाशन, अद्भुत आनंद आएगा।।कर लो...।। 2।।

ॐ ह्रीं जीवाधिकार-अजीवाधिकारसमन्वित श्रीसमयसाराय संसारताप-विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।।2।।

कर लो समयसार की पूजन, अद्भुत आनंद आएगा।.... कर लो....
जीव-अजीव नाम के दो, अधिकार का इसमें सार कहा-2।
कर लो इसका अध्यन अर्चन, अद्भुत आनन्द आएगा।।कर लो...।। 1।।
शुभ्र धवल अक्षत लेकर के, चार पुंज को धरना है-2।
अक्षय पद मिल जावे मुझको, अद्भुत आनंद आएगा।।कर लो...।। 2।।

ॐ ह्रीं जीवाधिकार-अजीवाधिकारसमन्वित श्रीसमयसाराय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।।3।।

कर लो समयसार की पूजन, अद्भुत आनंद आएगा।.... कर लो....
जीव-अजीव नाम के दो, अधिकार का इसमें सार कहा-2।
कर लो इसका अध्यन अर्चन, अद्भुत आनन्द आएगा।।कर लो...।। 1।।
चंप चमेली आदि पुष्प ले, श्रुत का अर्चन करना है-2।
कामबाण का करूँ विनाशन, अद्भुत आनंद आएगा।।कर लो...।। 2।।

ॐ ह्रीं जीवाधिकार-अजीवाधिकारसमन्वित श्रीसमयसाराय कामबाण-विनाशनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।।4।।

कर लो समयसार की पूजन, अद्भुत आनंद आएगा।.... कर लो....
जीव-अजीव नाम के दो, अधिकार का इसमें सार कहा-2।
कर लो इसका अध्यन अर्चन, अद्भुत आनन्द आएगा।।कर लो...।। 1।।
पकवान्नों का थाल सजाकर, श्रुत का पूजन करना है-2।
मेरा हो क्षुधरोग विनाशन, अद्भुत आनंद आएगा।।कर लो...।। 2।।

ॐ ह्रीं जीवाधिकार-अजीवाधिकारसमन्वित श्रीसमयसाराय क्षुधारोग-विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।।5।।

कर लो समयसार की पूजन, अद्भुत आनंद आएगा।.... कर लो....
जीव-अजीव नाम के दो, अधिकार का इसमें सार कहा-2।
कर लो इसका अध्यन अर्चन, अद्भुत आनन्द आएगा।।कर लो...।। 1।।
कंचनथाल में घृत दीपक ले, श्रुत की आरति करना है-2।
मोहकर्म हो जाय विनाशन, अद्भुत आनंद आएगा।।कर लो...।। 2।।

ॐ ह्रीं जीवाधिकार-अजीवाधिकारसमन्वित श्रीसमयसाराय मोहांधकार-विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।।7।।

कर लो समयसार की पूजन, अद्भुत आनंद आएगा।.... कर लो....
जीव-अजीव नाम के दो, अधिकार का इसमें सार कहा-2।
कर लो इसका अध्यन अर्चन, अद्भुत आनन्द आएगा।।कर लो...।। 1।।
धूप अग्नि में प्रज्वलित कर, श्रुत सुगंध को पाना है-2।
अष्टकर्म हो जायें विनाशन, अद्भुत आनंद आएगा।।कर लो...।। 2।।

ॐ ह्रीं जीवाधिकार-अजीवाधिकारसमन्वित श्रीसमयसाराय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।।8।।

कर लो समयसार की पूजन, अद्भुत आनंद आएगा।कर लो....
जीव-अजीव नाम के दो, अधिकार का इसमें सार कहा-2।
कर लो इसका अध्यन अर्चन, अद्भुत आनन्द आएगा।।कर लो...।। 1।।
सेव आम्र अंगूर फलों से, श्रुत का अर्चन करना है-2।
मोक्ष महाफल की प्राप्ति कर, अद्भुत आनंद आएगा।।कर लो...।। 2।।

ॐ ह्रीं जीवाधिकार-अजीवाधिकारसमन्वित श्रीसमयसाराय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।।8।।

कर लो समयसार की पूजन, अद्भुत आनंद आएगा।.... कर लो....
जीव-अजीव नाम के दो, अधिकार का इसमें सार कहा-2।
कर लो इसका अध्यन अर्चन, अद्भुत आनन्द आएगा।।कर लो...।। 1।।
अर्घ्य थाल 'चन्दनामती', श्रुत सम्मुख अर्पित करना है-2।
पद अनर्घ्य की प्राप्ती करके, अद्भुत आनंद आएगा।।कर लो...।। 2।।

ॐ ह्रीं जीवाधिकार-अजीवाधिकारसमन्वित श्रीसमयसाराय अनर्घ्यपद-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।9।।

कर लो समयसार की पूजन, अद्भुत आनंद आएगा।.... कर लो....
जीव-अजीव नाम के दो, अधिकार का इसमें सार कहा-2।
कर लो इसका अध्यन अर्चन, अद्भुत आनन्द आएगा।।कर लो...।। 1।।
स्वर्ण कलश में प्रासुक जल ले, शांतीधारा करना है-2।
आत्मशांति अरु विश्वशांति हो, अद्भुत आनंद आएगा।।कर लो...।। 2।।

शांतये शांतिधारा

कर लो समयसार की पूजन, अद्भुत आनंद आएगा।.... कर लो....
जीव-अजीव नाम के दो, अधिकार का इसमें सार कहा-2।
कर लो इसका अध्यन अर्चन, अद्भुत आनन्द आएगा।।कर लो...।। 1।।
विविध पुष्प अंजुलि में भरकर, पुष्पांजलि अब करना है-2।
गुणपुष्पों की सुरभी पाकर, अद्भुत आनंद आएगा।।कर लो...।। 2।।

दिव्य पुष्पांजलिः

अथ प्रत्येक अर्घ्य

-चौबोल छन्द-

समयसार मण्डल विधान में, प्रथम वलय के निकट चलो।
इसमें हैं तिहत्तर गाथाएँ, उनको मन में संस्मरण करो।।
प्रथम मंगलाचरण के संग जीवरु-अजीव अधिकार कथन।
इनको अर्घ्य चढ़ाने हेतु, पुष्पांजलि कर करो नमन।।1।।

इति श्री समयसारमण्डलविधानस्य प्रथमवलये पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्।

प्रथम जीवाधिकार की गाथाओं के अर्घ्य

वंदित्तु सव्वसिद्धे, धुवमचलमणोवमं गइं पत्ते।
वोच्छामि समयपाहुड-मिणमो सुयकेवलीभणियं।।1।।

–शेर-छंद–

सिद्धों की करूँ वंदना जो शुद्ध हुए हैं,
अनुपम अचल व ध्रुव गती को प्राप्त हुए हैं।
श्रुतकेवली प्रणीत समयसार कहूँगा,
हे भव्य! सुनो आत्मा का सार कहूँगा।।1।।

दोहा – **अष्टद्रव्य का थाल ले, जजूँ जीव अधिकार।**
अर्घ्य चढ़ा नत भाल मैं, लहूँ आत्म सुखसार।।

ॐ ह्रीं ध्रुवाचलानुपमगतिप्राप्तसिद्धपरमेष्ठिने नमः श्रुतकेवलीप्रणीत-क्रमानुसारेण श्रीकुन्दकुन्दाचार्यविरचितसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जीवो चरित्तदंसण-णाणट्ठिउ तं हि ससमयं जाण।
पुग्गलकम्मपदेसट्ठियं च तं जाण परसमयं।।2।।

दर्शन सुज्ञान चरित में सुस्थिर जो हो रहे।
वे ही स्वसमय जीव शुद्ध नय से हैं कहे।।
पुद्गलमयी कर्मों के साथ जो चिपक रहे।
वे जीव परसमय में सदा लीन ही रहे।।2।।

दोहा – **अष्टद्रव्य का थाल ले, जजूँ जीव अधिकार।**
अर्घ्य चढ़ा नत भाल मैं, लहूँ आत्म सुखसार।।

ॐ ह्रीं स्वसमयपरसमयज्ञानप्रदायकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

एयत्तणिच्छयगओ, समओ सव्वत्थ सुन्दरो लोए।
बंधकहा एयत्ते, तेण विसंवादिणी होई।।3।।

एकत्व के निश्चय को प्राप्त समय शब्द है।
सब लोक में सुन्दर तथा चिन्मात्र शुद्ध है।।
एकत्व में बंधन की कथा विसंवादिनी।
होती है अवस्था यही संसारकारिणी।।3।।

दोहा – **अष्टद्रव्य का थाल ले, जजूँ जीव अधिकार।**
अर्घ्य चढ़ा नत भाल मैं, लहूँ आत्म सुखसार।।

ॐ ह्रीं एकत्वनिश्चयपदप्राप्तचिन्मात्रशुद्धतत्त्वप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सुदपरिचिदाणुभूया, सव्वस्स वि कामभोगबंधकहा।
एयत्तस्सुवलंभो, णवरि ण सुलहो विहत्तस्स।।4।।

त्रैलोक में जो काम भोगबंध की कथा।
श्रुतपरिचितानुभूत प्राणिमात्र की व्यथा।।

इनसे रहित एकत्व प्राप्ति सुलभ नहीं है।
यदि पा लिया एकत्व जन्म सफल वही है।।4।।

दोहा – **अष्टद्रव्य का थाल ले, जजूँ जीव अधिकार।**
अर्घ्य चढ़ा नत भाल मैं, लहूँ आत्म सुखसार।।

ॐ ह्रीं कामभोगबन्धकथाप्रतिबंधकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तं एयत्तविहत्तं, दाएहं अप्पणो सविहवेण।
जदि दाएज्ज पमाणं, चुक्किज्ज छलं ण घेत्तव्वं।।5।।

आत्मीक विभव द्वारा दिखलाऊँ मैं जो कुछ।
एकत्व पर से भिन्न आत्म और नहीं कुछ।।
यदि प्राप्त हो जावे तो स्वीकार करो तुम।
यदि चूक जाऊँ तो नहीं छल ग्रहण करो तुम।।5।।

दोहा – **अष्टद्रव्य का थाल ले, जजूँ जीव अधिकार।**
अर्घ्य चढ़ा नत भाल मैं, लहूँ आत्म सुखसार।।

ॐ ह्रीं एकत्वविभक्तचैतन्यतत्त्वदिग्दर्शकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

णवि होदि अप्पमत्तो, ण पमत्तो जाणओ दु जो भावो।
एवं भणंति सुद्धं, णाओ जो सो उ सो चेव।।6।।

ज्ञायक जो भाव जीव का नहिं अप्रमत्त है।
नहिं है प्रमत्त वह तो सदा स्वयंशुद्ध है।।
चैतन्यभाव शुद्ध नय से एक कहाता।
वह सर्वगुणस्थान से अतीत है भाता।।6।।

दोहा – **अष्टद्रव्य का थाल ले, जजूँ जीव अधिकार।**
अर्घ्य चढ़ा नत भाल मैं, लहूँ आत्म सुखसार।।

ॐ ह्रीं प्रमत्ताप्रमत्तभावप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

ववहारेणु वदिस्सइ, णाणिस्स चरित्त दंसणं णाणं।
णवि णाणं ण चरित्तं, ण दंसणं जाणगो सुद्धो।।7।।

चारित्र ज्ञान दर्शन ज्ञानी सुजीव में।
व्यवहारनय से कहते गणधर मुनी इन्हें।।

पर शुद्धनय से दर्शज्ञान चरण नहीं हैं।
ज्ञानी है मात्र ज्ञायक ये भेद नहीं है।।7।।

दोहा – **अष्टद्रव्य का थाल ले, जजूँ जीव अधिकार।**
अर्घ्य चढ़ा नत भाल मैं, लहूँ आत्म सुखसार।।

ॐ ह्रीं व्यवहारनिश्चयरत्नत्रयप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जह णवि सक्कमणज्जो, अणज्जभासं विणा उ गाहेउं।
तह ववहारेण विणा, परमत्थुवएसणमसक्कं।।8।।

जैसे अनार्य को अनार्य भाषा के बिना।
समझाना शक्य है नहीं व्यवहार के बिना।।
वैसे बिना व्यवहार के परमार्थ का कथन।
प्राणी नहीं समझें अतः व्यवहार ही प्रथम।।8।।

दोहा – **अष्टद्रव्य का थाल ले, जजूँ जीव अधिकार।**
अर्घ्य चढ़ा नत भाल मैं, लहूँ आत्म सुखसार।।

ॐ ह्रीं व्यवहारनयाश्रितपरमार्थतत्त्वप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जो हि सुएणहिगच्छइ, अप्पाणमिणं तु केवलं सुद्धं।
तं सुयकेवलिमिसिणो, भणंति लोयप्पईवयरा।।9।।

निज शुद्ध आतमा को जो श्रुतज्ञान से जानें।
उनको ही ऋषी निश्चय श्रुतकेवली मानें।।
नहिं निश्चय श्रुतकेवली व्यवहार श्रुत बिना।
इस युग में श्रुत केवली नहिं हो सकें सुना।।9।।

दोहा – **अष्टद्रव्य का थाल ले, जजूँ जीव अधिकार।**
अर्घ्य चढ़ा नत भाल मैं, लहूँ आत्म सुखसार।।

ॐ ह्रीं शुद्धात्मतत्त्वज्ञायकनिश्चयश्रुतकेवलीकथनसंयुक्तसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जो सुयणाणं सव्वं जाणइ सुयकेवलिं तमाहु जिणा।
णाणं अप्पा स्ववं, जह्मा सुयकेवली तह्मा।।10।।

सब द्वादशांग श्रुत को जो जान रहे हैं।
जिनवर कथित श्रुतकेवली व्यवहार वो ही हैं।।
क्योंकि सकल श्रुतज्ञान आतमा में ही कहा।
अतएव वही आतमा श्रुतकेवली कहा।।10।।

दोहा – **अष्टद्रव्य का थाल ले, जजूँ जीव अधिकार।**
अर्घ्य चढ़ा नत भाल मैं, लहूँ आत्म सुखसार।।

ॐ ह्रीं द्वादशांगश्रुतज्ञायकव्यवहारश्रुतकेवलीकथनसंयुक्तसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

णाणम्हि भावणा खलु, कादव्वा दंसणे चरित्ते य।
ते पुण तिण्णिवि आदा, तह्मा कुण भावणं आदे।।11।।

सम्यक्त्व ज्ञान दर्शन चारित्र भावना।
करते रहो रत्नत्रय की अडिग साधना।।
निश्चय से ये तीनों ही आत्मस्वरूप हैं।
अतएव आत्मभावना निश्चय का रूप है।।11।।

दोहा – **अष्टद्रव्य का थाल ले, जजूँ जीव अधिकार।**
अर्घ्य चढ़ा नत भाल मैं, लहूँ आत्म सुखसार।।

ॐ ह्रीं रत्नत्रयस्वरूपआत्मतत्त्वप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जो आदभावणमिणं, णिच्चुवजुत्तो मुणी समाचरदि।
सो सव्व-दुक्ख-मोक्खं, पावदि अचिरेण कालेण।।12।।

इस विधि जो मुनी आत्मभावना को भा रहे।
निश्चय और व्यवहार रत्नत्रय को ध्या रहे।।
वे सब दुःखों से छूट शीघ्र मुक्ति वरेंगे।
इस काल में लौकान्तिकादि पद को लहेंगे।।12।।

दोहा – **अष्टद्रव्य का थाल ले, जजूँ जीव अधिकार।**
अर्घ्य चढ़ा नत भाल मैं, लहूँ आत्म सुखसार।।

ॐ ह्रीं नित्योद्यतात्मभावनासमन्वितमुनिधर्मप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

ववहारोऽभूयत्थो, भूयत्थो देसिदो दु सुद्धणओ।
भूयत्थमस्सिदो खलु, सम्माइट्ठी हवइ जीवो।।13।।

व्यवहार नय भूतार्थ अभूतार्थरूप है।
निश्चय के भी भूतार्थ अभूतार्थ भेद हैं।।
भूतार्थ के आश्रय से जो सम्यक्त्व प्राप्ति है।
वह जीव कहा सम्यग्दृष्टि वीतराग है।।13।।

दोहा – **अष्टद्रव्य का थाल ले, जजूँ जीव अधिकार।**
अर्घ्य चढ़ा नत भाल मैं, लहूँ आत्म सुखसार।।

ॐ ह्रीं भूतार्थ-अभूतार्थनिश्चयव्यवहारनयप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सुद्धो सुद्धादेसो, णायव्वो परमभावदरिसीहिं।
ववहारदेसिदा पुण, जे दु अपरमे ट्ठिदा भावे।।14।।

जो परमशुद्ध भावना को प्राप्त हुए हैं।
उनके लिए ही उपादेय शुद्धनय कहें।।
श्रावक व मुनी जो सराग भाव में स्थित।
इन सबके अपरमभाव में व्यवहारनय कथित।।14।।

दोहा – **अष्टद्रव्य का थाल ले, जजूँ जीव अधिकार।**
अर्घ्य चढ़ा नत भाल मैं, लहूँ आत्म सुखसार।।

ॐ ह्रीं शुद्धाशुद्धभावसमन्वितनिश्चयव्यवहारनयप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

भूयत्थेणाभिगदा, जीवाजीवा य पुण्णपावं च।
आसवसंवरणिज्जर, बंधो मोक्खो य सम्मत्तं।।15।।

भूतार्थ से जाने गए जो जीवाजीव हैं।
जो पुण्यपाप आस्रव संवर भी तत्त्व हैं।।
निर्जर व बंध मोक्ष ये सम्यक्त्व कहे हैं।
व्यवहार से ये मुक्ति के साधक भी हुए हैं।।15।।

दोहा – **अष्टद्रव्य का थाल ले, जजूँ जीव अधिकार।**
अर्घ्य चढ़ा नत भाल मैं, लहूँ आत्म सुखसार।।

ॐ ह्रीं भूतार्थनयज्ञातव्यजीवाजीवपुण्यपापाश्रवसंवरनिर्जराबंधमोक्षनवतत्त्व-क्रमप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जो पस्सदि अप्पाणं, अबद्धपुट्ठं अणण्णयं णियदं।
अविसेसमसंजुत्तं, तं सुद्धणयं वियाणाहि।।16।।

जो जीव निजात्मा को सदा देख रहे हैं।
स्पर्श बंध अन्यत्व रहित जान रहे हैं।।
अविशेष असंयोगि को वह शुद्धनय ही है।
इन सबसे सहित जीव स्वयं शुद्धनय ही है।।16।।

दोहा – **अष्टद्रव्य का थाल ले, जजूँ जीव अधिकार।**
अर्घ्य चढ़ा नत भाल मैं, लहूँ आत्म सुखसार।।

ॐ ह्रीं शुद्धनयप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जो पस्सदि अप्पाणं, अबद्धपुट्ठं अणण्णमविसेसं।
अपदेससुत्तमज्झं, पस्सदि जिणसासणं सव्वं।।17।।

जो जीव निजात्मा को सदा देख रहे हैं।
स्पर्श बंध अन्य औ विशेष रहित से।।
वे द्रव्यभाव श्रुत से वाच्य द्वादशांग को।
हैं देख रहे जान रहे भी निजात्म को।।17।।

दोहा – **अष्टद्रव्य का थाल ले, जजूँ जीव अधिकार।**
अर्घ्य चढ़ा नत भाल मैं, लहूँ आत्म सुखसार।।

ॐ ह्रीं द्रव्यभावश्रुतवाच्यद्वादशांगज्ञायकआत्मतत्त्वप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

आदा खु मज्झ णाणे, आदा मे दंसणे चरित्ते य।
आदा पच्चक्खाणे, आदा मे संवरे जोगे।।18।।

मेरे चरित्र ज्ञान औ दर्शन में सर्वदा।
आत्मा ही मुझे दिखता प्रत्याख्यान में सदा।।

संवर तथा ध्यानस्थ योग में भी आतमा।
निश्चय से मैं विचारता हूँ शुद्ध आतमा।।18।।

दोहा – **अष्टद्रव्य का थाल ले, जजूँ जीव अधिकार।**
अर्घ्य चढ़ा नत भाल मैं, लहूँ आत्म सुखसार।।

ॐ ह्रीं ज्ञानदर्शनचारित्रत्यागसंवरयोगसमन्वितशुद्धात्मतत्त्वप्रतिपादक-समयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दंसणणाणचरित्ताणि, सेविदव्वाणि साहुणा णिच्चं।
ताणि पुण जाण तिण्णिवि, अप्पाणं चेव णिच्छयदो।।19।।

साधू मुनी के लिये ज्ञान चरण औ दर्शन।
है नित्य सेवितव्य नय व्यवहार का कथन।।
निश्चय से ये तीनों ही आत्म के स्वरूप हैं।
दोनों नयों से आत्मतत्त्व प्राप्यरूप है।।19।।

दोहा – **अष्टद्रव्य का थाल ले, जजूँ जीव अधिकार।**
अर्घ्य चढ़ा नत भाल मैं, लहूँ आत्म सुखसार।।

ॐ ह्रीं महामुनिसेवितव्य-व्यवहारनिश्चयरत्नत्रयरूपआत्मतत्त्वप्रतिपादक-समयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जह णाम को वि पुरिसो, रायाणं जाणिऊण सद्दहदि।
तो तं अणुचरदि पुणो, अत्थत्थीओ पयत्तेण।।20।।

ज्यों कोई धनार्थी पुरुष राजा को जानकर।
विश्वास से सेवा करे उस योग्य मानकर।।
अनुकूल आचरण उसे करना ही पड़ेगा।
राजा की कृपादृष्टि से धनवान बनेगा।।20।।

दोहा – **अष्टद्रव्य का थाल ले, जजूँ जीव अधिकार।**
अर्घ्य चढ़ा नत भाल मैं, लहूँ आत्म सुखसार।।

ॐ ह्रीं प्रयत्नपूर्वकगृहीतात्मतत्त्वप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

एवं हि जीवराया, णादव्वो तह य सद्दहेदव्वो।
अणुचरिदव्वो य पुणो, सो चेव दु मोक्खकामेण।।21।।

उस ही प्रकार मोक्ष के इच्छुक पुरुष को भी।
चैतन्य चिदानन्द जीव राजा के प्रती।।
श्रद्धान ज्ञान आचरण करना ही पड़ेगा।
तब ही अभेद शुद्ध आत्मतत्त्व मिलेगा।।21।।

दोहा – **अष्टद्रव्य का थाल ले, जजूँ जीव अधिकार।**
अर्घ्य चढ़ा नत भाल मैं, लहूँ आत्म सुखसार।।

ॐ ह्रीं मोक्षकामेन पुरुषेण अनुचरितात्मतत्त्वप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कम्मे णोकम्महि य, अहमिदि अहकं च कम्म णोकम्मं।
जा एसा खलु बुद्धी, अप्पडिबुद्धो हवदि ताव।।22।।

ये कर्म औ नोकर्मरूप ''मैं'' की मान्यता।
मेरे ही हैं ये भाव सदा इनका मैं कर्त्ता।।
निश्चय से ऐसी बुद्धी बहिरातमा की हो।
इससे न कभी प्राप्ति शुद्धआतमा की हो।।22।।

दोहा – **अष्टद्रव्य का थाल ले, जजूँ जीव अधिकार।**
अर्घ्य चढ़ा नत भाल मैं, लहूँ आत्म सुखसार।।

ॐ ह्रीं कर्मनोकर्मप्रति अहंभावग्राहकबहिरात्मतत्त्वप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जीवेव अजीवे वा, संपदि समयम्हि जत्थ उवजुत्तो।
तत्थेव बंधमोक्खो, हवदि समासेण णिद्दिट्ठो।।23।।

जो जीव शुद्ध आत्मतत्त्व प्राप्त कर रहे।
वे मोक्षतत्त्व में सदा अनुराग कर रहे।।
जो देह आदि पुद्गल में उपादेयता।
माने वे बंध ही करें सर्वज्ञ ने कहा।।23।।

दोहा – **अष्टद्रव्य का थाल ले, जजूँ जीव अधिकार।**
अर्घ्य चढ़ा नत भाल मैं, लहूँ आत्म सुखसार।।

ॐ ह्रीं जीवाजीवयोः उपयोगरतआत्मनि मोक्षबंधतत्त्वप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जं कुणदि भावमादा, कत्ता सो होदि तस्स भावस्स।
णिच्छयदो ववहारा, पोग्गलकम्माण कत्तारं।।24।।

जो जीव जब जिस राग भाव का बना कर्ता।
निश्चय अशुद्ध से उसी ही भाव का कर्ता।।
व्यवहारनय से पुद्गल कर्मादि का कर्त्ता।
शुद्धनय से शुद्धभाव का ही वो कर्त्ता।।24।।

दोहा – **अष्टद्रव्य का थाल ले, जजूँ जीव अधिकार।**
अर्घ्य चढ़ा नत भाल मैं, लहूँ आत्म सुखसार।।

ॐ ह्रीं निश्चयव्यवहारनयानुसारेण कर्तृत्वभावप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अहमेदं एदमहं, अहमेदस्सेव होमि मम एदं।
अण्णं जं परदव्वं, सचित्ताचित्तमिस्सं वा।।25।।

संसार में जो भी सचित्त स्त्रियादि हैं।
धनधान्य है अचित्त मिश्र ग्राम आदि हैं।।
मैं हूँ सदा उस रूप वे मेरे ही हुए हैं।
मेरे को छोड़कर न अन्यरूप हुए हैं।।25।।

दोहा – **अष्टद्रव्य का थाल ले, जजूँ जीव अधिकार।**
अर्घ्य चढ़ा नत भाल मैं, लहूँ आत्म सुखसार।।

ॐ ह्रीं परद्रव्यादिप्रति अहंभावयुक्तअज्ञानीजीवतत्त्वप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

आसि मम पुव्वमेदं, एदस्स अहंपि आसि पुव्वंहि।
होहिदि पुणोवि मज्झं, एयस्स अहंपि होस्सामि।।26।।

मेरे ही थे ये पूर्व में मैं इनके साथ था।
आगे भी होंगे मेरे इनका मैं होऊँगा।।
ये सब सचित्ताचित्त मिश्र भाव मैं करता।
त्रैकाल में भी इनको नहिं छोड़ मैं सकता।।26।।

दोहा – **अष्टद्रव्य का थाल ले, जजूँ जीव अधिकार।**
अर्घ्य चढ़ा नत भाल मैं, लहूँ आत्म सुखसार।।

ॐ ह्रीं भूतभाविकालानुसारेण परद्रव्यं प्रति ममत्वभावग्राहकअज्ञानीजीव-सम्बोधनप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

एयं तु असंभूदं, आदवियप्पं करेदि संमूढो।
भूदत्थं जाणंतो, ण करेदि दु तं असंमूढो।।27।।
ऐसा जो असद्भूत राग का विकल्प है।
वह मूढ़ पुरुष आत्म में करता विकल्प है।।
परमार्थ से वस्तू स्वरूप जानता हुआ।
मिथ्या विकल्प नहिं करे ज्ञानी वही कहा।।27।।

दोहा – **अष्टद्रव्य का थाल ले, जजूँ जीव अधिकार।**
अर्घ्य चढ़ा नत भाल मैं, लहूँ आत्म सुखसार।।

ॐ ह्रीं परद्रव्यं प्रति ममत्वभावमोचकज्ञानीजीवतत्त्वप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अण्णाणमोहिदमदी, मज्झमिणं भणदि पुग्गलं दव्वं।
बद्धमबद्धं च तहा, जीवो बहुभावसंजुत्तो।।28।।
अज्ञान से मोहित मती जिस जीव की हुई।
पुद्गल अजीव आदि को आत्मा कहें वह ही।।
देहादिरूप बद्ध अबद्ध पौद्गलिक ग्रहण।
मिथ्यात्व भाव सहित जीव इनमें ही गमन।।28।।

दोहा – **अष्टद्रव्य का थाल ले, जजूँ जीव अधिकार।**
अर्घ्य चढ़ा नत भाल मैं, लहूँ आत्म सुखसार।।

ॐ ह्रीं पुद्गलादिपरद्रव्यं प्रति अज्ञानमोहितमतिसमन्वितअज्ञानीजीव-सम्बोधनप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सव्वण्हुणाणदिट्ठो, जीवो उवओगलक्खणो णिच्चं।
कह सो पुग्गलदव्वी-भूदो जं भणसि मज्झमिणं।।29।।
सर्वज्ञज्ञान दृष्टि में जो जीवद्रव्य है।
वह नित्य ज्ञानदर्शन उपयोग युक्त है।।

तब तो भला वह जीव कैसे पुद्गलात्म है ?
मेरे हैं ये पुद्गल तेरा कथन अनात्म है।।29।।

दोहा – **अष्टद्रव्य का थाल ले, जजूँ जीव अधिकार।**
अर्घ्य चढ़ा नत भाल मैं, लहूँ आत्म सुखसार।।

ॐ ह्रीं नित्यज्ञानदर्शनोपयोगयुक्तसर्वज्ञज्ञानप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जदि सो पुग्गलदव्वी-भूदो जीवत्तमागदं इदरं।
तो सत्तो वुत्तुं जे, मज्झमिणं पुग्गलं दव्वं।।30।।
यदि जीव वह पुद्गलमयी हो जाय कभी भी।
पुद्गल भी जीवरूप करे परिणमन कभी।।
तब तो मेरे पुद्गल हैं तेरा कथन सत्य है।
पर तीन काल में भी यह होना अशक्य है।।30।।

दोहा – **अष्टद्रव्य का थाल ले, जजूँ जीव अधिकार।**
अर्घ्य चढ़ा नत भाल मैं, लहूँ आत्म सुखसार।।

ॐ ह्रीं पुद्गलजीवयोः परस्परसंबंधभावप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जदि जीवो ण सरीरं, तित्थयरायरियसंथुदी चेव।
सव्वावि हवदि मिच्छा, तेण दु आदा हवदि देहो।।31।।
प्रभु! यदि ये जीव औ शरीर एक नहीं है।
तो तीर्थकर व मुनियों की स्तुती व्यर्थ है।।
इनके शरीर वर्ण आदि कथन व्यर्थ हों।
अतएव देह आत्म एक कथन सत्य हो।।31।।

दोहा – **अष्टद्रव्य का थाल ले, जजूँ जीव अधिकार।**
अर्घ्य चढ़ा नत भाल मैं, लहूँ आत्म सुखसार।।

ॐ ह्रीं व्यवहारनयाश्रिततीर्थंकराचार्यस्तुतिप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

ववहारणयो भासदि, जीवो देहो य हवदि खलु इक्को।
ण दु णिच्छयस्स जीवो, देहो य कदावि एकट्ठो।।32।।

व्यवहार नय कहता है जीव देह एक है।
हे शिष्य! वह संयोग को स्वीकार करे है।।
लेकिन नहीं निश्चय से जीव देह एक है।
व्यवहार से देहादि की स्तुति भी सत्य है।।32।।

दोहा – **अष्टद्रव्य का थाल ले, जजूँ जीव अधिकार।**
अर्घ्य चढ़ा नत भाल मैं, लहूँ आत्म सुखसार।।

ॐ ह्रीं व्यवहारनिश्चयनयापेक्षया जीवपुद्गलद्रव्यप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

इणमण्णं जीवादो, देहं पुग्गलमयं थुणित्तु मुणी।
मण्णदि हु संथुदो, वंदिदो मए केवली भयवं।।33।।

जीवात्म भिन्न पुद्गल की स्तुति करके।
प्रभु केवली की वंदना मुनिगण भी मानते।।
व्यवहार से इस मान्यता में दोष नहीं है।
निश्चय की प्राप्ति में बने साधन भी यही है।।33।।

दोहा – **अष्टद्रव्य का थाल ले, जजूँ जीव अधिकार।**
अर्घ्य चढ़ा नत भाल मैं, लहूँ आत्म सुखसार।।

ॐ ह्रीं व्यवहारनयापेक्षया केवलीशरीरस्तुतिप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तं णिच्छये ण जुज्जदि, ण सरीरगुणा हि होंति केवलिणो।
केवलिगुणे थुणदि जो सो, तच्चं केवलिं थुणदि।।34।।

निश्चय में नहीं घटता व्यवहार संस्तवन।
क्योंकि शरीर गुण से नहीं केवली कथन।।
जो केवली के ज्ञान आदि गुण का चिंतवन।
परमार्थ से है केवली का वही संस्तवन।।34।।

दोहा – **अष्टद्रव्य का थाल ले, जजूँ जीव अधिकार।**
अर्घ्य चढ़ा नत भाल मैं, लहूँ आत्म सुखसार।।

ॐ ह्रीं निश्चयनयापेक्षया केवलिनां क्षायिकगुणस्तुतिप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

णयरम्मि वण्णिदे जह, ण वि रण्णो वण्णणा कदा होदि।
देहगुणे थुव्वंते, ण केवलिगुणा थुदा होंति।।35।।

जैसे कोई राजा के सुन्दर नगर का वर्णन।
करने से नहीं होता कभी राजा का कथन।।
वैसे ही केवली के देह गुण का संस्तवन।
निश्चय से नहीं केवली गुणों को है नमन।।35।।

दोहा – **अष्टद्रव्य का थाल ले, जजूँ जीव अधिकार।**
अर्घ्य चढ़ा नत भाल मैं, लहूँ आत्म सुखसार।।

ॐ ह्रीं निश्चयनयापेक्षया केवलिशरीररस्तुतिनिषेधप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जो इन्दिये जिणित्ता, णाणसहावाधियं मुणदि आदं।
तं खलु जिदिंदियं ते भणंति जे णिच्छिदा साहू।।36।।

जो द्रव्यभाव इंद्रियों के विषय जीत के।
ज्ञानादि गुणों से सहित आत्मा को जानते।।
उनको हि परमसाधुगण निश्चयस्वरूप से।
कहते हैं जितेन्द्रिय वही मुनि जिनस्वरूप हैं।।36।।

दोहा – **अष्टद्रव्य का थाल ले, जजूँ जीव अधिकार।**
अर्घ्य चढ़ा नत भाल मैं, लहूँ आत्म सुखसार।।

ॐ ह्रीं मुनीनां जितेन्द्रियगुणप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जो मोहं तु जिणित्ता, णाणसहावाधियं मुणइ आदं।
तं जिदमोहं साहुँ, परमट्ठवियाणया विंति।।37।।

जो मोह को उपशांत कर श्रेणी में चढ़ रहे।
निजज्ञानयुक्त आतमा में लीन हो रहे।।

परमार्थ के ज्ञाता उन्हें जितमोह कह रहे।
उपशांतमोह ग्यारवें गुणस्थान को कहें।।37।।

दोहा – **अष्टद्रव्य का थाल ले, जजूँ जीव अधिकार।**
अर्घ्य चढ़ा नत भाल मैं, लहूँ आत्म सुखसार।।

ॐ ह्रीं मुनीनां जितमोहगुणसमन्वितमुनिधर्मप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जिदमोहस्स दु जइया, खीणो मोहो हविज्ज साहुस्स।
तइया हु खीणमोहो, भण्णदि सो णिच्छयविदूहिं।।38।।

जिसने समस्त मोह कर्म नाश कर दिया।
उसने ही क्षीणमोह पद को प्राप्त कर लिया।।
उनको हि गणधरादि क्षीणमोह कह रहे।
ये बारवें गुणस्थान के निर्ग्रन्थ मुनी हैं।।38।।

दोहा – **अष्टद्रव्य का थाल ले, जजूँ जीव अधिकार।**
अर्घ्य चढ़ा नत भाल मैं, लहूँ आत्म सुखसार।।

ॐ ह्रीं मुनीनां क्षीणमोहगुणप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सव्वे भावे जम्हा, पच्चक्खाई परेत्ति णादूणं।
तह्मा पच्चक्खाणं, णाणं णियमा मुणेयव्वं।।39।।

जो ज्ञान सभी बाह्य पर भावों को छोड़ता।
बस मात्र आत्मतत्त्व में हि नेह जोड़ता।।
चारित्रयुक्त मुनि का ज्ञान प्रत्याख्यान है।
शुद्धातमानुभव हि असली प्रत्याख्यान है।।39।।

दोहा – **अष्टद्रव्य का थाल ले, जजूँ जीव अधिकार।**
अर्घ्य चढ़ा नत भाल मैं, लहूँ आत्म सुखसार।।

ॐ ह्रीं मुनीनां प्रत्याख्यानगुणप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जह णाम कोवि पुरिसो परदव्वमिणंति जाणिदुं चयदि।
तह सव्वे परभावे णाऊण विमुंचदे णाणी।।40।।

जैसे कोई पुरुष पराई वस्तु जानकर।
निश्चित ही छोड़ देता है परद्रव्य मानकर।।
वैसे हि परवस्तू को छोड़ मुनी जो बने।
वे पर विभाव भाव छोड़ निज में ही रमें।।40।।

दोहा – **अष्टद्रव्य का थाल ले, जजूँ जीव अधिकार।**
अर्घ्य चढ़ा नत भाल मैं, लहूँ आत्म सुखसार।।

ॐ ह्रीं परद्रव्यत्यागप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

णत्थि मम को वि मोहो, बुज्झदि उवओग एव अहमिक्को।
तं मोहणिम्ममत्तं, समयस्स वियाणया विंति।।41।।

निश्चय से मेरा कोई नहीं मैं न किसी का।
मैं एक ज्ञायक रूप हूँ पर में नहीं रमता।।
उस महासाधु को ही निर्ममत्व कहा है।
शुद्धात्मज्ञानियों ने उन्हें शुद्ध कहा है।।41।।

दोहा – **अष्टद्रव्य का थाल ले, जजूँ जीव अधिकार।**
अर्घ्य चढ़ा नत भाल मैं, लहूँ आत्म सुखसार।।

ॐ ह्रीं मोहनिर्ममत्वप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

णत्थि मम धम्म आदी, बुज्झदि उवओग एव अहमिक्को।
तं धम्मणिम्ममत्तं, समयस्स वियाणया विंति।।42।।

धर्मादि छहों द्रव्य मेरे कुछ भी नहीं हैं।
उपयोगमयी आत्मा निश्चय से कही है।।
उनको हि धर्म निर्ममत्व ज्ञानिजन कहें।
मुनि शुद्धज्ञानी ही इसे प्राप्त कर सकें।।42।।

दोहा – **अष्टद्रव्य का थाल ले, जजूँ जीव अधिकार।**
अर्घ्य चढ़ा नत भाल मैं, लहूँ आत्म सुखसार।।

ॐ ह्रीं धर्मद्रव्यनिर्ममत्वगुणप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अहमिक्को खलु सुद्धो, दंसणणाणमइओ सदारूवी।
णवि अत्थि मज्झ किंचिवि, अण्णं परमाणुमित्तंपि।।43।।

मैं शुद्धनय से एक हूँ शुद्धात्मरूप हूँ।
दर्शनसुज्ञानमय सदा रहता अरूपि हूँ।।
परद्रव्य भी परमाणुमात्र मेरे नहीं हैं।
व्यवहार से हैं यद्यपी निश्चय से नहीं हैं।।43।।

दोहा – **अष्टद्रव्य का थाल ले, जजूँ जीव अधिकार।**
अर्घ्य चढ़ा नत भाल मैं, लहूँ आत्म सुखसार।।

ॐ ह्रीं शुद्धनिश्चयेन ''अहमिक्को खलु सुद्धो'' गुणप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

द्वितीय अजीवाधिकार की गाथाओं के अर्घ्य

अप्पाणमयाणंता, मूढा दु परप्पवादिणो केई।
जीवं अज्झवसाणं, कम्मं च तहा परूविंति।।44।।

-बसंततिलका छंद-

कोई परात्मवादी हैं मूढ़ आत्मा।
हैं आत्मज्ञान से शून्य कहें अनात्मा।।
रागादिरूप जो अध्यवसान मानें।
जीवात्म को तथा कर्म को भि जीव मानें।।44।।

सोरठा – **यह अजीव अधिकार, जीवद्रव्य से भिन्न है।**
पूजूँ अर्घ्य चढ़ाय, रम जाऊँ चैतन्य में।।

ॐ ह्रीं मूढात्मना परद्रव्यं प्रति आत्मपरिणामप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अवरे अज्झवसाणे-सु तिव्वमंदाणुभागगं जीवं।
मण्णंति तहा अवरे, णोकम्मं चावि जीवोत्ति।।45।।

कोई कहें उसी अध्यवसान में जो।
है तीव्र मन्द अनुभागहि जीव है वो।।
नोकर्म रूप तन को भी जीव मानें।
चार्वाक आदि कर्मों की गति न जानें।।45।।

सोरठा – **यह अजीव अधिकार, जीवद्रव्य से भिन्न है।**
पूजूँ अर्घ्य चढ़ाय, रम जाऊँ चैतन्य में।।

ॐ ह्रीं एकान्तवादिना अनुभागगतं जीवतत्त्वप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कम्मस्सुदयं जीवं, अवरे कम्माणुभागमिच्छंति।
तिव्वत्तणमंदत्तण-गुणेहिं जो सो हवदि जीवो।।46।।

जो कर्म का उदय हो वह जीव ही है।
कुछ मानते करमफल परिणमन ही है।।
अनुभाग तीव्र अरु मन्द स्वभाव वाला।
उसको हि जीव कहता कोई निराला।।46।।

सोरठा – **यह अजीव अधिकार, जीवद्रव्य से भिन्न है।**
पूजूँ अर्घ्य चढ़ाय, रम जाऊँ चैतन्य में।।

ॐ ह्रीं मिथ्यात्विना कर्मोदयं प्रतिजीवतत्त्वप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जीवो कम्मं उहयं, दोण्णिवि खलु केवि जीवमिच्छंति।
अवरे संजोगेण दु, कम्माणं जीवमिच्छंति।।47।।

जो कर्म जीव की मिश्रित है अवस्था।
उसको हि जीव माने कोई व्यवस्था।।
कोई कहें करम के संयोग से जो।
उत्पन्न स्थिति कही है जीव ही वो।।47।।

सोरठा – **यह अजीव अधिकार, जीवद्रव्य से भिन्न है।**
पूजूँ अर्घ्य चढ़ाय, रम जाऊँ चैतन्य में।।

ॐ ह्रीं कर्मसंयोगादुत्पन्नस्थितिर्जीवतत्त्वप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

एवंविहा बहुविहा, परमप्पाणं वदंति दुम्मेहा।
ते ण परमट्ठवाई, णिच्छयवाईहिं णिद्दिट्ठा।।48।।

इन आठ भेद युत कोई जीव माने।
परमात्म को बहुविधा मूढात्म जानें।।
इस हेतु वीतरागी सर्वज्ञ कहते।
परद्रव्य को हि आत्मा परवादि कहते।।48।।

सोरठा – **यह अजीव अधिकार, जीवद्रव्य से भिन्न है।**
पूजूँ अर्घ्य चढ़ाय, रम जाऊँ चैतन्य में।।

ॐ ह्रीं बहुविधमिथ्यावादिभिः परात्मतत्त्वप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

एए सव्वे भावा, पुग्गलदव्वपरिणामणिप्पण्णा।
केवलिजिणेहिं भणिया, कह ते जीवो त्ति वुच्चंति।।49।।

ये पूर्व में कथित अध्यवसान आदी।
सब भाव का परिणमन है पुद्गलादी।।
ऐसा जिनेन्द्रकेवलि का कथन आया।
वे भाव जीव हैं यह बनती न माया।।49।।

सोरठा – **यह अजीव अधिकार, जीवद्रव्य से भिन्न है।**
पूजूँ अर्घ्य चढ़ाय, रम जाऊँ चैतन्य में।।

ॐ ह्रीं व्यवहारनयापेक्षया पुद्गलद्रव्यपरिणामजनितसर्वभावप्रतिपादक-समयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अट्ठविहं पि य कम्मं, सव्वं पुग्गलमयं जिणा विंति।
जस्स फलं तं वुच्चइ, दुक्खं ति विपच्चमाणस्स।।50।।

आठों हि कर्म पुद्गलमय हैं बताया।
जिनदेव के कथन में नहिं भेद आया।।
क्योंकि सभी करम का फल दुःख ही है।
परमार्थ सुख रहित सुख भी दुःख ही है।।50।।

सोरठा – **यह अजीव अधिकार, जीवद्रव्य से भिन्न है।**
पूजूँ अर्घ्य चढ़ाय, रम जाऊँ चैतन्य में।।

ॐ ह्रीं अष्टविधपुद्गलकर्मप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

ववहारस्स दरीसण-मुवएसो वण्णिदो जिणवरेहिं।
जीवा एदे सव्वे, अज्झवसाणादओ भावा।।51।।

जो पूर्व में कथित अध्यवसान आदी।
जो भाव जिनवर कथित वो हैं अनादी।।
व्यवहारनय से कहना मिथ्या नहीं है।
क्योंकि दया व हिंसा व्यवहार ही है।।51।।

सोरठा – **यह अजीव अधिकार, जीवद्रव्य से भिन्न है।**
पूजूँ अर्घ्य चढ़ाय, रम जाऊँ चैतन्य में।।

ॐ ह्रीं व्यवहारनयानुसारेण अध्यवसानादिभावप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

राया हु णिग्गदो त्तिय, एसो बलसमुदयस्स आदेसो।
ववहारेण दु उच्चदि, तत्थेको णिग्गदो राया।।52।।

सेना समूह युत राजा जब निकलता।
उस पूर्ण सैन्य को राजा शब्द मिलता।।
व्यवहार नय इस कथन को मानता है।
निश्चय तो एक ही राजा जानता है।।52।।

सोरठा – **यह अजीव अधिकार, जीवद्रव्य से भिन्न है।**
पूजूँ अर्घ्य चढ़ाय, रम जाऊँ चैतन्य में।।

ॐ ह्रीं सैन्यसमूहसमन्वितनृपवत्निश्चयनयप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

एमेव य ववहारो, अज्झवसाणादिअण्णभावाणं।
जीवो त्ति कदो सुत्ते, तत्थेको णिच्छिदो जीवो।।53।।

वैसे हि रागद्वेषादिक भाव को भी।
आत्मा से भिन्न हैं फिर भी जीव के ही।।
व्यवहार से परम आगम में बखाना।
निश्चय से जीव बस एक व शुद्ध माना।।53।।

सोरठा – **यह अजीव अधिकार, जीवद्रव्य से भिन्न है।**
पूजूँ अर्घ्य चढ़ाय, रम जाऊँ चैतन्य में।।

ॐ ह्रीं व्यवहारनयेन आत्मनो रागद्वेषादिभावप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अरसमरूवमगंधं, अव्वत्तं चेदणागुणमसद्दं।
जाण अलिंगग्गहणं, जीवमणिद्दिट्ठसंठाणं।।54।।

निश्चय से जीव रस गंध रहित कहा है।
अव्यक्त, मूर्ति इंद्रिय विरहित कहा है।।
निःशब्द है नहिं ग्रहण चिन्हादि से हो।
संस्थान आदि नहिं निश्चय जीव में हों।।54।।

सोरठा – **यह अजीव अधिकार, जीवद्रव्य से भिन्न है।**
पूजूँ अर्घ्य चढ़ाय, रम जाऊँ चैतन्य में।।

ॐ ह्रीं रूपरसगंधादिरहितशुद्धचैतन्यतत्त्वप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जीवस्स णत्थि वण्णो, णवि गंधो णवि रसो णवि य फासो।
णवि रूवं ण सरीरं, ण वि संठाणं ण संहणणं।।55।।

स्पर्श गंध रस वर्ण न जीव के हैं।
मूर्ती नहीं नहिं शरीर भि जीव में है।।
संस्थान संहनन से विरहित जो आत्मा।
वह ही कहाता सदा निज शुद्ध आत्मा।।55।।

सोरठा – **यह अजीव अधिकार, जीवद्रव्य से भिन्न है।**
पूजूँ अर्घ्य चढ़ाय, रम जाऊँ चैतन्य में।।

ॐ ह्रीं वर्णगंधरसस्पर्शशरीरादिमूर्तिविरहितशुद्धात्मतत्त्वप्रतिपादक-समयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जीवस्स णत्थि रागो, णवि दोसो णेव विज्जदे मोहो।
णो पच्चया ण कम्मं, णोकम्मं चावि से णत्थि।।56।।

नहिं राग द्वेष अरु मोह का सत्त्व जिनके।
आश्रव नहीं हो रहा नहि कर्म उनके।।

नोकर्मरूप देहादिक भी नहीं है।
निश्चय स्वभाव मुनि की आत्मा वही है।।56।।

सोरठा – **यह अजीव अधिकार, जीवद्रव्य से भिन्न है।**
पूजूँ अर्घ्य चढ़ाय, रम जाऊँ चैतन्य में।।

ॐ ह्रीं रागद्वेषमोहप्रत्ययकर्मनोकर्मरहितपरमात्मतत्त्वप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जीवस्स णत्थि वग्गो, ण वग्गणा णेव फड्डया केई।
णो अज्झप्पट्ठाणा, णेव य अणुभायठाणाणि।।57।।

नहिं वर्गयुक्त यह जीव न वर्गणा है।
स्पर्धकों रहित शुद्धात्मा भणा है।।
नहिं रागद्वेष युत अध्यवसान माने।
अनुभाग से रहित जीवात्मा बखाने।।57।।

सोरठा – **यह अजीव अधिकार, जीवद्रव्य से भिन्न है।**
पूजूँ अर्घ्य चढ़ाय, रम जाऊँ चैतन्य में।।

ॐ ह्रीं वर्गवर्गणास्पर्धकअध्यवसानानुभागस्थानविरहितशुद्धचिद्रूपप्रतिपादक-समयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जीवस्स णत्थि केई, जोयट्ठाणा ण बंधठाणा वा।
णेव य उदयट्ठाणा, ण मग्गणट्ठाणया केई।।58।।

नहिं शुद्ध जीव के कोई योग रहता।
नहिं बंध भी हो रहा नहिं उदय रहता।।
निश्चयनयाश्रित नहीं हैं मार्गणा भी।
व्यवहारनय से कही सब जीव में ही।।58।।

सोरठा – **यह अजीव अधिकार, जीवद्रव्य से भिन्न है।**
पूजूँ अर्घ्य चढ़ाय, रम जाऊँ चैतन्य में।।

ॐ ह्रीं योगबंधमार्गणास्थानादिवर्जितशुद्धजीवतत्त्वप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

णो ठिदिबंधट्ठाणा, जीवस्स ण संकिलेसठाणा वा।
णेव विसोहिट्ठाणा, णो संजमलद्धिठाणा वा।।59।।

स्थितीबन्धस्थान न जीव में हैं।
संक्लेशभाव शुद्धात्मा में नहीं हैं।।
नहिं है विशुद्धि और संयम भी नहीं है।
ऐसी विचित्र शुद्धात्मस्थिति कही है।।59।।

सोरठा – **यह अजीव अधिकार, जीवद्रव्य से भिन्न है।**
पूजूँ अर्घ्य चढ़ाय, रम जाऊँ चैतन्य में।।

ॐ ह्रीं स्थितिबंधसंक्लेशस्थानविशुद्धिस्थानसंयमलब्धिस्थानादिन्यूनपरंपद-प्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

णेव य जीवट्ठाणा, ण गुणट्ठाणा य अत्थि जीवस्स।
जेण दु एदे सव्वे, पुग्गलदव्वस्स परिणामा।।60।।

जीवात्म के नहिं हैं जीवस्थान कोई।
शुद्धात्म के नहिं बने गुणथान कोई।।
क्योंकि ये भाव सब पुद्गल परिणमन हैं।
निश्चय से जीव में नहिं हो यह कथन है।।60।।

सोरठा – **यह अजीव अधिकार, जीवद्रव्य से भिन्न है।**
पूजूँ अर्घ्य चढ़ाय, रम जाऊँ चैतन्य में।।

ॐ ह्रीं जीवस्थानगुणस्थानादिपुद्गलपरिणामप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

ववहारेण दु एदे, जीवस्स हंवति वण्णमादीया।
गुणठाणंता भावा, ण दु केई णिच्छयणयस्स।।61।।

ये वर्ण आदि से गुणस्थान तक जो।
हैं भाव माने कहे सब जीव के वो।।
व्यवहार से हि ये औपाधिक कहे हैं।
निश्चय से जीव में ये न कभी रहे हैं।।61।।

सोरठा – **यह अजीव अधिकार, जीवद्रव्य से भिन्न है।**
पूजूँ अर्घ्य चढ़ाय, रम जाऊँ चैतन्य में।।

ॐ ह्रीं व्यवहारनयानुसारेण सर्ववर्णादिभावप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

एएहिं य संबंधो, जहेव खीरादयं मुणेदव्वो।
ण य हुँति तस्स ताणि दु, उवओगगुणाधिगो जम्हा।।62।।

है क्षीरनीरवत् यह संबंध सारा।
वह एकमेक होकर भी है निराला।।
व्यवहार से मिल रहे फिर भी अलग हैं।
जीवात्म तो सदा ही उपयोगमय है।।62।।

सोरठा – **यह अजीव अधिकार, जीवद्रव्य से भिन्न है।**
पूजूँ अर्घ्य चढ़ाय, रम जाऊँ चैतन्य में।।

ॐ ह्रीं क्षीरनीरवत्जीवपुद्गलसंबंधप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंथे मुस्संतं, पस्सिदूण लोगा भणंति ववहारी।
मुस्सदि एसो पंथो, ण य पंथो मुस्सदे कोई।।63।।

ज्यों मार्ग में लुट रहे को देखकर भी।
व्यवहारि का कथन लुटता मार्ग है ही।।
परमार्थ से कहीं मारग भी लुटा है।
पर मार्ग का पथिक ही पथ में लुटा है।।63।।

सोरठा – **यह अजीव अधिकार, जीवद्रव्य से भिन्न है।**
पूजूँ अर्घ्य चढ़ाय, रम जाऊँ चैतन्य में।।

ॐ ह्रीं व्यवहारेण पथिमुष्यमाणमिव-जीवतत्त्वप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तह जीवे कम्माणं, णोकम्माणं च पस्सिदुं वण्णं।
जीवस्स एस वण्णो, जिणेहिं ववहारदो उत्तो।।64।।

त्यों जीव में करम औ नोकर्म के भी।
वर्णादि देख कहते ये जीव के ही।।
व्यवहारनय से जिनेन्द्र वचन यही हैं।
शुद्धात्म जीव में निश्चय से नहीं हैं।।64।।

सोरठा – **यह अजीव अधिकार, जीवद्रव्य से भिन्न है।**
पूजूँ अर्घ्य चढ़ाय, रम जाऊँ चैतन्य में।।

ॐ ह्रीं व्यवहारनयेन कर्मनोकर्मसहितजीवतत्त्वप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

गंध रसफासरूवा, देहो संठाणमाइया जे य।
सव्वे ववहारस्स य, णिज्छयदण्हू ववदिसंति।।65।।

स्पर्श रूप रस गंध शरीर आदी।
संस्थान संहनन ये सब हैं अनादी।।
निश्चय के ज्ञाता इन्हें व्यवहार कहते।
इनका विकल्प तजकर निश्चय को लहते।।65।।

सोरठा – **यह अजीव अधिकार, जीवद्रव्य से भिन्न है।**
पूजूँ अर्घ्य चढ़ाय, रम जाऊँ चैतन्य में।।

ॐ ह्रीं व्यवहारनयेन गंधरसस्पर्शादिगुणसमन्वितजीवतत्त्वप्रतिपादक-समयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तत्थभवे जीवाणं, संसारत्थाण होंति वण्णादी।
संसारपमुक्काणं, णत्थि हु वण्णादओ केई।।66।।

संसार में भ्रमण जो करते उन्हीं के।
उस भव में वर्ण आदिक होते उन्हीं के।।
पर मुक्त जीव के वर्णादिक नहीं हैं।
तादात्म्यरूप इनका संबंध नहिं है।।66।।

सोरठा – **यह अजीव अधिकार, जीवद्रव्य से भिन्न है।**
पूजूँ अर्घ्य चढ़ाय, रम जाऊँ चैतन्य में।।

ॐ ह्रीं संसारीमुक्तजीवानां वर्णादिपर्यायप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जीवो चेव हि एदे, सव्वे भावात्ति मण्णसे जदि हि।
जीवस्साजीवस्स य, णत्थि विसेसो दु दे कोई।।67।।

यदि तुम कहो कि वर्णादिक जीव ही हैं।
तब तो अजीव अरु जीव में भेद नहिं है।।
इस शुद्ध जीव की परिणति है निराली।
क्योंकी कही है काया ही वर्णवाली।।67।।

सोरठा – **यह अजीव अधिकार, जीवद्रव्य से भिन्न है।**
पूजूँ अर्घ्य चढ़ाय, रम जाऊँ चैतन्य में।।

ॐ ह्रीं एकान्तेन वर्णादिभावं जीवस्य मन्यमाने दोषप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अह संसारत्थाणं, जीवाणं तुज्झ होंति वण्णादी।
तम्हा संसारत्था, जीवा रूवित्तमावण्णा।।68।।

होते भवस्थ जीवों के वर्ण आदी।
एकांत से मानते यदि जीव ये ही।।
तब जीवद्रव्य भी रूपी ही बनेगा।
पुद्गल की संज्ञा उसे देना पड़ेगा।।68।।

सोरठा – **यह अजीव अधिकार, जीवद्रव्य से भिन्न है।**
पूजूँ अर्घ्य चढ़ाय, रम जाऊँ चैतन्य में।।

ॐ ह्रीं एकान्तेन संसारिजीवस्य रूपित्वगुणप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

एवं पुग्गलदव्वं, जीवो तहलक्खणेण मूढमदी।
णिव्वाणमुवगदो वि य, जीवत्तं पुग्गलो पत्तो।।69।।

ऐसा हुआ तो पुद्गल ही जीव होगा।
पुद्गल ही मुक्त हो जीवस्वरूप होगा।।
हे मूढ़ बुद्धि! क्यों ऐसा मानता है।
दोनों में अन्तर नहीं तू जानता है।।69।।

सोरठा – **यह अजीव अधिकार, जीवद्रव्य से भिन्न है।**
पूजूँ अर्घ्य चढ़ाय, रम जाऊँ चैतन्य में।।

ॐ ह्रीं पुद्गलद्रव्यनिमित्तेन स्वलक्षणरहितसदोषजीवतत्त्वप्रतिपादक-समयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

एक्कं च दोण्णि तिण्णि य, चत्तारि य पंच इंदिया जीवा।
वादरपज्जत्तिदरा, पयडीओ णामकम्मस्स।।70।।

एकेन्द्रि द्वीन्द्रि त्रयइंद्रिय चारइन्द्री।
पंचेन्द्रि सूक्ष्म बादर पर्याप्ति आदी।।
जो है कही अपर्याप्तादिक कहानी।
ये नामकर्म की प्रकृति हैं पुरानी।।70।।

सोरठा – **यह अजीव अधिकार, जीवद्रव्य से भिन्न है।**
पूजूँ अर्घ्य चढ़ाय, रम जाऊँ चैतन्य में।।

ॐ ह्रीं व्यवहारनयेन एकेन्द्रियादिपञ्चेन्द्रियपर्यन्तनामकर्मयुक्तजीवतत्त्व-प्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

एदाहि य णिव्वत्ता, जीवट्ठाणाउ करणभूदाहिं।
पयडीहिं पुग्गलमईहिं, ताहिं कहं भण्णदे जीवो।।71।।

इन कर्म की प्रकृतियों से ही रचित जो।
हैं जीवथान आदिक पुद्गलमयी जो।।
उन पुद्गलीक भावों को जीव कैसे?।
कह सकते वे तो पुद्गलमय ही रहेंगे।।71।।

सोरठा – **यह अजीव अधिकार, जीवद्रव्य से भिन्न है।**
पूजूँ अर्घ्य चढ़ाय, रम जाऊँ चैतन्य में।।

ॐ ह्रीं निश्चयनयानुसारेण पौद्गलिकनामकर्मरहितजीवतत्त्वप्रतिपादक-समयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पज्जत्तापज्जत्ता, जे सुहुमा वादरा य जे चेव।
देहस्स जीवसण्णा, सुत्ते ववहारदो उत्ता।।72।।

पर्याप्त और अपर्याप्तक सूक्ष्म बादर।
ये सब शरीर की संज्ञायें बता कर।।
व्यवहार से इन्हें जीव की कह दिया है।
ऐसा हि सूत्र आगम में वर्णिया है।।72।।

सोरठा – **यह अजीव अधिकार, जीवद्रव्य से भिन्न है।**
पूजूँ अर्घ्य चढ़ाय, रम जाऊँ चैतन्य में।।

ॐ ह्रीं व्यवहारेण पर्याप्तापर्याप्तादिभेदसहितजीवतत्त्वप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मोहणकम्मस्सुदया, दु वण्णिया जे इमे गुणट्ठाणा।
ते कह हवंति जीवा, जे णिच्चमचेदणा उत्ता।।73।।

गुणथान आदि जो आगम में बखाने।
वे मोहकर्म के उदयादिक से माने।।
ये नित्य ही अचेतन माने गये हैं।
फिर जीव कैसे भला वे ही हुए हैं।।73।।

सोरठा – **यह अजीव अधिकार, जीवद्रव्य से भिन्न है।**
पूजूँ अर्घ्य चढ़ाय, रम जाऊँ चैतन्य में।।

ॐ ह्रीं निश्चयेन मोहनीयकर्मजनितगुणस्थानादिअचेतनतत्त्वप्रतिपादक-समयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

-पूर्णार्घ्य (शंभु छंद)-

जीव अजीव नामके द्वय, अधिकार को अर्घ्य समर्पित है।
दोनों के संयोग से ही, संसार सदा वृद्धिंगत है।।
कुन्दकुन्द आचार्य प्रवर ने, भेदज्ञान बतलाया है।
उसको पढ़ पूर्णार्घ्य चढ़ाने, भक्त पुजारी आया है।।1।।

ॐ ह्रीं समयसारग्रंथस्य जीवाधिकार-अजीवाधिकारनामप्रथम-द्वितीयाधिकारयोः वर्णित सर्वगाथासूत्रेभ्यः पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शांतये शांतिधारा, दिव्य पुष्पांजलिः

जाप्य मंत्र – **ॐ ह्रीं शुद्धात्मतत्त्वप्राप्तये श्रीसमयसारग्रंथाय नमः।**

जयमाला

-शेर छन्द-

श्री समयसार में प्रथम जीवाधिकार को।
वंदन करूँ द्वितीय अजीवाधिकार को।।

दो तत्त्व में शुद्धातमा के सार को नमूँ।
श्री कुन्दकुन्ददेव गुणभंडार को नमूँ।।1।।

इस जीव के संग कर्म का है बंध अनादी।
है इसके संग लगी सदा मिथ्यात्व की व्याधी।।
इसमें स्वसमय परसमय की बात कही है।
आत्मा व अनात्मा में भेदज्ञान यही है।।2।।

त्रयरत्न सहित शुद्ध आतमा है स्वसमय।
पुद्गल करम प्रदेश सहित जीव परसमय।।
एकत्वरूप आतमा सुन्दर है लोक में।
उस संग बंध कथा विसंवादि लोक में।।3।।

व्यवहार व निश्चय का समन्वय है ग्रंथ में।
भूतार्थ अभूतार्थ है व्यवहार नय इसमें।।
जीवादि नवों तत्त्व को सम्यक्त्व कहा है।
क्योंकि विषय-विषयी में नहीं भेद कहा है।।4।।

जो पर पदार्थ में कदापि प्रीति न करता।
प्रतिबुद्ध ज्ञानी आतमा उसको जगत कहता।।
अज्ञान से मोहितमती जिस आतमा की है।
उसको ही अप्रतिबुद्ध की संज्ञा दी गई है।।5।।

माता सरस्वती मुझे वरदान दीजिए।
इस ग्रंथ का मैं सार गहूँ ज्ञान दीजिए।।
जीवरु शरीर एक है व्यवहार नय कहे।
जीवरु शरीर एक नहिं परमार्थ नय कहे।।6।।

''अहमिक्को खलु सुद्धो'' इक गाथा है इसमें।
श्रीकुन्दकुन्द आत्मसात हो गये इसमें।।
मैं शुद्ध बुद्ध एक हूँ चैतन्य आतमा।
मुझमें छिपा है एक ही भगवान् आतमा।।7।।

शुद्धातमा के वर्ण रस गन्धादि नहीं हैं।
पुद्गल के ये गुण आतमा में सार्थ नहीं हैं।।
संसार अवस्था में जीव कर्म संग रहें।
जल दूध के समान परस्पर का संग है।।8।।

मोहादि कर्म उदय से जो गुणस्थान हैं।
व्यवहार नय से वे भी जीव के स्थान हैं।।
इन सबको दूर कर सकूं यह शक्ति दीजिए।
अब ''चन्दनामती'' मुझे श्रुतभक्ति दीजिए।।9।।

-दोहा-

जीवा-अजीव अधिकार के जयमाला का अर्घ्य।
अर्पण कर श्रुत के निकट, पाऊँ सौख्य समग्र।।10।।

ॐ ह्रीं जीवाधिकार-अजीवाधिकारसमन्वितश्रीसमयसारमहाग्रंथाय जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शांतये शांतिधारा, दिव्य पुष्पांजलिः

-दोहा-

समयसार का सार ही, है जीवन का सार।
शेष द्रव्य का भार है, जीवन में निस्सार।।

।। इत्याशीर्वादः, पुष्पांजलिः।।

(पूजा नं.-3)

कर्ता-कर्म अधिकार एवं पुण्य-पाप अधिकार पूजा

-स्थापना-

तर्ज –सपने में रात में.....

श्री समयसार पूजन का थाल सजाया है।
शुद्धात्म तत्त्व पाने का भाव बनाया है।।टेक.।।

तीजा अधिकार है इसमें, वह कर्ता-कर्म नाम से।
फिर पुण्य-पाप का कथन है, चौथे अधिकार का क्रम है।।

इन सबको सौ गाथाओं में बतलाया है।
शुद्धात्म तत्त्व पाने का भाव बनाया है।।1।।

आह्वानन स्थापन कर, सन्निधीकरण के द्वारा।
अध्यात्म भावना भाऊँ, मण्डल पर अर्घ्य चढ़ाऊँ।।

अब पाप कर्म तजने का मन में आया है।
शुद्धात्म तत्त्व पाने का भाव बनाया है।।2।।

ॐ ह्रीं कर्तृकर्माधिकार-पुण्यपापाधिकारसमन्वितश्रीसमयसारग्रंथराज! अत्र अवतर अवतर संवौषट् स्थापनम्।

ॐ ह्रीं कर्तृकर्माधिकार-पुण्यपापाधिकारसमन्वितश्रीसमयसारग्रंथराज! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।

ॐ ह्रीं कर्तृकर्माधिकार-पुण्यपापाधिकारसमन्वितश्रीसमयसारग्रंथराज! अत्र मम सन्निहितो भव-भव वषट् सन्निधिकरणम्।

तर्ज - सपने में रात में.....

-अष्टक-

श्री समयसार पूजन का थाल सजाया है।
शुद्धात्मतत्त्व पाने का भाव बनाया है।।टेक.।।

गंगा का पावन जल है, जो करता मन निर्मल है।

उसे श्रुत के निकट चढ़ाऊँ, जन्मादिक रोग नशाऊँ।।
श्रुत अध्ययन का शुभ भाव हृदय में आया है।
शुद्धात्मतत्त्व पाने का भाव बनाया है।।1।।

ॐ ह्रीं कर्तृकर्माधिकार-पुण्यपापाधिकारसमन्वितश्रीसमयसाराय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

श्री समयसार पूजन का थाल सजाया है।
शुद्धात्मतत्त्व पाने का भाव बनाया है।।टेक.।।

मलयागिरि का चंदन है, जो करता शीतल मन है।
उसे श्रुत के निकट चढ़ाऊँ, भव आतम शीघ्र नशाऊँ।।
श्रुत अध्ययन का शुभ भाव हृदय में आया है।
शुद्धात्म तत्त्व पाने का भाव बनाया है।।2।।

ॐ ह्रीं कर्तृकर्माधिकार-पुण्यपापाधिकारसमन्वितश्रीसमयसाराय संसारताप-विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

श्री समयसार पूजन का थाल सजाया है।
शुद्धात्मतत्त्व पाने का भाव बनाया है।।टेक.।।

ये शुभ्र धवल तंदुल हैं, जो करें अखंडित बल हैं।
इन्हें श्रुत के निकट चढ़ाऊँ, अक्षयपद मैं पा जाऊँ।।
श्रुत अध्ययन का शुभ भाव हृदय में आया है।
शुद्धात्मतत्त्व पाने का भाव बनाया है।।3।।

ॐ ह्रीं कर्तृकर्माधिकार-पुण्यपापाधिकारसमन्वितश्रीसमयसाराय अक्षयपद-प्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

श्री समयसार पूजन का थाल सजाया है।
शुद्धात्मतत्त्व पाने का भाव बनाया है।।टेक.।।

पुष्पों की माल बनाऊँ, सोने का थाल सजाऊँ।
उसे श्रुत के निकट चढ़ाऊँ, विषयाशा शीघ्र नशाऊँ।।
श्रुत अध्ययन का शुभ भाव हृदय में आया है।
शुद्धात्मतत्त्व पाने का भाव बनाया है।।4।।

ॐ ह्रीं कर्तृकर्माधिकार-पुण्यपापाधिकारसमन्वितश्रीसमयसाराय कामबाण-विनाशनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

श्री समयसार पूजन का थाल सजाया है।
शुद्धात्मतत्त्व पाने का भाव बनाया है।।टेक.।।
नैवेद्य अनेक बने हैं, जो तन की क्षुधा हने हैं।
उसे श्रुत के निकट चढ़ाऊँ, अपना क्षुधरोग नशाऊँ।।
श्रुत अध्ययन का शुभ भाव हृदय में आया है।
शुद्धात्मतत्त्व पाने का भाव बनाया है।।5।।

ॐ ह्रीं कर्तृकर्माधिकार-पुण्यपापाधिकारसमन्वितश्रीसमयसाराय क्षुधारोग-विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्री समयसार पूजन का थाल सजाया है।
शुद्धात्मतत्त्व पाने का भाव बनाया है।।टेक.।।
दीपक अनेक जलते हैं, बाहर का तम हरते हैं।
श्रुत की आरती उतारूँ, निज मोह तिमिर को भगा दूँ।।
श्रुत अध्ययन का शुभ भाव हृदय में आया है।
शुद्धात्मतत्त्व पाने का भाव बनाया है।।6।।

ॐ ह्रीं कर्तृकर्माधिकार-पुण्यपापाधिकारसमन्वितश्रीसमयसाराय मोहांधकार-विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

श्री समयसार पूजन का थाल सजाया है।
शुद्धात्मतत्त्व पाने का भाव बनाया है।।टेक.।।
अग्नी में धूप जलाई, घ्राणेन्द्रिय तृप्ती पाई।
इसे श्रुतपूजन में जलाऊँ, तब कर्मदहन कर पाऊँ।।
श्रुत अध्ययन का शुभ भाव हृदय में आया है।
शुद्धात्मतत्त्व पाने का भाव बनाया है।।7।।

ॐ ह्रीं कर्तृकर्माधिकार-पुण्यपापाधिकारसमन्वितश्रीसमयसाराय अष्टकर्म-दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।।

श्री समयसार पूजन का थाल सजाया है।
शुद्धात्मतत्त्व पाने का भाव बनाया है।।टेक.।।

बादाम सेवफल आदी, हर सकते भूख व व्याधी।
इन्हें श्रुत के निकट चढ़ाऊँ, तो मोक्ष महाफल पाऊँ।।
श्रुत अध्ययन का शुभ भाव हृदय में आया है।
शुद्धात्मतत्त्व पाने का भाव बनाया है।।8।।

ॐ ह्रीं कर्तृकर्माधिकार-पुण्यपापाधिकारसमन्वितश्रीसमयसाराय मोक्षफल-प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

श्री समयसार पूजन का थाल सजाया है।
शुद्धात्मतत्त्व पाने का भाव बनाया है।।टेक.।।
''चन्दनामती'' जल आदी, आठों द्रव्यों की थाली।
ले श्रुत को अर्घ्य चढ़ाऊँ, जिससे अनर्घ्य पद पाऊँ।।
श्रुत अध्ययन का शुभ भाव हृदय में आया है।
शुद्धात्मतत्त्व पाने का भाव बनाया है।।9।।

ॐ ह्रीं कर्तृकर्माधिकार-पुण्यपापाधिकारसमन्वितश्रीसमयसाराय अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।9।।

कलशे में जल भर लाऊँ, अब शांतीधार कराऊँ।
मैं आतम शांती पाऊँ, जग को भी शांति दिलाऊँ।।
श्रुत अध्ययन का शुभ भाव हृदय में आया है।
शुद्धात्मतत्त्व पाने का भाव बनाया है।।10।।

शांतये शांतिधारा

पुष्पों को चुन चुन लाऊँ, पुष्पांजलि कर सुख पाऊँ।
मन में गुण पुष्प खिलाऊँ, जग में सुगंध बिखराऊँ।।
श्रुत अध्ययन का शुभ भाव हृदय में आया है।
शुद्धात्मतत्त्व पाने का भाव बनाया है।।11।।

दिव्य पुष्पांजलिः

अथ प्रत्येक अर्घ्य

समयसार मण्डल विधान में, दुतिय वलय के निकट चलो।
इसमें सौ छन्दों के संग उन, अर्थ को भी स्मरण करो।।

कर्तृकर्म अरु पुण्य-पाप ये, दो अधिकार कहे इसमें।
अर्घ्य समर्पण से पहले, पुष्पांजलि करना है इसमें।।1।।

इति श्री समयसारमण्डलविधानस्य द्वितीयवलये पुष्पांजलिं क्षिपेत्।

तृतीय कर्ता-कर्म अधिकार की गाथाओं के अर्घ्य

(1)

जाव ण वेदि विसे-संतरं तु आदासवाण दोह्णंपि।
अण्णाणी तावदु सो, कोधादिसु वट्टदे जीवो।।74।।

-शंभु छंद-

यह जीव नहीं जाने जब तक, मेरी आत्मा शुद्धात्मा है।
इससे क्रोधादिक आस्रव का, संबंध नहीं जीवात्मा है।।
तब तक बहिरात्म अवस्था में, क्रोधादिरूप बन जाता है।
वह अज्ञानी निज भाव छोड़, परभावों में रम जाता है।।74।।

दोहा – **कर्तृकर्म अधिकार को, अर्घ्य चढ़ाऊँ आज।**
तजकर निज अज्ञान को, सिद्ध करूँ सब काज।।

ॐ ह्रीं अज्ञानजनितक्रोधादिभावप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(2)

कोधादिसु वट्टंतस्स, तस्स कमस्स संचओ होदि।
जीवस्सेवं बंधो, भणिदो खलु सव्वदरसीहिं।।75।।

क्रोधादिक भावों में प्रवृत्ति, करने से आस्रव होता है।
सब रागद्वेष भावों से नित, कर्मों का संचय होता है।।
बस इसी संचयन को निश्चय, ही कर्मबंध कहते ज्ञानी।
सर्वज्ञदेव की वाणी को, नहिं माने वह है अज्ञानी।।75।।

दोहा – **कर्तृकर्म अधिकार को, अर्घ्य चढ़ाऊँ आज।**
तजकर निज अज्ञान को, सिद्ध करूँ सब काज।।

ॐ ह्रीं व्यवहारनयेन क्रोधादिरूपपरिणतात्मतत्त्वप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(3)

जइया इमेण जीवेण, अप्पणो आसवाण य तहेव।
णादं होदि विसे-संतरं तु तइया ण बंधो से।।76।।

जिस समय जीव निज आत्मा को, शुद्धात्मस्वरूप समझता है।
आस्रव को भिन्न समझ उससे, नहिं आस्रवमय परिणमता है।।
अज्ञानभाव को छोड़ तभी, सम्यक्ध्यानी बन जाता है।
नूतन कर्मों का बंध न कर, शुद्धात्मा में रम जाता है।।76।।

दोहा – **कर्तृकर्म अधिकार को, अर्घ्य चढ़ाऊँ आज।**
तजकर निज अज्ञान को, सिद्ध करूँ सब काज।।

ॐ ह्रीं नूतनकर्माश्रवनिरोधरूपअबंधकात्मतत्वप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(4)

णादूण आसवाणं, असुचित्तं च विवरीयभावं च।
दुक्खस्स कारणं ति य, तदो णियत्तिं कुणदि जीवो।।77।।

ये आस्रव हैं अपवित्र तथा, जड़ पुद्गल आतमभिन्न सदा।
सर्वदा दुःख के कारण हैं, इनका स्वभाव विपरीत कहा।।
ये आस्रव भाव जान करके, जो जीव उसे तज देता है।
वह रत्नत्रय वैराग्य भाव से, निज स्वरूप पा लेता है।।77।।

दोहा – **कर्तृकर्म अधिकार को, अर्घ्य चढ़ाऊँ आज।**
तजकर निज अज्ञान को, सिद्ध करूँ सब काज।।

ॐ ह्रीं निश्चयनयानुसारेण आश्रवनिवृत्तात्मतत्त्वप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(5)

अहमिक्को खलु सुद्धो, णिम्ममओ णाणदंसणसमग्गो।
तह्मि ठिओ तच्चित्तो, सव्वे एए खयं णेमि।।78।।

मैं हूँ निश्चय से एक शुद्ध, ममता विरहित शुद्धात्मा है।
सम्यग्दर्शन अरु ज्ञान चरण, से पूर्ण एक जीवात्मा है।।

चैतन्य स्वभावी आत्मा में, मैं लीन सदा ही रहता हूँ।
इसलिए सभी आस्रव भावों को, जान उन्हें क्षय करता हूँ।।78।।

दोहा – **कर्तृकर्म अधिकार को, अर्घ्य चढ़ाऊँ आज।**
तजकर निज अज्ञान को, सिद्ध करूँ सब काज।।

ॐ ह्रीं परमार्थेन ज्ञानदर्शनपरिपूर्णचैतन्यतत्त्वप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(6)

जीवणिबद्धा एए, अधुव अणिच्चा तहा असरणा य।
दुक्खा दुक्खफलात्ति य, णादूण णिवत्तए तेहिं।।79।।

जीवात्मा के संग लगे हुए, क्रोधादिक आस्रवभाव सभी।
विद्युत् सम चंचल अध्रुव हैं, नहिं नित्य अवस्था प्राप्त कभी।।
अशरण और दुःखस्वरूप तथा, दुखफल ही देने वाले हैं।
आस्रव को समझ भेदज्ञानी, नहिं इसमें फंसने वाले हैं।।79।।

दोहा – **कर्तृकर्म अधिकार को, अर्घ्य चढ़ाऊँ आज।**
तजकर निज अज्ञान को, सिद्ध करूँ सब काज।।

ॐ ह्रीं जीवनिबद्धदुःखफलरूपआस्रवनिरोधप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(7)

कम्मस्स य परिणामं, णोकम्मस्स य तहेव परिणामं।
ण करेइ एयमादा, जो जाणदि सो हवदि णाणी।।80।।

जो जीव कर्म नोकर्मों को, पुद्गल का कर्ता मान रहा।
नहिं आत्मा इनका उपादान, शुद्धात्मा उसको जान रहा।।
वे परमसमाधी में स्थित, मुनिजन ज्ञानी कहलाते हैं।
व्यवहार क्रियाओं से छुटकर, बस निश्चय में रम जाते हैं।।80।।

दोहा – **कर्तृकर्म अधिकार को, अर्घ्य चढ़ाऊँ आज।**
तजकर निज अज्ञान को, सिद्ध करूँ सब काज।।

ॐ ह्रीं कर्मनोकर्मपरिणामाकर्ताज्ञानीजीवतत्त्वप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(8)

कत्ता आदा भणिदो, ण य कत्ता केण सो उवाएण।
धम्मादी परिणामे, जो जाणदि सो हवदि णाणी।।81।।

यह आत्मा व्यवहारिक नय से, पुद्गल भावों का कर्ता है।
जो पुण्य पाप रागादिभाव, उनसे नहिं वह छुट सकता है।।
पर निश्चय नय से वही जीव, त्रैकालिक शुद्ध कहाता है।
वह मात्र जानता कर्ता नहिं, जिससे ज्ञानी बन जाता है।।81।।

दोहा – **कर्तृकर्म अधिकार को, अर्घ्य चढ़ाऊँ आज।**
तजकर निज अज्ञान को, सिद्ध करूँ सब काज।।

ॐ ह्रीं उभयनयाश्रयेण धर्मादिद्रव्याणां कर्ता-अकर्ताभावप्रतिपादक-समयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(9)

णवि परिणमइ ण गिण्हइ, उप्पज्जइ ण परदव्वपज्जाए।
णाणी जाणंतो वि हु, पुग्गलकम्मं अणेयविहं।।82।।

पुद्गल की नानाभेद रूप, जो कर्म अवस्था मानी है।
उनको उस रूप जानकर भी, नहिं उसमें परिणति ठानी है।।
ऐसा सहजानन्दी ज्ञानी, नहिं उनको ग्रहण कभी करता।
परद्रव्यरूप पर्यायों में, निश्चय से नहिं वह रह सकता।।82।।

दोहा – **कर्तृकर्म अधिकार को, अर्घ्य चढ़ाऊँ आज।**
तजकर निज अज्ञान को, सिद्ध करूँ सब काज।।

ॐ ह्रीं शुद्धनिश्चयेन पुद्गलादिपरद्रव्याणां अकर्तारूपजीवतत्त्वप्रतिपादक-समयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(10)

णवि परिणमदि ण गिण्हदि उप्पज्जदि ण परदव्वपज्जाए।
णाणी जाणंतो वि हु, सगपरिणामं अणेयविहं।।83।।

ज्ञानी मुनि अपनी आत्मा के, नाना विभाव पर्यायों को।
परद्रव्य समझकर निश्चय से, परिणमन कभी उसरूप न हो।।

ज्ञाता दृष्टा बस बना रहे, नहिं उसको कभी ग्रहण करता।
उनमें उत्पन्न न होता है, क्योंकि कर्ता वह नहिं इनका।।83।।

दोहा – **कर्तृकर्म अधिकार को, अर्घ्य चढ़ाऊँ आज।**
तजकर निज अज्ञान को, सिद्ध करूँ सब काज।।

ॐ ह्रीं निश्चयनयेन परद्रव्यपर्यायाणां अकर्तृ-अग्राहकात्मतत्त्वप्रतिपादक-समयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(11)

णवि परिणमदि ण गिण्हद्रि उप्पज्जदि ण परदव्वपज्जाए।
णाणी जाणंतो वि हु, पुग्गलकम्मफलमणंतं।।84।।

शुद्धातम में बसने वाले, ज्ञानीमुनि कर्म अनंतों के।
फल सुख-दुख आदि जानकर भी, नहिं हर्ष-विषाद करें उनमें।।
उन फल स्वरूप नहिं परिणमते, उत्पन्न न उनमें होते हैं।
निश्चय से उनका ग्रहण नहीं, बस निज फल को ही भोक्ते हैं।।84।।

दोहा – **कर्तृकर्म अधिकार को, अर्घ्य चढ़ाऊँ आज।**
तजकर निज अज्ञान को, सिद्ध करूँ सब काज।।

ॐ ह्रीं अनंतभेदरूपपुद्गलकर्मफलान्निज्ञात्वापि अपरिणामिजीवतत्त्वप्रतिपादक-समयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(12)

णवि परिणमदि ण गिण्हद्रि उप्पज्जदि ण परद्रव्वपज्जाए।
पुग्गलदव्वं पि तहा, परिणमइ सएहिं भावेहिं।।85।।

जैसे जीवात्मा पुद्गलमय, नहिं कभी परिणमन करता है।
वैसे ही पुद्गल भी पर की, पर्याय ग्रहण नहिं करता है।।
परद्रव्य रूप परिणमन नहीं, उत्पन्न न उनमें होता है।
पुद्गल तो पुद्गलमय परिणामों, से ही परिणत होता है।।85।।

दोहा – **कर्तृकर्म अधिकार को, अर्घ्य चढ़ाऊँ आज।**
तजकर निज अज्ञान को, सिद्ध करूँ सब काज।।

ॐ ह्रीं निजशुद्धभावपरिणामकात्मतत्त्वप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(13)

जीवपरिणामहेदुं, कम्मत्तं पुग्गला परिणमंति।
पुग्गलकम्मणिमित्तं, तहेव जीवो वि परिणमइ।।86।।

ज्यों जीवात्मा के रागद्वेष, परिणाम निमित्तों को पाकर।
पुद्गल भी कर्मरूप बनते, संबंधी भावों को लाकर।।
त्यों ही पुद्गल कर्मों के भी, उदयादिक हेतू को पाकर।
रागादिभावमय परिणमता यह जीव निमित्त स्वयं पाकर।।86।।

दोहा – **कर्तृकर्म अधिकार को, अर्घ्य चढ़ाऊँ आज।**
तजकर निज अज्ञान को, सिद्ध करूँ सब काज।।

ॐ ह्रीं जीवपुद्गलपरिणामयोः निमित्तेन रागादिभावग्राहकात्मतत्त्वप्रतिपादक-समयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(14)

णवि कुव्वइ कम्मगुणे, जीवो कम्मं तहेव जीवगुणे।
अण्णोण्णणिमित्तेण दु, परिणामं जाण दोण्हं पि।।87।।

नहिं उपादान से जीवात्मा, कर्मादिरूप परिणमता है।
नहिं कर्म भि जीवस्वरूप बने, वह पुद्गलमय ही रहता है।।
नहिं उपादान परिणमन करे, फिर भी निमित्त बन जाते हैं।
घट औ कुम्हार की भाँति निमित्त, नैमित्तिक भाव धराते हैं।।87।।

दोहा – **कर्तृकर्म अधिकार को, अर्घ्य चढ़ाऊँ आज।**
तजकर निज अज्ञान को, सिद्ध करूँ सब काज।।

ॐ ह्रीं जीवकर्मणोः परस्परनिमित्त-नैमित्तिकपरिणमनप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(15)

एएण कारणेण दु, कत्ता आदा सएण भावेण।
पुग्गलकम्मकयाणं, ण दु कत्ता सव्वभावाणं।।88।।

इसलिए वास्तविकता यह है, आत्मा निज भावों का कर्ता।
निज आत्मभाव के द्वारा ही, चैतन्य स्वरूप रमण करता।।

पुद्गलकर्मों से बने हुए, भावों का नहिं वह कर्ता है।
निश्चय तो ऐसा ही कहता, व्यवहार नहीं कह सकता है।।88।।

दोहा – **कर्तृकर्म अधिकार को, अर्घ्य चढ़ाऊँ आज।**
तजकर निज अज्ञान को, सिद्ध करूँ सब काज।।

ॐ ह्रीं स्वपरिणामकर्तृत्वप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(16)

णिच्छयणयस्स एवं आदा अप्पाणमेव हि करेदि।
वेदयदि पुणो तं चेव जाण अत्ता दु अत्ताणं।।89।।

निश्चयनय की दृष्टी से आत्मा, आत्मा का ही कर्ता है।
वह अपनी आत्मा के द्वारा, आत्मा का ही अनुभोक्ता है।।
हे शिष्य! जानकर तुम ऐसा, कर्तृत्वबुद्धि का त्याग करो।
निर्ग्रन्थ दिगम्बर मुनि बनकर, निज आत्मा में अनुराग करो।।89।।

दोहा – **कर्तृकर्म अधिकार को, अर्घ्य चढ़ाऊँ आज।**
तजकर निज अज्ञान को, सिद्ध करूँ सब काज।।

ॐ ह्रीं निश्चयनयेन स्वात्मस्वभावकर्तृत्वभोक्तृत्वप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(17)

ववहारस्स दु आदा, पुग्गलकम्मं करेदि णेयविहं।
तं चेवपुणो वेयइ, पुग्गलकम्मं अणेयविहं।।90।।

व्यवहारदृष्टि से वही जीव, नानाविध कर्मों का कर्त्ता।
उन ही पुद्गल कर्मों के भी, नानाविध सुख दुख को भरता।।
कर्ता भोक्तापन की बातें, व्यवहार नयाश्रित होती हैं।
नहिं निश्चयनय से औपाधिक, पर्याय जीव में होती हैं।।90।।

दोहा – **कर्तृकर्म अधिकार को, अर्घ्य चढ़ाऊँ आज।**
तजकर निज अज्ञान को, सिद्ध करूँ सब काज।।

ॐ ह्रीं व्यवहारनयाश्रितपुद्गलकर्मणां कर्तृत्वभोक्तृत्वप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(18)

जदि पुग्गलकम्ममिणं, कुव्वदि तं चेव वेदयदि आदा।
दो किरियावदिरित्तो, पसज्जए सो जिणावमदं।।91।।

पुद्गलकर्मों के करने में, आत्मा ही उपादान यदि है।
सुखदुःख अनुभव करने में भी, भोक्ता यह उपादान से है।।
ऐसी ऐकान्तिक कथनी से, द्विक्रियावाद आ जाएगा।
यह जिनशासन में इष्ट नहीं, वह दोनों नय बतलाएगा।।91।।

दोहा – **कर्तृकर्म अधिकार को, अर्घ्य चढ़ाऊँ आज।**
तजकर निज अज्ञान को, सिद्ध करूँ सब काज।।

ॐ ह्रीं उपादानरूपेण पुद्गलकर्मकर्तृत्वभोक्तृत्वनिराकरणप्रतिपादक-समयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(19)

जह्मा दु अत्तभावं, पुग्गलभावं च दोवि कुव्वंति।
तेण दु मिच्छादिट्ठी, दोकिरियावादिणो हुँति।।92।।

द्विक्रियावाद के मत में आत्मा, स्वपर भाव का कर्ता है।
जीव रु पुद्गल दोनों भावों, का वह निश्चित अनुभोक्ता है।।
दो क्रिया एक ही कहने से, वे मिथ्यादृष्टि होते हैं।
नय शैली से जो कथन करें, वे सम्यग्दृष्टि होते हैं।।92।।

दोहा – **कर्तृकर्म अधिकार को, अर्घ्य चढ़ाऊँ आज।**
तजकर निज अज्ञान को, सिद्ध करूँ सब काज।।

ॐ ह्रीं आत्मनःद्विक्रियावादित्वदोषप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(20)

पुग्गलकम्मणिमित्तं, जह आदा कुणदि अप्पणो भावं।
पुग्गलकम्मणिमित्तं, तह वेददि अप्पणो भावं।।93।।

यह आत्मा पुद्गल कर्मों का, उदयादि निमित्त से कर्ता है।
उसके निमित्त उत्पन्न हुए, निज भावों का ही कर्ता है।।

उन पुद्गल कर्म निमित्तों से, आत्मा में जो वेदन होता।
उन ही भावों का भोक्ता है, परभाव रूप वह नहिं होता।।93।।

दोहा – **कर्तृकर्म अधिकार को, अर्घ्य चढ़ाऊँ आज।**
तजकर निज अज्ञान को, सिद्ध करूँ सब काज।।

ॐ ह्रीं कर्मोदयादिनिमित्तरागादिभावकर्तृत्वभोक्तृत्वप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(21)

मिच्छत्तं पुण दुविहं, जीवमजीवं तहेव अण्णाणं।
अविरदि जोगो मोहो, कोहादीया इमे भावा।।94।।

एकांत कथन मिथ्यात्व कहा, दो भेद रूप वह होता है।
जो हैं अजीव अरु जीव रूप, सब भेद इन्हीं में होता है।।
अज्ञान अविरती योग मोह, क्रोधादिक भाव कहे जो भी।
उन सबके दो-दो भेद हुए, जीवरु अजीव माने वो भी।।94।।

दोहा – **कर्तृकर्म अधिकार को, अर्घ्य चढ़ाऊँ आज।**
तजकर निज अज्ञान को, सिद्ध करूँ सब काज।।

ॐ ह्रीं जीवाजीवभेदरूपमिथ्यात्वअज्ञानादिभावप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(22)

पुग्गलकम्मं मिच्छं, जोगो अविरदि अणाणमज्जीवं।
उवओगो अण्णाणं, अविरइ मिच्छं च जीवो दु।।95।।

मिथ्यात्व योग अविरति अज्ञान, जो ये कारण कहलाए हैं।
पुद्गल वर्गणा रूप होने से, वे अजीव बतलाए हैं।।
वे ही अज्ञान तथा अविरति, मिथ्यात्व विपर्यय जब होते।
उपयोग स्वरूप भाव होने से, जीव रूप परिणत होते।।95।।

दोहा – **कर्तृकर्म अधिकार को, अर्घ्य चढ़ाऊँ आज।**
तजकर निज अज्ञान को, सिद्ध करूँ सब काज।।

ॐ ह्रीं पुद्गलकर्मरूपजीव-उपयोगरूपजीवतत्त्वप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(23)

उवओगस्स अणाई, परिणामा तिण्ण मोहजुत्तस्स।
मिच्छत्तं अण्णाणं, अविरदिभावो य णायव्वो।।96।।

मोही संसारी प्राणी के, तीनों अनादि परिणाम कहे।
क्योंकी उसका उपयोग सदा, तीनों स्वरूप परिणमन करे।।
मिथ्या, अज्ञान तथा अविरति, ये भाव विकारी होते हैं।
ये कहे अशुद्ध जीव में ही, नहिं शुद्ध जीव के होते हैं।।96।।

दोहा – **कर्तृकर्म अधिकार को, अर्घ्य चढ़ाऊँ आज।**
तजकर निज अज्ञान को, सिद्ध करूँ सब काज।।

ॐ ह्रीं मिथ्यात्वादिअनादिकालीनपरिणामप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(24)

एएसु य उवओगो, तिविहो सुद्धो णिरंजणो भावो।
जं सो करेदि भावं, उवओगो तस्स सो कत्ता।।97।।

यद्यपि यह आत्मा शुद्ध नयाश्रित, शुद्ध निरंजन है ज्ञानी।
तो भी अनादि से तीनों ही, परिणामरूप है अज्ञानी।।
ये भाव उदय में आने पर, उपयोग उसी में रहता है।
अतएव निजात्म अवस्था तज, इन अशुभभाव का कर्ता है।।97।।

दोहा – **कर्तृकर्म अधिकार को, अर्घ्य चढ़ाऊँ आज।**
तजकर निज अज्ञान को, सिद्ध करूँ सब काज।।

ॐ ह्रीं आत्मनां विकारिभावकर्तृत्वगुणप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(25)

जं कुणइ भावमादा, कत्ता सो होदि तस्स भावस्स।
कम्मतं परिणमदे, तह्मि सयं पुग्गलं दव्वं।।98।।

जो जीव जिस समय जिन भावों, से जिन भावों को करता है।
उन ही भावों का कर्ता बन, परपरिणति को निज कहता है।।

इस तरह विकारी होने पर, जो पुद्गल परमाणू आते।
वे आत्मा के संग बन्ध करके, स्वयमेव कर्मसंज्ञा पाते।।98।।

दोहा – **कर्तृकर्म अधिकार को, अर्घ्य चढ़ाऊँ आज।**
तजकर निज अज्ञान को, सिद्ध करूँ सब काज।।

ॐ ह्रीं कर्मभावपरिणतपुद्गलद्रव्यप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(26)

परमप्पाणं कुव्वं, अप्पाणं पि य परं करिंतो सो।
अण्णाणमओ जीवो, कम्माणं कारगो होदि।।99।।

अज्ञानमयी यह जीव निरंतर, पर को अपना कहता है।
निजशुद्धात्मा में पर बुद्धी, कर करके उसको तजता है।।
ऐसी बहिरात्म अवस्था ही, संसार भ्रमण करवाती है।
बस इसीलिए सब कर्मों का, कर्ता आत्मा बन जाती है।।99।।

दोहा – **कर्तृकर्म अधिकार को, अर्घ्य चढ़ाऊँ आज।**
तजकर निज अज्ञान को, सिद्ध करूँ सब काज।।

ॐ ह्रीं अज्ञानभावेनोत्पन्नकर्मरूपपरिणतआत्मतत्त्वप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(27)

परमप्पाणमकुव्वं, अप्पाणं पि य परं अकुव्वंतो।
सो णाणमओ जीवो, कम्माणमकारओ होदि।।100।।

जब वही आत्मा अपने को, पररूप नहीं परिणमित करे।
पर को निजरूप नहीं माने, निजपर का भेद विज्ञान करे।।
तब वही जीव ज्ञानी बनकर, कर्मों का कर्त्ता नहिं बनता।
उसके नहिं नूतन कर्म बंध, वह परमसमाधी में रमता।।100।।

दोहा – **कर्तृकर्म अधिकार को, अर्घ्य चढ़ाऊँ आज।**
तजकर निज अज्ञान को, सिद्ध करूँ सब काज।।

ॐ ह्रीं निश्चयज्ञानेन अकर्ताभावपरिणतात्मतत्त्वप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(28)

तिविहो एसुवओगो, अप्पवियप्पं करेइ कोहोहं।
कत्ता तस्सुवओगस्स, होइ सो अत्तभावस्स।।101।।

पूर्वोक्त कथित मिथ्यात्व आदि, त्रय भावों को जो करते हैं।
मैं क्रोधरूप हूँ यह विकल्प, आत्मा में करने लगते हैं।।
उस समय उन्हीं का आत्मभाव, उपयोग का कर्ता बन जाता।
वैभाविक यह उपयोग कहा, स्वाभाविक रूप नहीं ध्याता।।101।।

दोहा – **कर्तृकर्म अधिकार को, अर्घ्य चढ़ाऊँ आज।**
तजकर निज अज्ञान को, सिद्ध करूँ सब काज।।

ॐ ह्रीं क्रोधरूपपरिणतकर्तास्वरूपात्मतत्त्वप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(29)

तिविहो एसुवओगो, अप्पवियप्पं करेदि धम्माई।
कत्ता तस्सुवओगस्स, होदि सो अत्तभावस्स।।102।।

पूर्वोक्त कथित मिथ्यात्व आदि, त्रय भावों को जो करते हैं।
धर्मादि द्रव्य को आत्मरूप, निज भाव समझने लगते हैं।।
उस समय उन्हीं का आत्मभाव, उपयोग का कर्ता बन जाता।
वैभाविक परिणति में पड़कर, स्वाभाविक रूप नहीं पाता।।102।।

दोहा – **कर्तृकर्म अधिकार को, अर्घ्य चढ़ाऊँ आज।**
तजकर निज अज्ञान को, सिद्ध करूँ सब काज।।

ॐ ह्रीं त्रिविधोपयोगरूपमिथ्यात्वभावपरिणतात्मतत्त्वप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(30)

एवं पराणि दव्वाणि, अप्पयं कुणदि मंदबुद्धीओ।
अप्पाणं अवि य परं, करेइ अण्णाणभावेण।।103।।

संसारी मन्दबुद्धि प्राणी, परद्रव्यों को निज मान रहे।
आश्चर्य किन्तु निज आत्मा को ही, पर का कर्ता जान रहे।।

अज्ञानभाव ही मात्र जीव के, निजानन्द का बाधक है।
परमात्मअवस्था की प्राप्ती में, भेदज्ञान ही साधक है।।103।।

दोहा – **कर्तृकर्म अधिकार को, अर्घ्य चढ़ाऊँ आज।**
तजकर निज अज्ञान को, सिद्ध करूँ सब काज।।

ॐ ह्रीं कर्तृत्वभावस्य मूलकारणप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(31)

एदेण दु सो कत्ता आदा, णिच्छयविदूहिं परिकहिदो।
एवं खलु जो जाणदि, सो मुंचदि सव्वकत्तित्तं।।।104।

निश्चयज्ञाता मुनि ने आत्मा को, निज का कर्ता माना है।
निज आत्मा में ही रम करके, उसके गुण को पहचाना है।।
जो भी प्राणी दृढ़तापूर्वक, ऐसी श्रद्धा कर लेते हैं।
वे कर्तापन को दूर भगा, क्रम से सिद्धि वर लेते हैं।।104।।

दोहा – **कर्तृकर्म अधिकार को, अर्घ्य चढ़ाऊँ आज।**
तजकर निज अज्ञान को, सिद्ध करूँ सब काज।।

ॐ ह्रीं कर्तृत्वाभावगुणप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(32)

ववहारेण दु आदा, करेदि घडपडरथाणि दव्वाणि।
करणाणि य कम्माणि य, णोकम्माणीह विविहाणि।।105।।

यह आत्मा व्यवहारिक नय से, घट पट रथ आदिक द्रव्यों का।
कर्ता है तथा इन्द्रियों का भी, है कर्ता परद्रव्यों का।।
जो विविध कर्म नोकर्म कहे, उनका भी कर्ता आत्मा है।
केवल व्यवहारिक नय से ही, निश्चय से तो परमात्मा है।।105।।

दोहा – **कर्तृकर्म अधिकार को, अर्घ्य चढ़ाऊँ आज।**
तजकर निज अज्ञान को, सिद्ध करूँ सब काज।।

ॐ ह्रीं व्यवहारनयापेक्षया घटवस्त्रादिकर्मनोकर्मादिकर्तृत्वभावप्रतिपादक-समयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(33)

जदि सो परदव्वाणि य करिज्ज णियमेण तम्मओ होज्ज।
जह्मा ण तम्मओ तेण, सो ण तेसिं हवदि कत्ता।।106।।

यदि कभी मान भी लें ऐसा, आत्मा पर द्रव्यों का कर्ता।
तो क्या परद्रव्यों के संग में, वह खुद भी तन्मय हो सकता ?
लेकिन आत्मा तो तन्मय नहिं, हो सकता परद्रव्यों के संग।
तो फिर कैसे हो सकता पर का, कर्ता पर द्रव्यों के संग।।106।।

दोहा – **कर्तृकर्म अधिकार को, अर्घ्य चढ़ाऊँ आज।**
तजकर निज अज्ञान को, सिद्ध करूँ सब काज।।

ॐ ह्रीं परमार्थतत्त्वप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(34)

जीवो ण करेदि घडं, णेव पडं णेव सेसगे दव्वे।
जोगुवओगा उप्पा-दगा य तेसिं हवदि कत्ता।।107।।

नहिं जीव कभी घट का कर्ता पट का कर्ता नहिं होता है।
नहिं शेष द्रव्य का भी कर्ता वह नहीं किसी का भोक्ता है।।
उपयोग योग जो जीवद्रव्य के घटपटादि में निमित्त बने।
बस इसीलिए आत्मा उनका कर्ता माना जाता जग में।।107।।

दोहा – **कर्तृकर्म अधिकार को, अर्घ्य चढ़ाऊँ आज।**
तजकर निज अज्ञान को, सिद्ध करूँ सब काज।।

ॐ ह्रीं निमित्तनैमित्तिकभावैरपि अकर्तागुणप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(35)

जे पुग्गलदव्वाणं, परिणामा होंति णाणआवरणा।
ण करेदि ताणि आदा, जो जाणदि सो हवदि णाणी।।108।।

जो पुद्गल द्रव्यों की परिणति, कर्मादि रूप से होती है।
ज्ञानावरणादि प्रकृतियों की, स्वाभाविक स्थिति होती है।।

आत्मा वास्तव में उन कर्मों का, कर्ता भी नहिं होता है।
जो निज में स्थित होता है, वह सम्यग्ज्ञानी होता है।।108।।

दोहा – **कर्तृकर्म अधिकार को, अर्घ्य चढ़ाऊँ आज।**
तजकर निज अज्ञान को, सिद्ध करूँ सब काज।।

ॐ ह्रीं शुद्धज्ञानीगुणप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(36)

जं भावं सुहमसुहं, करेदि आदा स तस्स खलु कत्ता।
तं तस्स होदि कम्मं, सो तस्स दु वेदगो अप्पा।।109।।

शुभ अशुभ रूप जिन भावों को, संसारी आत्मा करता है।
बस किसी दृष्टि से वही जीव, उन सब भावों का कर्ता है।।
उन भावों को ही कर्म रूप, यह जीव ग्रहण जब करता है।
भोक्ता भी स्वयं बने प्राणी, कर्मों के फल को चखता है।।109।।

दोहा – **कर्तृकर्म अधिकार को, अर्घ्य चढ़ाऊँ आज।**
तजकर निज अज्ञान को, सिद्ध करूँ सब काज।।

ॐ ह्रीं निश्चयनयापेक्षया अज्ञानीजीवानामपि अकर्ताभावप्रतिपादक-समयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(37)

जो जह्मि गुणे दव्वे, सो अण्णह्मि दु ण संकमदि दव्वे।
सो अण्णमसंकंतो, कह तं परिणामए दव्वं।।110।।

सच तो है जो गुण जिन द्रव्यों में, सतत वर्तता रहता है।
वह उसे छोड़ कर अन्य द्रव्य मय, कभी नहीं परिणमता है।।
तो सोचो अन्य द्रव्य कैसे, पर को निज रूप बना सकता।
यह केवल मन की भ्रान्ती है, स्वीकार न निश्चय कर सकता।।110।।

दोहा – **कर्तृकर्म अधिकार को, अर्घ्य चढ़ाऊँ आज।**
तजकर निज अज्ञान को, सिद्ध करूँ सब काज।।

ॐ ह्रीं परभावरूपसंक्रमणाभावप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(38)

दव्वगुणस्स य आदा, ण कुणदि पुग्गलमयह्मि कम्मह्मि।
तं उभयमकुव्वंतो, तह्मि कहं तस्स सो कत्ता।।111।।

जैसे कुम्हार घट को रचकर, उस रूप न तन्मय हो जाता।
वैसे आत्मा कर्मों को कर, पुद्गल में ही नहिं खो जाता।।
गुण और द्रव्य दोनों स्वरूप, जब जीवात्मा नहिं बनता है।
तब बोलो उनका उपादान, क्यों जीव स्वयं बन सकता है?।।111।।

दोहा – **कर्तृकर्म अधिकार को, अर्घ्य चढ़ाऊँ आज।**
तजकर निज अज्ञान को, सिद्ध करूँ सब काज।।

ॐ ह्रीं शुद्धात्मनः अकर्तागुणप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(39)

जीवह्मि हेदुभूदे, बंधस्स दु पस्सिदूण परिणामं।
जीवेण कदं कम्मं, भण्णदि उवयारमत्तेण।।112।।

कर्मों के आश्रव और बंध में, जीव निमित्त बना करता।
यदि जीव न हो तो केवल पुद्गल, कर्मबंध नहीं कर सकता।।
बस इसीलिए उपचार मात्र से, जीव भी कर्ता कहलाता।
व्यवहार धर्म इस हेतू से ही, हेय नहीं माना जाता।।112।।

दोहा – **कर्तृकर्म अधिकार को, अर्घ्य चढ़ाऊँ आज।**
तजकर निज अज्ञान को, सिद्ध करूँ सब काज।।

ॐ ह्रीं उपचारेण निमित्तनैमित्तिकभावप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(40)

जोधेहिं कदे जुद्धे, राएण कदंति जंपदे लोगो।
तह ववहारेण कदं, णाणावरणादि जीवेण।।113।।

ज्यों रणभूमि में नृप सेना, जब शत्रुसैन्य संग लड़ती है।
योद्धा का युद्ध देख जनता, नृप युद्ध करे यह कहती है।।
त्यों ही व्यवहार नयाश्रय से, आत्मा कर्ता कहलाता है।
ज्ञानावरणादिक कर्मों का, परिणमन यही बतलाता है।।113।।

दोहा – **कर्तृकर्म अधिकार को, अर्घ्य चढ़ाऊँ आज।**
तजकर निज अज्ञान को, सिद्ध करूँ सब काज।।

ॐ ह्रीं शत्रुसैन्यं प्रति सन्नद्धनृपवत्उपचारगुणप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(41)

उप्पादेदि करेदि य, बंधदि परिणामएदि गिण्हदि य।
आदा पुग्गलदव्वं, ववहारणयस्स वत्तव्वं।।114।।

आत्मा व्यवहार नयाश्रय से, पुद्गल कर्मों का कर्ता है।
उन सबको ग्रहण करे बांधे, उपजे उन मय परिणमता है।।
निश्चयनय से नहिं कर्ता नहिं, बंधता उत्पन्न नहीं करता।
उस रूप न परिणत होता है, वह शुद्ध भावमय परिणमता।।114।।

दोहा – **कर्तृकर्म अधिकार को, अर्घ्य चढ़ाऊँ आज।**
तजकर निज अज्ञान को, सिद्ध करूँ सब काज।।

ॐ ह्रीं व्यवहारापेक्षया पुद्गलकर्मणां कर्तृभावप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(42)

जह राया ववहारा, दोसगुणुप्पादगोत्ति आलविदो।
तह जीवो ववहारा, दव्वगुणुप्पादगो भणिदो।।115।।

ज्यों प्रजा के गुण औ दोषों का, उत्पादक राजा कहलाता।
व्यवहार दृष्टि से मात्र कथन, निश्चय नहिं यह सब बतलाता।।
त्यों ही व्यवहार नयापेक्षा, यह जीव द्रव्य भी कहलाता।
पौद्गलिक द्रव्य में कर्मरूप, गुण का उत्पादक बन जाता।।115।।

दोहा – **कर्तृकर्म अधिकार को, अर्घ्य चढ़ाऊँ आज।**
तजकर निज अज्ञान को, सिद्ध करूँ सब काज।।

ॐ ह्रीं उपचारेण पुद्गलद्रव्यगुणपर्यायाणां कर्तृत्वप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(43)

सामण्णपच्चया खलु, चउरो भण्णंति बंधकत्तारो।
मिच्छत्तं अविरमणं, कसायजोगा य बोद्धव्वा।।116।।

सामान्यतया इस जीव द्रव्य में, चार बन्ध के कारण हैं।
मिथ्यात्व तथा अविरति कषाय, अरु योग बंध के साधन हैं।।
ये चारों प्रत्यय कर्मास्रव, अरु बन्ध सदा करवाते हैं।
इनसे विरहित होकर प्राणी, प्रत्ययविरहित हो जाते हैं।।116।।

दोहा – **कर्तृकर्म अधिकार को, अर्घ्य चढ़ाऊँ आज।**
तजकर निज अज्ञान को, सिद्ध करूँ सब काज।।

ॐ ह्रीं मिथ्यात्वअविरतिकषाययोगचतुःबंधप्रत्ययप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(44)

तेसिं पुणोवि य इमो, भणिदो भेदो दु तेरसवियप्पो।
मिच्छादिट्ठीआदी, जाव सजोगिस्स चरमंतं।।117।।

आगे इनके ही भेद कहे, तेरह गुणथान सहित प्राणी।
मिथ्यादृष्टी आदिक सयोग, केवली प्रभृति श्रेणी मानी।।
इनमें ही जीव शुभाशुभ भावों, से परिणमन किया करता।
ध्यानी मुनिध्यान अवस्था में, निज अमृत पान किया करता।।117।।

दोहा – **कर्तृकर्म अधिकार को, अर्घ्य चढ़ाऊँ आज।**
तजकर निज अज्ञान को, सिद्ध करूँ सब काज।।

ॐ ह्रीं मिथ्यादृष्ट्यादि सयोगिकेवलीपर्यंतजीवभावप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(45)

एदे अचदेणा खलु, पुग्गलकम्मुदयसंभवा जह्मा।
ते जदि करंति कम्मं, णवि तेसिं वेदगो आदा।।118।।

जो पुद्गल कर्म उदय से हैं, उत्पन्न अचेतन भाव सभी।
वे कर्म करें यदि तो भी आत्मा, उनका वेदक बने नहीं।।

पुद्गल ही पुद्गल का कर्ता, उससे आत्मा का क्या नाता।
कर्मों का जीवद्रव्य के संग, बस निमित्त मात्र से ही नाता।।118।।

दोहा – **कर्तृकर्म अधिकार को, अर्घ्य चढ़ाऊँ आज।**
तजकर निज अज्ञान को, सिद्ध करूँ सब काज।।

ॐ ह्रीं पुद्गलकर्मोदयोत्पन्नभावप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(46)

गुणसण्णिदा दु एदे, कम्मं कुव्वंति पच्चया जह्मा।
तह्मा जीवोऽकत्ता, गुणा य कुव्वंति कम्माणि।।119।।

है गुणस्थान का तारतम्य, जब तक आत्मा संग लगा हुआ।
तब तक ही पुद्गल भावों का, सम्बन्ध जीव से जुड़ा हुआ।।
क्योंकि निश्चय से जीव अकर्ता, कर्मबंध नहिं हो उसमें।
गुणथान नाम के प्रत्यय ही, कर्मों को करते हैं सच में।।119।।

दोहा – **कर्तृकर्म अधिकार को, अर्घ्य चढ़ाऊँ आज।**
तजकर निज अज्ञान को, सिद्ध करूँ सब काज।।

ॐ ह्रीं गुणस्थानसंज्ञया कर्मणां कर्तृभावप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(47)

जह जीवस्स अणण्णुक्ओगो कोहो वि तह जदि अणण्णो।
जीवस्साजीवस्स य, एवमणण्णत्तमावण्णं।।120।।

ज्यों आत्मा से तन्मय होकर, उपयोग सदा संग रहता है।
त्यों ही क्रोधादि विभाव भाव भी, यदि आत्मा में बसता है।।
तो जीव और पुद्गल में निश्चित, एकपना हो जावेगा।
नहिं भेद रहेगा दोनों में, आत्मा अजीव बन जावेगा।।120।।

दोहा – **कर्तृकर्म अधिकार को, अर्घ्य चढ़ाऊँ आज।**
तजकर निज अज्ञान को, सिद्ध करूँ सब काज।।

ॐ ह्रीं जीव-प्रत्ययोः भिन्नत्वं प्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(48)

एवमिह जो दु जीवो, सो चेव दु णियमदो तहाजीवो।
अयमेयत्ते दोसो, पच्चयणोकम्मकम्माणं।।121।।

जब जीव अजीव द्रव्य दोनों, सर्वथा एक हो जायेंगे।
एकत्त्व दोष के कारण वे, दोनों निजरूप गवाँयेंगे।।
बस इसी तरह नोकर्म कर्म, प्रत्यय अरु जीव यदी मानो।
दोनों में एकरूपता यदि तो, जड़स्वभाव आत्मा जानो।।121।।

दोहा – **कर्तृकर्म अधिकार को, अर्घ्य चढ़ाऊँ आज।**
तजकर निज अज्ञान को, सिद्ध करूँ सब काज।।

ॐ ह्रीं जीवाजीवयोः एकत्वदोषप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(49)

अह दे अण्णो कोहो, अण्णुवओगप्पगो हवदि चेदा।
जह कोहो तह पच्चय, कम्मं णोकम्ममवि अण्णं।।122।।

इन दोषों से यदि बचना है, तो जीव अजीव भिन्न मानो।
है क्रोध अन्य उपयोगवान्, आत्मा भी अन्य सदा जानो।।
जैसे आत्मा से क्रोध अलग, वैसे ही सब प्रत्यय होते।
नोकर्म और कर्मादि भाव, आत्मा से भिन्न सदा होते।।122।।

दोहा – **कर्तृकर्म अधिकार को, अर्घ्य चढ़ाऊँ आज।**
तजकर निज अज्ञान को, सिद्ध करूँ सब काज।।

ॐ ह्रीं कर्मनोकर्माभ्यां भिन्नात्मतत्त्वप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(50)

जीवे ण सयं बद्धं ण, सयं परिणमदि कम्मभावेण।
जइ पुग्गलदव्वमिणं, अप्परिणामी तदा होदि।।123।।

नहिं जीव में पुद्गलद्रव्य बंधें, स्वयमेव जीव संग आ करके।
नहिं कर्मरूप परिणमे वही, पुद्गल निमित्त को पा करके।।

यदि ऐसा माने तो पुद्गल, परिणामी नहिं कहलाएगा।
वह नित्य अपरिणामी होकर, कैसे संसार चलाएगा।।123।।

दोहा – **कर्तृकर्म अधिकार को, अर्घ्य चढ़ाऊँ आज।**
तजकर निज अज्ञान को, सिद्ध करूँ सब काज।।

ॐ ह्रीं पुद्गलद्रव्यस्य अपरिणामिदोषप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(51)

कम्मइयवग्गणासु य, अपरिणमंतीसु कम्मभावेण।
संसारस्स अभावो, पसज्जदे संखसमओ वा।।124।।

कर्मादि रूप से कर्मवर्गणाएँ, भी नहिं परिणमती हैं।
है अपरिणामि पौद्गलिक कर्म, नहिं उसमें ऐसी शक्ती है।।
ऐसी मान्यता सांख्यदर्शन के, भावों को बतलाती है।
संसार नहीं हो सकता फिर, मुक्ती भी नहिं बन पाती है।।124।।

दोहा – **कर्तृकर्म अधिकार को, अर्घ्य चढ़ाऊँ आज।**
तजकर निज अज्ञान को, सिद्ध करूँ सब काज।।

ॐ ह्रीं पौद्गलिककर्मणां प्रति सांख्यमतानुसारिदोषप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(52)

जीवो परिणामयदे, पुग्गलदव्वाणि कम्मभावेण।
ते सयमपरिणमंते, कहं णु परिणामयदि चेदा।।125।।

पुद्गलद्रव्यों को जीव स्वयं, हठपूर्वक कर्म बनाता है।
ऐसा यदि मानें तो पुद्गल, परिणामि स्वयं बन जाता है।।
यदि अपरिणामि होगा पुद्गल, तो कैसे परिणम सकता है ?
कर्मादि रूप बन करके कैसे, अपरिणामि रह सकता है?।।125।।

दोहा – **कर्तृकर्म अधिकार को, अर्घ्य चढ़ाऊँ आज।**
तजकर निज अज्ञान को, सिद्ध करूँ सब काज।।

ॐ ह्रीं पुद्गलद्रव्यस्वयं परिणामित्वदोषप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(53)

अह सयमेव हि परिणमदि, कम्मभावेण पुग्गलं दव्वं।
जीवो परिणामयदे, कम्मं कम्मत्तमिदि मिच्छा।।126।।

यदि मानें पुद्गल द्रव्य स्वयं, कर्मादि रूप परिणमता है।
पर का निमित्त नहिं उसे कर्म, नो कर्मरूप कर सकता है।।
तब तो जीवात्मा का निमित्त, मिथ्या भ्रान्ती करवाता है।
यह कथन तुम्हारा है असत्य, कर्मों को जीव कराता है।।126।।

दोहा – **कर्तृकर्म अधिकार को, अर्घ्य चढ़ाऊँ आज।**
तजकर निज अज्ञान को, सिद्ध करूँ सब काज।।

ॐ ह्रीं पुद्गलद्रव्यस्वयं अपरिणामित्वदोषप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(54)

णियमा कम्म परिणदं, कम्मं चि य होदि पुग्गलं दव्वं।
तह तं णाणावरणाइ, परिणदं मुणसु तच्चेव।।127।।

सच तो यह पुद्गल द्रव्य नियम से, कर्मरूप परिणमता है।
वह पुद्गल ही ज्ञानावरणादिक, कर्मरूप खुद बनता है।।
अतएव कर्म को पुद्गल की, पर्याय सदा जानो जग में।
इनसे विरहित निज आत्मा को, नित शुद्ध बुद्ध मानो सच में।।127।।

दोहा – **कर्तृकर्म अधिकार को, अर्घ्य चढ़ाऊँ आज।**
तजकर निज अज्ञान को, सिद्ध करूँ सब काज।।

ॐ ह्रीं पुद्गलद्रव्यमेव-ज्ञानावरणादिकर्मरूपपरिणतस्वरूपप्रतिपादक-समयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(55)

ण सयं बद्धो कम्मे, ण सयं परिणमदि कोहमादीहिं।
जइ एस तुज्झ जीवो, अप्परिणामी तदा होदि।।128।।

नहिं जीव स्वयं बंधता कर्मों से, क्रोध रूप नहिं परिणमता।
आत्मा की स्थिति यदि ऐसी, माने तो कैसे बन सकता।।

एकांतरूप से जीव द्रव्य को, अपरिणामि नहिं कह सकते।
संसार व्यवस्था नहिं बनती, यदि जीव नहीं परिणमन करे।।128।।

दोहा – **कर्तृकर्म अधिकार को, अर्घ्य चढ़ाऊँ आज।**
तजकर निज अज्ञान को, सिद्ध करूँ सब काज।।

ॐ ह्रीं निश्चयनयेन क्रोधादिभिः अपरिणतात्मतत्त्वप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(56)

अपरिणमंतम्हि सयं, जीवे कोहादिएहिं भावेहिं।
संसारस्स अभावो, पसज्जदे संखसमओ वा।।129।।

निश्चय नय से नहिं जीव स्वयं, क्रोधादि रूप परिणमता है।
लेकिन संसार अवस्था में, कर्मों के संग ही रमता है।।
यदि एक रूप से मात्र जीव को, अपरिणामि कहना होगा।
तो सांख्य कथन आ जावेगा, संसार अभाव सिद्ध होगा।।129।।

दोहा – **कर्तृकर्म अधिकार को, अर्घ्य चढ़ाऊँ आज।**
तजकर निज अज्ञान को, सिद्ध करूँ सब काज।।

ॐ ह्रीं एकांतेन अपरिणामिजीवकथनेन सांख्यमतदोषप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(57)

पुग्गलकम्मं कोहो, जीवं परिणामएदि कोहत्तं।
तं समयपरिणमंतं, कहं णु परिणामयदि कोहो।।130।।

क्रोधादि कर्म पुद्गलस्वरूप जब, जीवात्मा संग आते हैं।
निज के सहकारी से आत्मा को, क्रोधरूप परिणाते हैं।।
सोचो यदि जीवद्रव्य खुद ही, परिणमन नहीं कर सकता है।
तो कैसे क्रोधकर्म उसको, निज सम परिणत कर सकता है?।।130।।

दोहा – **कर्तृकर्म अधिकार को, अर्घ्य चढ़ाऊँ आज।**
तजकर निज अज्ञान को, सिद्ध करूँ सब काज।।

ॐ ह्रीं व्यवहारनिश्चयनयापेक्षया परिणमनशीलजीवतत्त्वप्रतिपादक-समयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(58)

अह सयमप्पा परिणमदि, कोहभावेण एस दे बुद्धी।
कोहो परिणामयदे, जीवं कोहत्तमिदि मिच्छा।।131।।

यदि ऐसी तेरी बुद्धि है, आत्मा निज के परिणामों से।
क्रोधादि रूप परिणत होता, बंधता भी है उन कर्मों से।।
तो पुद्गलकर्म जीव को क्रोध, भाव से परिणत करता है।
यह कथन सदा मिथ्या होगा, नहिं जीव कुपित हो सकता है।।131।।

दोहा – **कर्तृकर्म अधिकार को, अर्घ्य चढ़ाऊँ आज।**
तजकर निज अज्ञान को, सिद्ध करूँ सब काज।।

ॐ ह्रीं क्रोधरूपपरिणतात्मतत्त्वं भ्रांतभावविनाशनप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(59)

कोहुवजुत्तो कोहो, माणुवजुत्तो य माणमेवादा।
माउवजुत्तो माया, लोहुवजुत्तो हविद लोहो।।132।।

इसलिए कथन यह सिद्ध हुआ, क्रोधादि भाव से युक्तात्मा।
क्रोधी कहलाता मान कर्म से, युत है मानी यह आत्मा।।
माया में है उपयोग यदी, तो माया रूप कहाएगा।
है लोभ कर्म से युक्त तभी, लोभी आत्मा बन जाएगा।।132।।

दोहा – **कर्तृकर्म अधिकार को, अर्घ्य चढ़ाऊँ आज।**
तजकर निज अज्ञान को, सिद्ध करूँ सब काज।।

ॐ ह्रीं व्यवहारेणक्रोधमानमायालोभकषायपरिणतात्मतत्त्वप्रतिपादक-समयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(60)

जो संगं तु मुइत्ता, जाणदि उवओगमप्पगं सुद्धं।
तं णिस्संगं साहुँ, परमट्ठवियाणया विंति।।133।।

जो साधु बाह्य आभ्यंतर का, सम्पूर्ण परिग्रह तजते हैं।
शुद्धोपयोगमय आत्मा का, नित अनुभव करते रहते हैं।।

परमार्थविज्ञ गणधर देवादिक, उनको ही निःसंग कहें।
वे ही श्रेणी पर चढ़ करके, परमात्म अवस्था शीघ्र लहें।।133।।

दोहा – **कर्तृकर्म अधिकार को, अर्घ्य चढ़ाऊँ आज।**
तजकर निज अज्ञान को, सिद्ध करूँ सब काज।।

ॐ ह्रीं गणधरकथितशुद्धात्मतत्त्वज्ञायकनिष्परिग्रहीमुनिगुणप्रतिपादक-समयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(61)

जो मोहं तु मुइत्ता, णाणसहावाधियं मुणदि आदं।
तं जिदमोहं साहुँ, परमट्ठवियाणया विंति।।134।।

जो मोहकर्म पर विजय प्राप्त कर, निर्मोही बन जाते हैं।
बस ज्ञानस्वभावी आत्मा को ही, अपना ध्येय बनाते हैं।।
उस मोहरहित मुनिवर को ही, आगम के ज्ञाता गुरु कहते।
यह ही है जितमोही साधू, नहिं श्रावक यह पद पा सकते।।134।।

दोहा – **कर्तृकर्म अधिकार को, अर्घ्य चढ़ाऊँ आज।**
तजकर निज अज्ञान को, सिद्ध करूँ सब काज।।

ॐ ह्रीं ज्ञायकस्वभावस्थितजितमोहमुनिगुणप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(62)

जो धम्मं तु मुइत्ता, जाणदि उवओगमप्पगं सुद्धं।
तं धम्मसंगमुक्कं, परमट्ठवियाणया विंति।।135।।

व्यवहारिक धर्म छोड़ करके, जो निश्चय धर्म को ध्याते हैं।
शुद्धात्मज्ञान दर्शन स्वरूप, उपयोगी आत्मा पाते हैं।।
परमार्थज्ञानधारी गणधर, उनको सद्धर्मगुरु कहते।
जो धर्म परिग्रह से विरहित, निज पद में ही रमते रहते।।135।।

दोहा – **कर्तृकर्म अधिकार को, अर्घ्य चढ़ाऊँ आज।**
तजकर निज अज्ञान को, सिद्ध करूँ सब काज।।

ॐ ह्रीं धर्मसंगविमुक्तपरमार्थविज्ञायकमहामुनिगुणप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(63)

जं कुणदि भावमादा, कत्ता सो होदि तस्स कम्मस्स।
णाणिस्स स णाणमओ, अण्णाणमओ अणाणिस्स।।136।।

आत्मा जो भाव करे जिस क्षण, उसका ही कर्ता होता है।
जो भाव जिस समय नहीं करे, उसका नहिं कर्ता होता है।।
ज्ञानी के ज्ञानभाव माना, जो निश्चयरत्नत्रयमय है।
अज्ञानी के अज्ञानभाव, होता रागादिभावमय है।।136।।

दोहा – **कर्तृकर्म अधिकार को, अर्घ्य चढ़ाऊँ आज।**
तजकर निज अज्ञान को, सिद्ध करूँ सब काज।।

ॐ ह्रीं निजात्मभावकर्तृत्वगुणप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(64)

अण्णाणमओ भावो, अणाणिणो कुणदि तेण कम्माणि।
णाणमओ णाणिस्स दु, ण कुणदि तह्मा दु कम्माणि।।137।।

अज्ञानमयी जो जीव राग-द्वेषादि भाव को करता है।
वह नित्य कर्म का बंध करे, नहिं कभी अबंधक रहता है।।
लेकिन ज्ञानी वैरागी मुनि, जो निर्विकल्प बन जाते हैं।
वे किसी कर्म के कर्ता नहिं, निज में परिणत हो जाते हैं।।137।।

दोहा – **कर्तृकर्म अधिकार को, अर्घ्य चढ़ाऊँ आज।**
तजकर निज अज्ञान को, सिद्ध करूँ सब काज।।

ॐ ह्रीं ज्ञानाज्ञानभावप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(65)

णाणमया भावाओ, णाणमओ चेव जायदे भावो।
जम्हा तम्हा णाणिस्स, सव्वे भावा हु णाणमया।।138।।

ज्ञानी के तो ज्ञानादिभाव ही, नित्य उपजते रहते हैं।
बस ज्ञान ज्ञान में लीन सदा, वह ज्ञान गंग में बहते हैं।।

इस कारण ज्ञानी के समस्त, परिणाम ज्ञानमय होते हैं।
जो निश्चय रत्नत्रय में ही, उत्कृष्ट ध्यान में होते हैं।।138।।

दोहा – **कर्तृकर्म अधिकार को, अर्घ्य चढ़ाऊँ आज।**
तजकर निज अज्ञान को, सिद्ध करूँ सब काज।।

ॐ ह्रीं निश्चयनयापेक्षया ज्ञानमयभावपरिणतज्ञानीजीवप्रतिपादक-समयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(66)

अण्णाणमया भावा, अण्णाणो चेव जायए भावो।
जम्हा तम्हा भावा, अण्णाणमया अणाणिस्स।।139।।

यूं ही अज्ञानी प्राणी के, अज्ञानभाव ही होते हैं।
रागीद्वेषी परिणामों से, परिणाम न निर्मल होते हैं।।
अज्ञानी के इसलिए सतत, अज्ञानभाव ही माना है।
पर में ही कर्ता बुद्धि लिए, निज को किंचित् नहिं जाना है।।139।।

दोहा – **कर्तृकर्म अधिकार को, अर्घ्य चढ़ाऊँ आज।**
तजकर निज अज्ञान को, सिद्ध करूँ सब काज।।

ॐ ह्रीं अज्ञानभावपरिणताज्ञानीजीवप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

(67)

कणयमया भावादो, जायंते कुण्डलादयो भावा।
अयमयया भावादो, जह जायंते तु कडयादी।।140।।

जैसे सोने के पासे से, स्वर्णाभूषण बन जाते हैं।
लोहे की धातू से लोहे के, बर्तनादि बन जाते हैं।।
नहिं स्वर्ण से लोहमयी वस्तू, को प्राप्त कभी कर सकते हैं।
लोहे से स्वर्णाभूषण नहिं, त्रैकाल में भी बन सकते हैं।।140।।

दोहा – **कर्तृकर्म अधिकार को, अर्घ्य चढ़ाऊँ आज।**
तजकर निज अज्ञान को, सिद्ध करूँ सब काज।।

ॐ ह्रीं कनकमयकुण्डलादिवत्-पर्यायप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(68)

अण्णाणमया भावा, अणाणिणो बहुबिहा वि जायंते।
णाणिस्स दु णाणमया, सव्वे भावा तहा होंति।।141।।

इस विधि से अज्ञानी प्राणी, अज्ञानभाव को ही करता।
अज्ञान भाव को बना बना, नाना पर्यायों को धरता।।
ज्ञानी आत्मा तो ज्ञानभावमय, वीतराग बन जाता है।
वह ज्ञान ध्यान में परिणत हो, कैवल्यज्ञान बन जाता है।।141।।

दोहा – **कर्तृकर्म अधिकार को, अर्घ्य चढ़ाऊँ आज।**
तजकर निज अज्ञान को, सिद्ध करूँ सब काज।।

ॐ ह्रीं वीतरागज्ञानमयपरिणतात्मतत्त्वप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(69)

अण्णाणस्स स उदओ, जं जीवाणं अतच्चउवलद्धी।
मिच्छत्तस्स दु उदओ, जीवस्स उसद्दहाणत्तं।।142।।

जीवों को जो अन्यथारूप, पर की उपलब्धी होती है।
उसको अज्ञान उदय जानो, नहिं जीव की वह निज परिणति है।।
एवं जीवात्मा को तत्त्वों में, अश्रद्धान जब होता है।
निज आत्मतत्त्व से बहिर्भूत, मिथ्यात्व उदय तब होता है।।142।।

दोहा – **कर्तृकर्म अधिकार को, अर्घ्य चढ़ाऊँ आज।**
तजकर निज अज्ञान को, सिद्ध करूँ सब काज।।

ॐ ह्रीं अज्ञानमिथ्यात्वभावपरिणतात्मतत्त्वप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(70)

उदओ असंजमस्स दु, जं जीवाणं हवेइ अविरमणं।
जो दु कलुसोवओगो, जीवाणं सो कसाउदओ।।143।।

चारित्रमोहिनी कर्म असंयम, का जब तक है उदयभाव।
पापों से विरति नहीं होती, कैसे हों उसके विरतभाव।।

होगा कषाय का उदय जहाँ, कलुषित परिणाम वहीं होंगे।
जो भाव मलिनता लिए हुए, वे संयम के बाधक होंगे।।143।।

दोहा – **कर्तृकर्म अधिकार को, अर्घ्य चढ़ाऊँ आज।**
तजकर निज अज्ञान को, सिद्ध करूँ सब काज।।

ॐ ह्रीं असंयमकषायभावपरिणतअविरतिभावप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(71)

तं जाण जोगउदयं, जो जीवाणं तु चिट्ठउच्छाहो।
सोहणमसोहणं वा, कायव्वो विरदिभावो वा।।144।।

जो जीवों के मनवचनकाय की, सदा प्रवृत्ति चलती है।
चाहे शुभ हो या अशुभ रूप, सब में ही योग प्रवृत्ती है।।
मनवचनकाय की चेष्टा का, उत्साह उन्हीं के होता है।
बस योग निमित्त से ही जीवों के, भाव बहुत विध होते हैं।।144।।

दोहा – **कर्तृकर्म अधिकार को, अर्घ्य चढ़ाऊँ आज।**
तजकर निज अज्ञान को, सिद्ध करूँ सब काज।।

ॐ ह्रीं मनवचनकाययोगनिमित्तेन उत्पन्नविविधभावप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(72)

एदेसु हेदुभूदेसु, कम्मइयवग्गणागयं जं तु।
परिणमदे अट्ठविहं, णाणावरणादिभावेहिं।।145।।

इन सब हेतू के मिलने पर, जो कर्मवर्गणा आती हैं।
ज्ञानावरणादिक भेदों से वे, आठरूप बन जाती हैं।।
इनसे विरहित कोई निमित्त, नहिं कर्मवर्गणा ला सकता।
यह कर्म ही पुद्गलजीव उभय का, सम्मेलन करवा सकता।।145।।

दोहा – **कर्तृकर्म अधिकार को, अर्घ्य चढ़ाऊँ आज।**
तजकर निज अज्ञान को, सिद्ध करूँ सब काज।।

ॐ ह्रीं कार्मणवर्गणानिमित्तेन अष्टकर्मरूपपरिणतात्मतत्त्वप्रतिपादक-समयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(73)

तं खलु जीवणिबद्धं, कम्मइयवग्गणागयं जइया।
तइया दु होदि हेदू, जीवो परिणामभावाणं।।146।।

वह कर्मवर्गणागत पुद्गल, जब जीव के संग बंध जाता है।
जल और दूध की भाँति जीव, पुद्गल स्वरूप बन जाता है।।
उस समय हि उन अज्ञान आदि, परिणामों का उद्गम होता।
वास्तव में उन परिणामों का, जीवात्मा ही हेतू होता।।146।।

दोहा – **कर्तृकर्म अधिकार को, अर्घ्य चढ़ाऊँ आज।**
तजकर निज अज्ञान को, सिद्ध करूँ सब काज।।

ॐ ह्रीं क्षीरनीरवत्जीवपुद्गलसंबंधयोःनिमित्तभूतजीवात्मतत्त्वप्रतिपादक-समयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(74)

जीवस्स दु कम्मेण य, सह परिणामा हु होंति रागादी।
एवं जीवो कम्मं, च दोवि रागादिमावण्णा।।147।।

रागादि विकारी भाव जीव में, कर्मों के संग होते हैं।
कर्मों के साथ सदा उसके, परिणाम उसी मय होते हैं।।
यदि ऐसा है तो जीव कर्म, दोनों ही एक सदृश होंगे।
रागादिभाव को प्राप्त जीव, निश्चय से सिद्ध नहीं होंगे।।147।।

दोहा – **कर्तृकर्म अधिकार को, अर्घ्य चढ़ाऊँ आज।**
तजकर निज अज्ञान को, सिद्ध करूँ सब काज।।

ॐ ह्रीं निश्चयनयापेक्षया रागादिभावादस्पर्शितात्मतत्त्वप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(75)

एकस्स दु परिणामो, जायदि जीवस्स रागमादीहिं।
ता कम्मोदयहेदूहिं, विणा जीवस्स परिणामो।।148।।

एकान्त से यदि रागादिभाव से, जीव सदा परिणमन करे।
तो शुद्ध जीव में भी मानो, रागादिक से परिणमन अरे।।

लेकिन उदयागत विधि से आत्मा, औ परिणाम पृथक् ही हैं।
कर्मोदय हेतु बिना परिणाम, नहीं होते निश्चित ही है।।148।।

दोहा – **कर्तृकर्म अधिकार को, अर्घ्य चढ़ाऊँ आज।**
तजकर निज अज्ञान को, सिद्ध करूँ सब काज।।

ॐ ह्रीं व्यवहारनयापेक्षया रागादिपरिणतात्मतत्त्वप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(76)

जइ जीवेण सहच्चिय, पुग्गलदव्वस्स कम्म परिणामो।
एवं पुग्गलजीवा, हु दोवि कम्मत्त मावण्णा।।149।।

यदि जीव के संग पुद्गल कर्मों, का ऐकांतिक परिणमन कहें।
नहिं निश्चय नय स्वीकार करे, व्यवहार मात्र यह कथन करें।।
क्योंकि आत्मा और कर्म उभय को, कर्मपना बन जावेगा।
दोनों ही कर्म बन जाने से, जीवात्मा कहाँ से आवेगा।।149।।

दोहा – **कर्तृकर्म अधिकार को, अर्घ्य चढ़ाऊँ आज।**
तजकर निज अज्ञान को, सिद्ध करूँ सब काज।।

ॐ ह्रीं निश्चयव्यवहारनयापेक्षया जीवपुद्गलयोः कर्मसंबंधप्रतिपादक-समयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(77)

एकस्स दु परिणामो, पुगगलदव्वस्स कम्मभावेण।
ता जीवभावहेदूहिं, विणा कम्मस्स परिणामो।।150।।

इस कर्मभाव से यदि हो तो, परिणाम एक पुद्गल का ही।
तो जीवद्रव्य रागादिभाव के, बिना कर्म बन जाता भी।।
है कर्म परिणमन पृथक् पृथकता, जीवभाव में ही मानी।
स्याद्वाद कथन द्वारा दोनों की, बात कथंचित् है मानी।।150।।

दोहा – **कर्तृकर्म अधिकार को, अर्घ्य चढ़ाऊँ आज।**
तजकर निज अज्ञान को, सिद्ध करूँ सब काज।।

ॐ ह्रीं शुद्धनिश्चयेन पुद्गलद्रव्याद् भिन्नमेव आत्मतत्त्वप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(78)

जीवे कम्मं बद्धं, पुट्ठं चेदि ववहारणयभणिदं।
सुद्धणयस्स दु जीवे, अबद्धपुट्ठं हवइ कम्मं।।151।।

व्यवहारिक नय यह कहता है, कि कर्म जीव से बंधते हैं।
आत्मा के सभी प्रदेशों में, मिल एक संग ही रहते हैं।।
लेकिन निश्चय नय का कहना है, कर्म जीव में नहिं बंधते।
आत्मा से कर्म अबद्ध और, अस्पृष्ट शुद्ध नय से रहते।।151।।

दोहा – **कर्तृकर्म अधिकार को, अर्घ्य चढ़ाऊँ आज।**
तजकर निज अज्ञान को, सिद्ध करूँ सब काज।।

ॐ ह्रीं नयविभागेन कर्मबद्धाबद्धआत्मतत्त्वप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(79)

कम्मं बद्धमबद्धं, जीवे एवं तु जाण णयपक्खं।
पक्खातिक्कंतो पुण, भण्णदि जो सो समयसारो।।152।।

कर्मों की बद्ध अबद्ध अवस्था, जीव के संग में मानी है।
निश्चय व्यवहार नयों के बल पर, कर्म व्यवस्था जानी है।।
जो ध्यानी मुनि नय पक्षपात से, दूर स्वयं हो जाते हैं।
वे ही शुद्धात्मा के ध्याता, बस समयसार कहलाते हैं।।152।।

दोहा – **कर्तृकर्म अधिकार को, अर्घ्य चढ़ाऊँ आज।**
तजकर निज अज्ञान को, सिद्ध करूँ सब काज।।

ॐ ह्रीं पक्षातिक्रान्तेन कथितात्मतत्त्वप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(80)

दोंण्हवि णयाण भणियं जाणइ णवरिं तु समयपडिबद्धो।
ण दु णयपक्खं गिण्हदि, किंचिवि णयपक्खपरिहीणो।।153।।

शुद्धात्म तत्त्वज्ञाता मुनिवर, निज समयसार में लीन रहें।
दोनों नयपक्षों को जानें, केवल लेकिन स्वाधीन रहें।।

नहिं दोनों पक्षों में से कुछ भी, ग्रहण करें निज जीवन में।
क्योंकि नयपक्ष रहित ऋषिवर, बस ध्यानलीन निजआतम में।।153।।

दोहा – **कर्तृकर्म अधिकार को, अर्घ्य चढ़ाऊँ आज।**
तजकर निज अज्ञान को, सिद्ध करूँ सब काज।।

ॐ ह्रीं नयद्वयज्ञायक-नयातीतगुणप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(81)

सम्मद्दंसणणाणं, एदं लहदित्ति णवरि ववदेसं।
सव्वणयपक्खरहिदो, भणिदो जो सो समयसारो।।154।।

जो असली समयसार वह तो, सब नयपक्षों से विरहित है।
वह तो वास्तव में सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान रूप ही है।।
ऐसे ही निर्विकल्प ध्यानी मुनि, समयसार कहलाते हैं।
श्रावक तो श्रद्धा मात्र करें, नहिं समयसार लख पाते हैं।।154।।

दोहा – **कर्तृकर्म अधिकार को, अर्घ्य चढ़ाऊँ आज।**
तजकर निज अज्ञान को, सिद्ध करूँ सब काज।।

ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञाननामप्राप्तसमयसारगुणसमन्वितनयातीतअवस्था-प्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चतुर्थ पुण्य-पाप अधिकार की गाथाओं के अर्घ्य

(82)

कम्ममसुहं कुसीलं, सुहकम्मं चावि जाणह सुसीलं।
कह तं होदि सुसीलं, जं संसारं पवेसेदि।।155।।

-चामर छन्द-

शुभ अशुभरूप कर्म के हि दोय भेद हैं।
शुभ सुशील अशुभ को कुशील सर्वजन कहें।।
निर्विकल्प मुनि के लिए शुभ भी नहीं श्रेष्ठ है।
जो कराता है सदा संसार में प्रवेश है।।155।।

दोहा – **है चतुर्थ अधिकार यह, पुण्य पाप से ख्यात।**
अर्घ्य चढ़ाकर सार मैं, लहूँ पुण्य फल नाथ।।

ॐ ह्रीं सुशीलकुशीलरूपशुभाशुभकर्मप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(83)

सौवण्णियं पि णियलं, बंधदि कालायसं पि जह पुरिसं।
बंधदि एवं जीवं, सुहमसुहं वा कदं कम्मं।।156।।

ज्यों सुवर्ण लोह बेड़ियों से जीव ही बंधे।
त्यों ही शुभ अशुभ करम से जीव ही सदा बंधे।।
शुद्ध आत्मा मुनी के लिये दोहि हेय हैं।
श्रावकों के लिये शुभ सदा ही उपादेय है।।156।।

दोहा – **है चतुर्थ अधिकार यह, पुण्य पाप से ख्यात।**
अर्घ्य चढ़ाकर सार मैं, लहूँ पुण्य फल नाथ।।

ॐ ह्रीं सुवर्णलौहनिगलवत्शुभाशुभकर्मप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(84)

तह्मा दु कुसीलेहिय रायं, मा कुणह मा व संसग्गं।
साधीणो हि विणासो, कुसीलसंसग्गरायेण।।157।।

दोय कर्म को कुसील जानकर इन्हें तजो।
राग व संसर्ग इन दोनों के संग मत करो।।
क्योंकि इन कुसील के संसर्ग राग से सदा।
स्वतन्त्रता विनाश शुद्ध आत्म की हो सर्वदा।।157।।

दोहा – **है चतुर्थ अधिकार यह, पुण्य पाप से ख्यात।**
अर्घ्य चढ़ाकर सार मैं, लहूँ पुण्य फल नाथ।।

ॐ ह्रीं कर्मद्वयसंगत्यागभावप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(85)

जह णाम कोवि पुरिसो, कुच्छियसीलं जणं वियाणित्ता।
वज्जेदि तेण समयं, संसग्गं रायकरणं च।।158।।

जैसे कोई नर किसी को कुसील जानकर।
छोड़ देता उससे राग उसको बुरा मानकर।।
उसके संग न रहे ना बाह्य प्रेम भी करे।
तब ही वह शुद्ध निज स्वभाव को किया करे।।158।।

दोहा – **है चतुर्थ अधिकार यह, पुण्य पाप से ख्यात।**
अर्घ्य चढ़ाकर सार मैं, लहूँ पुण्य फल नाथ।।

ॐ ह्रीं रागभावत्यागगुणप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(86)

एमेव कम्मपयडी, सीलसहावं च कुच्छिदं णाउं।
वज्जंति परिहरंति य, तस्संसग्गं सहावरया।।159।।
वैसे ही कर्मप्रकृति को कुसील जानकर।
भेद ज्ञानी छोड़ देते हैं विभाव मानकर।।
निज स्वभाव में ही सदा लीन रहते जो मुनी।
वे ही त्याग कर सकें न श्रावकों में है सुनी।।159।।

दोहा – **है चतुर्थ अधिकार यह, पुण्य पाप से ख्यात।**
अर्घ्य चढ़ाकर सार मैं, लहूँ पुण्य फल नाथ।।

ॐ ह्रीं कुसीलभावं त्यक्त्वा त्यागभावग्रहणस्वभावप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(87)

रत्तो बंधदि कम्मं, मुंचदि जीवो विरागसंपत्तो।
एसो जिणोवदेसो, तह्मा कम्मेसु मा रज्ज।।160।।
रागी जीव के सदा कर्मों का बंध हो रहा।
किन्तु विरागी उन्हीं कर्मों से मुक्त हो रहा।।
ऐसा श्री जिनेन्द्रदेव का कथन सुनो सभी।
बनके विरागी मुनी न कर्म से बंधो कभी।।160।।

दोहा – **है चतुर्थ अधिकार यह, पुण्य पाप से ख्यात।**
अर्घ्य चढ़ाकर सार मैं, लहूँ पुण्य फल नाथ।।

ॐ ह्रीं पूर्णवैराग्यभावपरिणतशुद्धात्मतत्त्वप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(88)

परमट्ठो खलु समओ, सुद्धो जो केवली मुणी णाणी।
तह्मि ट्ठिदा सहावे, मुणिणो पावंति णिव्वाणं।।161।।
जो भि केवली मुनी परमार्थ शुद्ध हो रहे।
शुद्ध समयसार में हि लीन जो सदा रहें।।
इस स्वभावरत मुनी निर्वाण प्राप्त कर सकें।
इसके बिना शिव कभी भि प्राप्त नहीं हो सकें।।161।।

दोहा – **है चतुर्थ अधिकार यह, पुण्य पाप से ख्यात।**
अर्घ्य चढ़ाकर सार मैं, लहूँ पुण्य फल नाथ।।

ॐ ह्रीं नियमेन शुद्धकेवलीमुनिज्ञानीआदिविशेषणसमन्वितपरमार्थतत्त्व-प्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(89)

परमट्ठम्हि दु अठिदो, जो कुणदि तवं वदं च धारेई।
तं सव्वं वालतवं, वालवदं विंति सव्वण्हू।।162।।
ज्ञानरूप आत्मतत्त्व में न जिनकी स्थिती।
किन्तु व्रत तपों को धारता रहा पुरुष वही।।
उनके उस तपश्चरण को बालतप कहा गया।
बाल व्रत के नाम से सर्वज्ञदेव ने कहा।।162।।

दोहा – **है चतुर्थ अधिकार यह, पुण्य पाप से ख्यात।**
अर्घ्य चढ़ाकर सार मैं, लहूँ पुण्य फल नाथ।।

ॐ ह्रीं व्रततपादिकुर्वन्नपि-परमार्थरहितबालव्रततपप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(90)

वदणियमाणि धरंता, सीलाणि तहा तवं च कुव्वंता।
परमट्ठवाहिरा जे, णिव्वाणं ते ण विंदंति।।163।।
यद्यपी जो व्रत नियम को धारते सदा मुनी।
शील और तपश्चरण भी बालतप कथा सुनी।।

ज्ञान परमार्थ रहित बाह्य ज्ञान हैं सभी।
इसलिए अज्ञानि मोक्ष प्राप्त कर सके नहीं।।163।।

दोहा – **है चतुर्थ अधिकार यह, पुण्य पाप से ख्यात।**
अर्घ्य चढ़ाकर सार मैं, लहूँ पुण्य फल नाथ।।

ॐ ह्रीं परमार्थबाह्यव्रततपश्चरणादिप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(91)

परमट्ठबाहिरा जे, ते अण्णाणेण पुण्णमिच्छंति।
संसारगमणहेदुं, वि मोक्खहेउं अजाणंता।।164।।
परमार्थबाह्य जो मुनी अज्ञानयुक्त हो रहे।
अज्ञान भाव से ही पुण्य कर्म सदा कर रहे।।
पुण्य वह संसार गमन का ही हेतु मानिए।
क्योंकि मोक्ष हेतु ज्ञान उससे दूर जानिए।।164।।

दोहा – **है चतुर्थ अधिकार यह, पुण्य पाप से ख्यात।**
अर्घ्य चढ़ाकर सार मैं, लहूँ पुण्य फल नाथ।।

ॐ ह्रीं परमार्थबहिर्भूतसंसारगमनकारणप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(92)

जीवादीसद्दहणं, सम्मत्तं तेसिमधिगमो णाणं।
रायादीपरिहरणं, चरणं एसो दु मोक्खपहो।।165।।
जीवादि का श्रद्धान ही सम्यक्त्व नाम धारता।
उनका यथार्थज्ञान सम्यग्ज्ञान नाम धारता।।
रागादिभाव परिहरण सम्यक्चरित्र है कहा।
तीनों के सम्मिलन से पथिक मोक्षपंथ को लहा।।165।।

दोहा – **है चतुर्थ अधिकार यह, पुण्य पाप से ख्यात।**
अर्घ्य चढ़ाकर सार मैं, लहूँ पुण्य फल नाथ।।

ॐ ह्रीं जीवादितत्त्वश्रद्धानज्ञानानुचरणरूपमोक्षतत्त्वप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(93)

मोत्तूण णिच्छयट्ठं, ववहारे ण विदुसा पवट्टंति।
परमट्ठमस्सिदाण दु, जदीण कम्मक्खओ विहिओ।।166।।
मात्र व्यवहार में वे प्रवर्तन करें।
जो नहीं निश्चय का अर्थ वर्तन करें।।
क्योंकि कर्मक्षय तो निश्चय बिना है नहीं।
शुक्लध्यानलीन यती मोक्ष पाते सही।।166।।

दोहा – **है चतुर्थ अधिकार यह, पुण्य पाप से ख्यात।**
अर्घ्य चढ़ाकर सार मैं, लहूँ पुण्य फल नाथ।।

ॐ ह्रीं व्यवहारनिश्चयनयापेक्षया कर्मक्षयकारणप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(94)

वत्थस्स सेदभावो, जह णासेदि मलमेलणासत्तो।
मिच्छत्तमलोच्छण्णं, तह सम्मत्तं खु णायव्वं।।167।।
जैसे श्वेतवस्त्र का मैल के सम्पर्क से।
श्वेतपना नष्ट होता निजस्वभाव छोड़ के।।
वैसे ही सम्यक्त्व गुण मिथ्यात्व के प्रभाव से।
नष्ट होता आतमा का गुण मिथ्यात्व भाव से।।167।।

दोहा – **है चतुर्थ अधिकार यह, पुण्य पाप से ख्यात।**
अर्घ्य चढ़ाकर सार मैं, लहूँ पुण्य फल नाथ।।

ॐ ह्रीं मिथ्यात्वमलरहितसम्यक्त्वप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(95)

वत्थस्स सेदभावो, जह णासेदि मलमेलणासत्तो।
अण्णाणमलोच्छण्णं, तह णाणं होदि णायव्वं।।168।।
ज्यों विशेष मैल से वस्त्र मलिन हो रहा।
श्वेतपन को छोड़कर निजस्वभाव खो रहा।।
त्यों ही जीवतत्त्व ज्ञानभाव गुण को छोड़कर।
अज्ञानरूपी मैल से दबता स्वभाव छोड़कर।।168।।

दोहा – **है चतुर्थ अधिकार यह, पुण्य पाप से ख्यात।**
अर्घ्य चढ़ाकर सार मैं, लहूँ पुण्य फल नाथ।।

ॐ ह्रीं अज्ञानमलरहितज्ञानगुणप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(96)

वत्थस्स सेदभावो, जह णासेदि मलमेलणासत्तो।
कसायमलोच्छण्णं, तह चारित्तं पि णादव्वं।।169।।

जैसे वस्त्र का सफेद रंग मैल संग से।
नष्ट होता मूल भाव ज्यों स्वभाव भंग से।।
वैसे ही कषाय मल चारित्र गुण को नाशता।
क्योंकि वह चरित्र भी अचारित्र भासता।।169।।

दोहा – **है चतुर्थ अधिकार यह, पुण्य पाप से ख्यात।**
अर्घ्य चढ़ाकर सार मैं, लहूँ पुण्य फल नाथ।।

ॐ ह्रीं कषायमलरहितचारित्रगुणप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(97)

सो सव्वणाणदरिसी, कम्मरएण णियेणवच्छण्णो।
संसारसमावण्णो, ण विजाणदि सव्वदो सव्वं।।170।।

आतमा स्वभाव से ही सर्वज्ञानदर्शि है।
फिर भी कामरूपी रज से शान्तभाव भ्रष्ट है।।
संसार में रहकर के वह संसाररूप ही बने।
संपूर्ण वस्तु जानने में वह नहीं समर्थ है।।170।।

दोहा – **है चतुर्थ अधिकार यह, पुण्य पाप से ख्यात।**
अर्घ्य चढ़ाकर सार मैं, लहूँ पुण्य फल नाथ।।

ॐ ह्रीं कर्मरजसाच्छादितसंसारावस्थाप्राप्तप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(98)

सम्मत्तपडिणिबद्धं, मिच्छत्तं जिणवरेहि परिकहियं।
तस्सोदयेण जीवो, मिच्छादिट्ठित्ति णायव्वो।।171।।

जीव के सम्यक्त्व गुण को रोकता मिथ्यात्व है।
इसके ही उदय से मिथ्यादृष्टि नाम प्राप्त है।।
यह कथन श्री जिनेन्द्रदेव ने कहा सही।
नष्ट जो मिथ्यात्व को करें लहें वे शिवमही।।171।।

दोहा – **है चतुर्थ अधिकार यह, पुण्य पाप से ख्यात।**
अर्घ्य चढ़ाकर सार मैं, लहूँ पुण्य फल नाथ।।

ॐ ह्रीं आत्मनः सम्यक्त्वगुणावरोधकमिथ्यात्वप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(99)

णाणस्स पडिणिबद्धं, अण्णाणं जिणवरेहि परिकहियं।
तस्सोदयेण जीवो, अण्णाणी होदि णायव्वो।।172।।

आत्मा के ज्ञानगुण को रोकता अज्ञान है।
इस उदय से जीव द्रव्य हो रहा अज्ञानि है।।
यह कथन श्री जिनेन्द्रदेव ने कहा सही।
नष्ट जो अज्ञान को करें लहें वे शिवमही।।172।।

दोहा – **है चतुर्थ अधिकार यह, पुण्य पाप से ख्यात।**
अर्घ्य चढ़ाकर सार मैं, लहूँ पुण्य फल नाथ।।

ॐ ह्रीं आत्मनः ज्ञानगुणावरोधकअज्ञानभावप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(100)

चारित्तपडिणिबद्धं, कसायं जिणवरेहि परिकहियं।
तस्सोदयेण जीवो, अचरित्तो होदि णायव्वो।।173।।

जीव के चारित्र गुण को रोकता कषाय है।
इसका उदय ही चरित्रहीनता विभाव है।।
यह कथन श्री जिनेन्द्रदेव ने कहा सही।
नष्ट जो कषाय को करें लहें वे शिवमही।।173।।

दोहा – **है चतुर्थ अधिकार यह, पुण्य पाप से ख्यात।**
अर्घ्य चढ़ाकर सार मैं, लहूँ पुण्य फल नाथ।।

ॐ ह्रीं आत्मनः चारित्रगुणावरोधककषायभावप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

-पूर्णार्घ्य (शंभु छंद)-

कर्तृकर्म अरु पुण्य पाप, अधिकार को अर्घ्य समर्पित है।
पुण्य पाप कर्मों को करता, हुआ जीव यह दुःखित है।।
कुन्दकुन्द आचार्य प्रवर ने, भेदज्ञान बतलाया है।
उसको पढ़ पूर्णार्घ्य चढ़ाने, भक्त पुजारी आया है।।2।।

ॐ ह्रीं समयसारग्रंथस्य कर्तृकर्म-पुण्यपापनामद्वयधिकारयोः वर्णित सर्वगाथासूत्रेभ्यः पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शांतये शांतिधारा, दिव्य पुष्पांजलिः

जाप्य मंत्र – **ॐ ह्रीं शुद्धात्मतत्त्वप्राप्तये श्रीसमयसारग्रंथाय नमः।**

जयमाला

तर्ज –माई रे माई.....।

समयसार की पूजन कर, कुछ आतम अनुभव पाओ।
समयसार के आराधक, गुरुओं को शीश झुकाओ।।
बोलो समयसार की जय, बोलो महासाधु की जय।।टेक.।।

जीव और पौद्गलिक कर्म का है, सम्बन्ध अनादी।
कर्म अन्त करना हो यदि तो, कर लो मरण समाधी।।
कर्ता-कर्म-क्रिया के द्वारा, आत्मा शुद्ध बनाओ।
समयसार के आराधक, गुरुओं को शीश झुकाओ।।
बोलो समयसार की जय, बोलो महासाधु की जय।।1।।

आत्मा अरु आस्रव में जो, नहिं भेद जानता प्राणी।
क्रोधादिक के कारण जो, रहते सदैव अज्ञानी।।
उस अज्ञान को दूर भगाने, हेतू श्रुत को ध्याओ।
समयसार के आराधक, गुरुओं को शीश झुकाओ।।
बोलो समयसार की जय, बोलो महासाधु की जय।।2।।

वीतराग विज्ञानी परद्रव्यों को ग्रहण न करता।
इसीलिए वह कर्तृ कर्म, भावों को कभी न वरता।।
कर्तृकर्म अधिकार को पढ़कर, मन में इसे बसाओ।
समयसार के आराधक, गुरुओं को शीश झुकाओ।।
बोलो समयसार की जय, बोलो महासाधु की जय।।3।।

पुण्य-पाप इन दो कर्मों से, यह संसार सजा है।
वीतराग विज्ञानी मुनि ने, इन दोनों को तजा है।।
तुम भी सच्चे श्रद्धानी बन, पहले पाप भगाओ।
समयसार के आराधक, गुरुओं को शीश झुकाओ।।
बोलो समयसार की जय, बोलो महासाधु की जय।।4।।

सच्चे ज्ञान बिना जो दुष्कर, कठिन तपस्या करते।
उनके तप को समयसार में, बालतपस्या कहते।।
मोक्ष प्राप्ति इससे नहिं होगी, समझो अरु समझाओ।
समयसार के आराधक, गुरुओं को शीश झुकाओ।।
बोलो समयसार की जय, बोलो महासाधु की जय।।5।।

पुण्यपाप अरु कर्तृ कर्म, अधिकार की यह जयमाला।
पढ़करके ''चन्दनामती'', पूर्णार्घ्य चढ़ाओ प्यारा।।
निज सम्यग्दर्शन दृढ़ करके, आत्मा शुद्ध बनाओ।
समयसार के आराधक, गुरुओं को शीश झुकाओ।।
बोलो समयसार की जय, बोलो महासाधु की जय।।6।।

ॐ ह्रीं कर्तृकर्म-पुण्यपापअधिकारसमन्वितसमयसारमहाग्रंथाय जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शांतये शांतिधारा, दिव्य पुष्पांजलिः।

-दोहा-

समयसार का सार ही, है जीवन का सार।
शेष द्रव्य का भार है, जीवन में निस्सार।।

।। इत्याशीर्वादः, पुष्पांजलिः।।

(पूजा नं.-4)

आस्रव-संवर-निर्जरा-बंध अधिकार पूजा

स्थापना –स्रग्विणी छन्द

अर्चना मैं करूं श्री समयसार की, वंदना मैं करूं श्री समयसार की।
शुद्ध अध्यात्मपथ है समयसार ही, सार में सार है यह समयसार ही।।टेक.।।
तत्त्व आश्रव व संवर कहा निर्जरा, बंध के साथ संबंध सबका कहा।
चार अधिकार क्रम से ये माने गये, इन सहित पूजा कर लूँ समयसारकी।।1।।

इक सौ इकतालीस गाथाएं इसमें कहीं, जो कि तीजे वलय में बताई गईं।
इनकी पूजन में आह्वान स्थापना, करके पूजन करूँ मैं समयसार की।।2।।

ॐ ह्रीं आस्रवसंवरनिर्जराबंधाधिकारसमन्वितश्रीसमयसारग्रंथराज! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं।

ॐ ह्रीं आस्रवसंवरनिर्जराबंधाधिकारसमन्वितश्रीसमयसारग्रंथराज! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।

ॐ ह्रीं आस्रवसंवरनिर्जराबंधाधिकारसमन्वितश्रीसमयसारग्रंथराज! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्।

अथ अष्टक-स्रग्विणी छन्द

अर्चना मैं करूँ श्री समयसार की, वंदना मैं करूँ श्री समयसार की।
शुद्ध अध्यात्मपथ है समयसार ही, सार में सार है यह समयसार ही।।
जल की झारी ले पूजन में धारा करूँ, जन्म मृत्यू विनाशन की आशा करूँ।
चार अधिकार युत श्री समयसार की, अर्चना मैं करूँ श्री समयसार की।।1।।

ॐ ह्रीं आस्रवसंवरनिर्जराबंधाधिकारसमन्वितश्रीसमयसाराय जन्मजरामृत्यु-विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा!

अर्चना मैं करूँ श्री समयसार की, वंदना मैं करूँ श्री समयसार की।
शुद्ध अध्यात्मपथ है समयसार ही, सार में सार है यह समयसार ही।।

गंध कर्पूरमय शुद्ध केशर लिया, भाव से भव का आतप विनाशन किया।
चार अधिकार युत श्री समयसार की, अर्चना मैं करूँ श्री समयसार की।।2।।

ॐ ह्रीं आस्रवसंवरनिर्जराबंधाधिकारसमन्वितश्रीसमयसाराय संसारताप-विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।।2।।

अर्चना मैं करूँ श्री समयसार की, वंदना मैं करूँ श्री समयसार की।
शुद्ध अध्यात्मपथ है समयसार ही, सार में सार है यह समयसार ही।।
मोतियों के सदृश शुभ्र अक्षत लिया, अक्षयपद प्राप्ति की भावना मन किया।
चार अधिकार युत श्री समयसार की, अर्चना मैं करूँ श्री समयसार की।।3।।

ॐ ह्रीं आस्रवसंवरनिर्जराबंधाधिकारसमन्वितश्रीसमयसाराय अक्षयपद-प्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।।3।।

अर्चना मैं करूँ श्री समयसार की, वंदना मैं करूँ श्री समयसार की।
शुद्ध अध्यात्मपथ है समयसार ही, सार में सार है यह समयसार ही।।
ताजे पुष्पों को ला थाल में भर लिया, भावों से काम विध्वंस मैंने किया।
चार अधिकार युत श्री समयसार की, अर्चना मैं करूँ श्री समयसार की।।4।।

ॐ ह्रीं आस्रवसंवरनिर्जराबंधाधिकारसमन्वितश्रीसमयसाराय कामबाण-विनाशनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।।4।।

अर्चना मैं करूँ श्री समयसार की, वंदना मैं करूँ श्री समयसार की।
शुद्ध अध्यात्मपथ है समयसार ही, सार में सार है यह समयसार ही।।
व्यंजनों से भरा थाल कर में लिया, पूजा करके क्षुधारोग नाशन किया।
चार अधिकार युत श्री समयसार की, अर्चना मैं करूँ श्री समयसार की।।5।।

ॐ ह्रीं आस्रवसंवरनिर्जराबंधाधिकारसमन्वितश्रीसमयसाराय क्षुधारोग-विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।।5।।

अर्चना मैं करूँ श्री समयसार की, वंदना मैं करूँ श्री समयसार की।
शुद्ध अध्यात्मपथ है समयसार ही, सार में सार है यह समयसार ही।।
रत्नदीपक जला मैंने आरति किया, मोह के नाश का भाव मन में लिया।
चार अधिकार युत श्री समयसार की, अर्चना मैं करूँ श्री समयसार की।।6।।

ॐ ह्रीं आस्रवसंवरनिर्जराबंधाधिकारसमन्वितश्रीसमयसाराय मोहांधकार-विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।।6।।

अर्चना मैं करूँ श्री समयसार की, वंदना मैं करूँ श्री समयसार की।
शुद्ध अध्यात्मपथ है समयसार ही, सार में सार है यह समयसार ही।।
अग्नि में धूप की गंध मैंने किया, कर्मनाशन का शुभ भाव मन में लिया।
चार अधिकार युत श्री समयसार की, अर्चना मैं करूँ श्री समयसार की।।7।।

ॐ ह्रीं आस्रवसंवरनिर्जराबंधाधिकारसमन्वितश्रीसमयसाराय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।।8।।

अर्चना मैं करूँ श्री समयसार की, वंदना मैं करूँ श्री समयसार की।
शुद्ध अध्यात्मपथ है समयसार ही, सार में सार है यह समयसार ही।।
आम अंगूर का थाल भर के लिया, मोक्षफल प्राप्ति की आश मन में किया।
चार अधिकार युत श्री समयसार की, अर्चना मैं करूँ श्री समयसार की।।8।।

ॐ ह्रीं आस्रवसंवरनिर्जराबंधाधिकारसमन्वितश्रीसमयसाराय मोक्षफल-प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।।7।।

अर्चना मैं करूँ श्री समयसार की, वंदना मैं करूँ श्री समयसार की।
शुद्ध अध्यात्मपथ है समयसार ही, सार में सार है यह समयसार ही।।
आठों द्रव्यों से युत अर्घ्य का थाल है, "चन्दनामति" झुका श्रुत के प्रति भाल है।
चार अधिकार युत श्री समयसार की, अर्चना मैं करूँ श्री समयसार की।।9।।

ॐ ह्रीं आस्रवसंवरनिर्जराबंधाधिकारसमन्वितश्रीसमयसाराय अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।9।।

स्वर्ण कलशे से मैं जल की धारा करूँ, आत्मशांती निमित प्रार्थना मैं करूँ।
चार अधिकार युत श्री समयसार की, अर्चना मैं करूँ श्री समयसार की।।10।।

शांतये शांतिधारा

मालती पुष्प की अंजुली मैं भरूँ, आत्मगुणपुष्प की प्रार्थना मैं करूँ।
चार अधिकार युत श्री समयसार की, अर्चना मैं करूँ श्री समयसारकी।।11।।

दिव्य पुष्पांजलिः

अथ प्रत्येक अर्घ्य

-चौबोल छन्द-

समयसार मण्डल विधान में, तृतिय वलय के निकट चलो।
इसमें इक सौ इकतालीस, गाथाओं को तुम स्मरण करो।।
आस्रव संवर और निर्जरा, बंध चार अधिकार कहे।
इन्हें अर्घ्य अर्पण से पहले, पुष्पांजलि करना है हमें।।1।।

इति श्रीसमयसारमण्डलविधानस्य तृतीयवलये पुष्पांजलिं क्षिपेत्।

आस्रव अधिकार की गाथाओं के अर्घ्य

(1)

मिच्छत्तं अविरमणं, कसायजोगा य सण्णसण्णा दु।
बहुविहभेया जीवे, तस्सेव अणण्णपरिणामा।।174।।

-शंभु छंद-

मिथ्यात्व तथा अविरति कषाय, अरु योग बंध के कारण हैं।
जो चेतन और अचेतन में, बनते आस्रव के कारण हैं।।
चैतन्य विकारी भाव जीव में, बहुत भेद युत होते हैं।
वे ही अभेद परिणाम जीव में, निश्चयनय से होते हैं।।174।।

सोरठा – **यह आश्रव अधिकार, कुन्दकुन्द गुरु ने कहा।**
तज इसको सुखसार, लहूँ अर्घ्य श्रुत को चढ़ा।।

ॐ ह्रीं आश्रवभेदप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(2)

णाणावरणादीयस्स, ते दु कम्मस्स कारणं होंति।
तेसिंपि होदि जीवो, य रागदोसादिभावकरो।।175।।

वे प्रत्यय होते हैं ज्ञाना-वरणादिक कर्मों के कारण।
रागद्वेषादि भावसंयुत, आत्मा होता उनका कारण।।
संसारी आत्मा इन कर्मों का, आस्रव प्रतिक्षण करता है।
शुद्धात्मस्वरूप मग्न होते ही, वह संवर कर सकता है।।175।।

सोरठा – **यह आश्रव अधिकार, कुन्दकुन्द गुरु ने कहा।**
तज इसको सुखसार, लहूँ अर्घ्य श्रुत को चढ़ा।।

ॐ ह्रीं रागद्वेषादिभावास्रवप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(3)

णत्थिदु आसवबंधो, सम्मादिट्ठिस्स आसवणिरोहो।
संते पुव्वणिबद्धे, जाणदि सो ते अबंधंतो।।176।।

निश्चय सम्यग्दृष्टि के नहिं, नूतन कर्मों का बन्ध कहा।
वह तो कर्मों का ही निरोध, करता निज आतम लीन रहा।।
बस पूर्वबद्ध सत्तास्वरूप, कर्मों को जाना करता है।
लेकिन नवीन कर्मों का नहिं, वह बन्ध स्वयं कर सकता है।।176।।

सोरठा – **यह आश्रव अधिकार, कुन्दकुन्द गुरु ने कहा।**
तज इसको सुखसार, लहूँ अर्घ्य श्रुत को चढ़ा।।

ॐ ह्रीं ज्ञानिनां आश्रवाभावप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(4)

भावो रागादिजुदो, जीवेण कदो दु बंधगो भणिदो।
रायादिविप्पमुक्को, अबंधगो जाणगो णवरिं।।177।।

रागादियुक्त अज्ञानभाव ही, कर्म नवीन बंधाता है।
रागादिरहित जो ज्ञानभाव, नहिं नये कर्म बंधवाता है।।
वह तो केवल ज्ञायक स्वरूप, पर का संसर्ग नहीं उसमें।
चैतन्यचमत्कारी आत्मा है, शुद्ध न किंचित् दुख उसमें।।177।।

सोरठा – **यह आश्रव अधिकार, कुन्दकुन्द गुरु ने कहा।**
तज इसको सुखसार, लहूँ अर्घ्य श्रुत को चढ़ा।।

ॐ ह्रीं रागादिभावरहितज्ञायकभावप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(5)

पक्के फलह्मि पडिए, जह ण फलं बज्झए पुणो विंटे।
जीवस्स कम्मभावे, पडिए ण पुणोदयमुबेई।।178।।

जैसे फल के पक जाने पर, जब वह तरु से गिर जाता है।
तब पुनः वृक्ष की डाली से, संबंध नहीं जुड़ पाता है।।

वैसे ही कर्म भाव पककर, जब आत्मा से झड़ जाते हैं।
वे पुनः उदय को प्राप्त न हों, निर्जरा तत्त्व कहलाते हैं।।178।।

सोरठा – **यह आश्रव अधिकार, कुन्दकुन्द गुरु ने कहा।**
तज इसको सुखसार, लहूँ अर्घ्य श्रुत को चढ़ा।।

ॐ ह्रीं पक्वफलपतनवत्कर्मनिजराप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(6)

पुढवीपिंडसमाणा, पुव्वणिबद्धा दु पच्चया तस्स।
कम्मसरीरेण दु, ते बद्धा सव्वेपि णाणिस्स।।179।।

उस वीतराग सम्यग्दृष्टी ने, पूर्व कर्म जो बांधे हैं।
वे पृथ्वीपिंड सदृश अकार्य-कारी प्रत्यय हो जाते हैं।।
जो यथाख्यात चारित्रयुक्त, ज्ञानी आत्मा बन जाते हैं।
उनके कार्माण शरीर रूप से, कर्म सभी रह जाते हैं।।179।।

सोरठा – **यह आश्रव अधिकार, कुन्दकुन्द गुरु ने कहा।**
तज इसको सुखसार, लहूँ अर्घ्य श्रुत को चढ़ा।।

ॐ ह्रीं पृथ्वीपिण्डवत्ज्ञानिनां द्रव्यकर्मास्रवाभावप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(7)

चहुविह अणेयभेयं, बंधंते णाणदंसणगुणेहिं।
समये समये जह्मा, तेण अबंधोत्ति णाणी दु।।180।।

मिथ्यात्व तथा अविरति कषाय, अरु योग बन्ध के कारण हैं।
आत्मा के दर्शन ज्ञान गुणादिक, कर्मबन्ध निरवारण हैं।।
प्रति समय समय पर नव कर्मों को, जीव बांधता रहता है।
ज्ञानी तो स्वयं अबंधक है, इसलिये कर्म नहिं बंधता है।।180।।

सोरठा – **यह आश्रव अधिकार, कुन्दकुन्द गुरु ने कहा।**
तज इसको सुखसार, लहूँ अर्घ्य श्रुत को चढ़ा।।

ॐ ह्रीं ज्ञानदर्शनगुणाभ्यां निरास्रवभावप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(8)

जह्मा दु जहण्णादो, णाणगुणादो पुणोवि परिणमदि।
अण्णत्तं णाणगुणो, तेण दु सो बंधगो भणिदो।।181।।

जीवात्मा का गुण ज्ञान जघन्य, अवस्थाजब तक पाता है।
नहिं यथाख्यात चारित्र मिला, अन्यान्य रूप बन जाता है।।
गुणथान दशम तक वही जीव, कर्मों का बन्ध किया करता।
फिर यथाख्यात चारित पाकर, कर्मों से मुक्त हुआ करता।।181।।

सोरठा – **यह आश्रव अधिकार, कुन्दकुन्द गुरु ने कहा।**
तज इसको सुखसार, लहूँ अर्घ्य श्रुत को चढ़ा।।

ॐ ह्रीं कर्माश्रवकारणजघन्यज्ञानगुणप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(9)

दंसणणाणचरित्तं, जं परिणमदे जहण्णभावेण।
णाणी तेण दु बज्झदि, पुग्गलकम्मेण विविहेण।।182।।

संज्ञानी के दर्शन सुज्ञान, चारित्र जघन्य जहाँ तक हैं।
रत्नत्रय की संपूर्ण अवस्था, प्राप्त न होती तब तक है।।
इस कारण ज्ञानी आत्मा के, पौद्गलिक कर्म बंधते रहते।
बिन यथाख्यात चारित्र हुए, मुनि आत्मसौख्य वंचित रहते।।182।।

सोरठा – **यह आश्रव अधिकार, कुन्दकुन्द गुरु ने कहा।**
तज इसको सुखसार, लहूँ अर्घ्य श्रुत को चढ़ा।।

ॐ ह्रीं सरागचारित्रसहितजघन्यभावपरिणतज्ञानगुणप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(10)

सव्वे पुव्वणिबद्धा, दु पच्चया संति सम्मदिट्ठिस्स।
उवओगप्पाओगं, बंधंते कम्मभावेण।।183।।

जो पूर्वबद्ध प्रत्यय ज्ञानी के, निज सत्ता में रहते हैं।
उपयोग युक्त यदि होते वे, तो कर्म रूप से बंधते हैं।।

लेकिन केवल सत्ता कर्मों का, बन्ध नहीं करवा सकती।
रागादि भाव नहिं होने से, कर्मों की स्थिति नहिं पड़ती।।183।।

सोरठा – **यह आश्रव अधिकार, कुन्दकुन्द गुरु ने कहा।**
तज इसको सुखसार, लहूँ अर्घ्य श्रुत को चढ़ा।।

ॐ ह्रीं पूर्वनिबद्धकर्मभावेन उपयोगप्रयोगरूपबंधप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(11)

संति दु णिरुवभोज्जा, बाला इत्थी जहेव पुरिसस्स।
बंधदि ते उवभोज्जे, तरुणी इत्थी जह णरस्स।।184।।

जैसे बाला स्त्री नर के, नहिं भाव विकारी कर सकती।
वैसे सत्ता में पड़े कर्म को, आत्मा नहिं अनुभव करती।।
लेकिन जैसे तरुणी स्त्री, नर को बन्धन में करती है।
वैसे ही उदय अवस्था कर्मों, के बन्धन को करती है।।184।।

सोरठा – **यह आश्रव अधिकार, कुन्दकुन्द गुरु ने कहा।**
तज इसको सुखसार, लहूँ अर्घ्य श्रुत को चढ़ा।।

ॐ ह्रीं अनुपभोग्यकन्यावत्सत्त्वस्थितकर्मप्रत्ययप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(12)

होदूण णिरुवभोज्जा, तह बंधदि जह हवंति उवभोज्जा।
सत्तट्ठविहा भूदा, णाणावरणादिभावेहिं।।185।।

जो वीतराग सम्यग्दृष्टी, वह कर्मबन्ध नहिं करता है।
जो है सराग सम्यग्दृष्टी, वह कर्मबन्ध नित करता है।।
यह जीव नित्य ज्ञानावरणादिक, सात कर्म बांधा करता।
अरु आयुबन्ध के समय अष्टविध, कर्म स्वयं बांधा करता।।185।।

सोरठा – **यह आश्रव अधिकार, कुन्दकुन्द गुरु ने कहा।**
तज इसको सुखसार, लहूँ अर्घ्य श्रुत को चढ़ा।।

ॐ ह्रीं उपभोग्यतरुणीस्त्रीवत्उदयागतकर्मप्रत्ययप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(13)

एदेण कारणेण दु, सम्मादिट्ठी अबंधगो होदि (भणिदो)।
आसवभावाभावे, ण पच्चया बंधगा भणिदा।।186।।

रागादि भाव का जब अभाव, जीवात्मा में हो जाता है।
तब प्रत्यय बंध नहीं करते, नहिं आश्रव भी हो पाता है।।
इस कारण वीतराग सम्यग्दृष्टी बंधक नहिं कहलाता।
आस्रव भावों के नहिं होने से, सदा अबन्धक कहलाता।।186।।

सोरठा – **यह आश्रव अधिकार, कुन्दकुन्द गुरु ने कहा।**
तज इसको सुखसार, लहूँ अर्घ्य श्रुत को चढ़ा।।

ॐ ह्रीं रागादिभावरहितसम्यग्दृष्टिजीवप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(14)

रागो दोषो मोहो, य आसवा णत्थि सम्मदिट्ठिस्स।
तह्मा आसवभावेण, विणा हेदू ण पच्चया होंति।।187।।

सम्यग्दृष्टी के राग द्वेष, अरु मोह भाव भी नहिं होते।
क्योंकि आस्रव के बिना सभी, प्रत्यय भी बंधक नहिं होते।।
जब तक जीवात्मा में राग-द्वेषादि भाव आते रहते।
तब तक वे जीव सरागी हैं, नहिं वीतरागि कहला सकते।।187।।

सोरठा – **यह आश्रव अधिकार, कुन्दकुन्द गुरु ने कहा।**
तज इसको सुखसार, लहूँ अर्घ्य श्रुत को चढ़ा।।

ॐ ह्रीं आश्रवभावरहितकर्मबंधाभावप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(15)

हेदू चदुव्वियप्पो, अट्ठवियप्पस्स कारणं भणिदं।
तेसिं पि य रागादी, तेसिमभावे ण बज्झंति।।188।।

मिथ्यात्व तथा अविरति कषाय, अरु योग चार ये बन्ध हेतु।
ये ही ज्ञानावरणादि आठ, कर्मों के होते बन्ध हेतु।।

क्योंकि ये प्रत्यय रागहेतु, रागादि बिना नहिं बंधते हैं।
देखो कैसा विधि का विधान, ये बिना निमित्त नहिं बंधते हैं।।188।।

सोरठा – **यह आश्रव अधिकार, कुन्दकुन्द गुरु ने कहा।**
तज इसको सुखसार, लहूँ अर्घ्य श्रुत को चढ़ा।।

ॐ ह्रीं मिथ्यात्वादिप्रत्ययनिमित्तेनोत्पन्नाष्ट कर्मप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(16)

जह पुरिसेणाहारो, गहिओ परिणमइ सो अणेयविहं।
मंसवसारुहिरादी, भावे उयरग्गिसंजुत्तो।।189।।

जैसे कोई नर भोजन को, सर्वांश ग्रहण जब करता है।
जठराग्नी का सुयोग पाकर, वह नानाविध परिणमता है।।
वह भोजन मांस रुधिर वसादि, रस रूप स्वयं बन जाता है।
जिसके द्वारा पुरुषार्थशील, नर को पहचाना जाता है।।189।।

सोरठा – **यह आश्रव अधिकार, कुन्दकुन्द गुरु ने कहा।**
तज इसको सुखसार, लहूँ अर्घ्य श्रुत को चढ़ा।।

ॐ ह्रीं गृहीताहारनिमित्तेन विविधरसपरिणमनवत्कर्माहारप्रतिपादक-समयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(17)

तह णाणिस्स दु पुव्वं, जे बद्धा पच्चया बहुवियप्पं।
बज्झंते कम्मं ते, णयपरिहीणा उ ते जीवा।।190।।

वैसे ही ज्ञानी संसारी, ने पूर्वकर्म जो बाँधे हैं।
मिथ्यात्व आदि प्रत्यय अनेक, जीवात्मा के संग आते हैं।।
वे जीव शुद्ध नय से विरहित, नूतनकर्मों से बंधते हैं।
इसलिए उन्हें सर्वज्ञदेव, अज्ञानी प्राणी कहते हैं।।190।।

सोरठा – **यह आश्रव अधिकार, कुन्दकुन्द गुरु ने कहा।**
तज इसको सुखसार, लहूँ अर्घ्य श्रुत को चढ़ा।।

ॐ ह्रीं पूर्वकर्मवशात्नूतनकर्मबन्धभावप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

संवर अधिकार की गाथाओं के अर्घ्य

(18)

उवओए उवओगो, कोहादिसु णत्थि कोवि उवओगो।
कोहे कोहो चेव हि, उवओगे णत्थि खलु कोहो।।191।।

–शंभु छंद –

उपयोग में ही उपयोग कहा, क्रोधादि में नहिं उपयोग कहा।
क्रोधादि में ही क्रोधादि रहें, उपयोग में नहिं क्रोधादि कहा।।
यद्यपि व्यवहार नयाश्रय से, उपयोग में ही क्रोधादि रहें।
लेकिन निश्चयनय कहता है, दोनों ही भिन्न स्वरूप लहें।।191।।

सोरठा – **है संवर अधिकार, कहा छठा गुरुदेव ने।**
अर्घ्य चढ़ाकर आज, पाऊँ आतमदेव मैं।।

ॐ ह्रीं कर्मनिरोधकारणसंवरतत्त्वप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(19)

अट्ठवियप्पे कम्मे, णोकम्मे चावि णत्थि उवओगो।
उवओगह्मि य कम्मं, णोकम्मं चावि णो अत्थि।।192।।

नहिं कर्म और नोकर्मों में भी, होता है उपयोग कभी।
उपयोग में भी नहिं होते हैं, वे कर्म और नोकर्म कभी।।
यह शुद्धात्मा की कथनी है, उसमें न कर्म नोकर्म रहें।
लेकिन संसारी आत्मा का, उपयोग कर्म के संग रहे।।192।।

सोरठा – **है संवर अधिकार, कहा छठा गुरुदेव ने।**
अर्घ्य चढ़ाकर आज, पाऊँ आतमदेव मैं।।

ॐ ह्रीं शुद्धाशुद्धात्मनोः कर्मनोकर्मव्यवस्थाप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(20)

एयं तु अविवरीदं, णाणं जइया उ होदि जीवस्स।
तइया ण किंचि कुव्वदि, भावं उवओगसुद्धप्पा।।193।।

ऐसा सत्यार्थ ज्ञान जब जिस, भव्यात्मा में हो जाता है।
तब वह परभावों को भी नहिं, करता निज में खो जाता है।।
ऐसी शुद्धात्म अवस्था मुनि को, क्षपक श्रेणि में लाती है।
इससे विपरीत धारणा प्राणी, को भव भ्रमण कराती है।।193।।

सोरठा – **है संवर अधिकार, कहा छठा गुरुदेव ने।**
अर्घ्य चढ़ाकर आज, पाऊँ आतमदेव मैं।।

ॐ ह्रीं संसारावस्थाछेदकशुद्धोपयोगभावप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(21)

जह कणयमग्गितवियं, पि कणयहावं ण तं परिच्चयइ।
तह कम्मोदयतविदो, ण जहदि णाणी उ णाणित्तं।।194।।

ज्यों अग्नि में तपकर सोना, असली सोना बन जाता है।
स्वर्णत्व भाव को नहिं तजने से, सोना ही कहलाता है।।
त्यों ही कर्मोदय से पीड़ित, ज्ञानी यदि ज्ञान न तजता है।
तब ही वह सच्चा ज्ञानी है, नहिं कर्म बंध फिर करता है।।194।।

सोरठा – **है संवर अधिकार, कहा छठा गुरुदेव ने।**
अर्घ्य चढ़ाकर आज, पाऊँ आतमदेव मैं।।

ॐ ह्रीं तप्तायमानस्वर्णमिव कर्मोदयतप्तात्मतत्त्वप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(22)

एवं जाणइ णाणी, अण्णाणी मुणदि रायमेवादं।
अण्णाणतमोच्छण्णो, आदसहावं अयाणंतो।।195।।

ज्ञानी यह भली भांति जानें, अज्ञानी रागयुक्त होता।
वह तो पर में ही निज बुद्धि, करके निज आत्मा को खोता।।
अज्ञान तिमिर से अन्ध सदृश, अज्ञानी की परिणति होती।
आत्मस्वभाव को जाने बिन नहिं, संवर की परिणति होती।।195।।

सोरठा – **है संवर अधिकार, कहा छठा गुरुदेव ने।**
अर्घ्य चढ़ाकर आज, पाऊँ आतमदेव मैं।।

ॐ ह्रीं संवरतत्त्वं प्रति-अज्ञानिज्ञानिनोः भेदप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(23)

सुद्धं तु वियाणंतो, सुद्धं चेवप्पयं लहदि जीवो।
जाणंतो दु असुद्धं, असुद्धमेवप्पयं लहइ।।196।।

शुद्धात्मतत्त्व के ज्ञाता ही, निज शुद्धात्मा को पाते हैं।
वे कर्मों का संवर करते, आश्रव को दूर भगाते हैं।।
लेकिन जो अज्ञानी अशुद्ध, आत्मा को ही जाना करते।
वे उस अशुद्ध आत्मा को ही, पाते आस्रव में रत रहते।।196।।

सोरठा – **है संवर अधिकार, कहा छठा गुरुदेव ने।**
अर्घ्य चढ़ाकर आज, पाऊँ आतमदेव मैं।।

ॐ ह्रीं शुद्धात्मोपलब्धिरूपसंवरतत्त्वप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(24)

अप्पाणमप्पणा रुंधि-ऊण दो पुण्णपावजोएसु।
दंसणणाणह्मि ठिदो, इच्छाविरओ य अण्णह्मि।।197।।

जो प्राणी आत्मा को आत्मा के द्वारा पाप क्रियाओं से।
छुड़वाता पुण्यक्रिया को भी रत हो चैतन्य क्रियाओं में।।
दर्शन ज्ञानावस्थित होकर पर में नहिं वांछा करता है।
आस्रव को तजकर वही मुनी संवर सुतत्त्व आचरता है।।197।।

सोरठा – **है संवर अधिकार, कहा छठा गुरुदेव ने।**
अर्घ्य चढ़ाकर आज, पाऊँ आतमदेव मैं।।

ॐ ह्रीं ज्ञानावस्थितमुनेः संवरतत्त्वप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(25)

जो सव्वसंगमुक्को, झायदि अप्पाणमप्पणो अप्पा।
णवि कम्मं णोकम्मं, चेदा चेयेइ एयत्तं।।198।।

जो सर्वपरिग्रह को तजकर, निज आत्मा को ही ध्याते हैं।
वे मुनि आत्मा के द्वारा ही, आत्मानंदामृत पाते हैं।।
जो कर्म और नोकर्मों के भी, नहिं कर्ता कहलाते हैं।
वे चेतन सुख के उपभोक्ता, एकत्व अवस्था पाते हैं।।198।।

सोरठा – **है संवर अधिकार, कहा छठा गुरुदेव ने।**
अर्घ्य चढ़ाकर आज, पाऊँ आतमदेव मैं।।

ॐ ह्रीं सर्वपरिग्रहरहितमुनेः चैतन्यसुखप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(26)

अप्पाणं झायंतो, दंसणणाणमओ अणण्णमओ।
लहइ अचिरेण अप्पाण-मेव सो कम्मपविमुक्कं।।199।।

वे दर्शनज्ञानमयी अनन्य, आत्मीय ध्यान को करते हैं।
इसलिए अन्य द्रव्यादिक में, परिणमन नहीं वे करते हैं।।
शीघ्रातिशीघ्र वे कर्मरहित, आत्मा की प्राप्ति करते हैं।
ऐसे परिणामों से संयुत, मुनिवर ही संवर करते हैं।।199।।

सोरठा – **है संवर अधिकार, कहा छठा गुरुदेव ने।**
अर्घ्य चढ़ाकर आज, पाऊँ आतमदेव मैं।।

ॐ ह्रीं शीघ्रमेव आत्मतत्त्वप्रापकसंवरतत्त्वप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(27)

उवदेसेण परोक्खं, रूवं जह पस्सिदूण णादेदि।
भण्णदि तहेव धिप्पदि, जीवो दिट्ठो य णादो य।।200।।

जैसे परोक्ष उपदेशों से, रूपादिज्ञान हो जाता है।
मानों उसको ही देख लिया, ऐसा अनुभव हो जाता है।।
बस उसी तरह यह जीवतत्त्व, वचनों के द्वारा कहलाता।
उसको ही चेतन जीव समझ, उस पर विश्वास किया जाता।।200।।

सोरठा – **है संवर अधिकार, कहा छठा गुरुदेव ने।**
अर्घ्य चढ़ाकर आज, पाऊँ आतमदेव मैं।।

ॐ ह्रीं परोक्षउपदेशात् रूपादिज्ञानवत्चैतन्यभावप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(28)

कोविदिदच्छो साहू, संपडिकाले भणिज्ज रूवमिणं।
पक्चक्खमेव दिट्ठं, परोक्खणाणे पवट्ठंतं।।201।।

क्या वर्तमान में आत्म तत्त्व, छद्मस्थ प्राप्त कर सकते हैं।
क्या कोई ज्ञानवान साधू, यह प्रतिपादन कर सकते हैं।।
क्योंकि इसका साक्षात्कार, कैवल्यज्ञान में होता है।
केवल परोक्ष संवेदन से, कुछ ज्ञान उसे भी होता है।।201।।

सोरठा – **है संवर अधिकार, कहा छठा गुरुदेव ने।**
अर्घ्य चढ़ाकर आज, पाऊँ आतमदेव मैं।।

ॐ ह्रीं परमज्ञानिसाधुना परोक्षसंवेदनज्ञानप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(29)

तेसिं हेऊ भणिदा, अज्झवसाणाणि सव्वदरसीहिं।
मिच्छत्तं अण्णाणं, अविरयभावो य जोगो य।।202।।

उन रागद्वेष अरु मोह रूप, आस्रव के हेतु बताए हैं।
मिथ्यात्व और अज्ञान अविरती, योग चार कहलाए हैं।।
ये चारों अध्यवसान जीव में, आस्रव को करवाते हैं।
इनके बिन आस्रव नहिं होता, सर्वज्ञदेव बतलाते हैं।।202।।

सोरठा – **है संवर अधिकार, कहा छठा गुरुदेव ने।**
अर्घ्य चढ़ाकर आज, पाऊँ आतमदेव मैं।।

ॐ ह्रीं मिथ्याविरतिआदिहेत्वभावे प्रगटमानसंवरतत्त्वप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(30)

हेउ अभावे णियमा, जायदि णाणिस्स आसवणिरोहो।
आसवभावेण विणा, जायदि कम्मस्स वि णिरोहो।।203।।

हेतू बिन ज्ञानी के अवश्य, आस्रव निरोध हो जाता है।
आस्रवभावों के बिना कर्म, का भी निरोध हो जाता है।।
कर्मों के रुकते ही प्राणी, निज में निज को पा जाता है।
नूतन कर्मों का बंध नहीं, होता संवर कहलाता है।।203।।

सोरठा – **है संवर अधिकार, कहा छठा गुरुदेव ने।**
अर्घ्य चढ़ाकर आज, पाऊँ आतमदेव मैं।।

ॐ ह्रीं अहेतुभावेन आश्रवनिरोधरूपसंवरतत्त्वप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(31)

कम्मस्साभावेण य, णोकम्माणं पि जायइ णिरोहो।
णोकम्मणिरोहेण य, संसारणिरोहणं होइ।।204।।

जब कर्मनिरोध हुआ तब ही, नोकर्मों का रोधन होता।
नोकर्म रोध हो जाने से, संसार भ्रमण रोधन होता।।
ऐसे क्रम से संवर करके, इक दिन परमात्मा बन जाता।
इस संवर के बल से आत्मा, निर्जरा मोक्ष भी प्रगटाता।।204।।

सोरठा – **है संवर अधिकार, कहा छठा गुरुदेव ने।**
अर्घ्य चढ़ाकर आज, पाऊँ आतमदेव मैं।।

ॐ ह्रीं नोकर्मनिरोधरूपसंवरतत्त्वप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

निर्जरा अधिकार की गाथाओं के अर्घ्य

(32)

उवभोज्जमिंदियेहिं, दव्वाणमचेदणाणमिदराणं।
जं कुणदि सम्मदिट्ठी, तं सव्वं णिज्जरणिमित्तं।।205।।

–शंभु छंद –

जो सम्यग्दृष्टि इन्द्रियों से, चेतन व अचेतन द्रव्यों का।
उपभोग किया करता तो भी, वह कर्म निर्जरा को करता।।

उस वीतरागि सम्यग्दृष्टी को, रागद्वेष मोहादि नहीं।
इसलिए निमित्तादिक मिलने पर, भी उसको निर्जरा कही।।205।।

सोरठा – **सप्तम है अधिकार, कर्म निर्जरा के लिए।**
अर्घ्य चढ़ाऊँ आय, निजसुख पाने के लिए।।

ॐ ह्रीं सम्यग्दृष्टिजीवानां निर्जरानिमित्तप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(33)

दव्वे उवभुज्जंते, णियमा जायदि सुहं च दुक्खं च।
तं सुहदुक्खमुदिण्णं, वेददि अथ णिज्जरं जादि।।206।।

उपभोग द्रव्य का करने से, सुख-दुख उत्पन्न नियम से हों।
उन उदय प्राप्त सुख-दुःखों को, अनुभव करता स्वयमेव अहो।।
इसके पश्चात् वही सुख-दुख, निर्जरा रूप हो जाते हैं।
सम्यग्ज्ञानी के सभी भाव, बिन बन्धन के झड़ जाते हैं।।206।।

सोरठा – **सप्तम है अधिकार, कर्म निर्जरा के लिए।**
अर्घ्य चढ़ाऊँ आय, निजसुख पाने के लिए।।

ॐ ह्रीं भावनिर्जराप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(34)

जह विसमुवभुज्जंता, विज्जा पुरिसा ण मरणमुवयंति।
पुग्गलकम्मस्सुदयं, तह भुंजदि णेव वज्झदे णाणी।।207।।

जैसे इक वैद्य पुरुष विष को, खाने पर भी नहिं मरता है।
क्योंकि विष एक रसायन बन, मारण शक्ति को हरता है।।
बस इसी तरह ज्ञानी आत्मा, पुद्गलकर्मों को भोक्ता है।
विरती भावों से कर्म भोगकर, भी उनसे नहिं बँधता है।।207।।

सोरठा – **सप्तम है अधिकार, कर्म निर्जरा के लिए।**
अर्घ्य चढ़ाऊँ आय, निजसुख पाने के लिए।।

ॐ ह्रीं वीतरागस्वसंवेदनज्ञानसामर्थ्यप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(35)

जह मज्जं पिवमाणो, अरदिभावेण मज्जदि ण पुरिसो।
दव्वुवभोगे अरदो, णाणी वि ण वज्झदि तहेव।।208।।

ज्यों अरतिभाव से कोई पुरुष, औषधि में मदिरा पान करे।
तो भी मतवाला नहिं होता, यह विरति भाव महात्म्य अरे।।
वैसे ही ज्ञानी विरत भाव से, अशनपान आदिक करता।
वह मुनि विरक्ति की शक्ति से, कर्मों का बन्ध नहीं करता।।208।।

सोरठा – **सप्तम है अधिकार, कर्म निर्जरा के लिए।**
अर्घ्य चढ़ाऊँ आय, निजसुख पाने के लिए।।

ॐ ह्रीं ज्ञानिनां वैराग्यसामर्थ्यप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(36)

सेवंतो वि ण सेवदि, असेवमाणो वि सेवगो कोवि।
पगरणचेट्ठा कस्सवि, ण य पायरणोत्ति सो होदि।।209।।

कोई तो विषयों का सेवन, करने पर भी सेवक नहिं है।
कोई सेवन नहिं करने पर भी, सेवक संज्ञा से युत है।।

प्रकरण के भी अनुसार किसी की, कार्यचेष्टा दिखती है।
फिर भी स्वामित्व भाव नहिं होने, से विरक्ति ही रहती है।।209।।

सोरठा – **सप्तम है अधिकार, कर्म निर्जरा के लिए।**
अर्घ्य चढ़ाऊँ आय, निजसुख पाने के लिए।।

ॐ ह्रीं निर्विकारस्वसंवेदकवैराग्यशक्तिस्वरूपप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(37)

उदयविवागो विविहो, कम्माणं वण्णिदो जिणवरेहिं।
ण दु ते मज्झ सहावा, जाणगभावो दु अहमिक्को।।210।।

कर्मों का उदय विपाक जिनेश्वर, ने है विविध प्रकार कहा।
मेरे स्वभाव वे भी नहिं हैं, मैंने तो सहज स्वभाव लहा।।

मैं तो बस एक मात्र ज्ञायक, चैतन्यरूप परमात्मा हूँ।
ज्ञानी ऐसा चिन्तन करता, मैं कर्मरहित शुद्धात्मा हूँ।।210।।

सोरठा – **सप्तम है अधिकार, कर्म निर्जरा के लिए।**
अर्घ्य चढ़ाऊँ आय, निजसुख पाने के लिए।।

ॐ ह्रीं कर्मोदयफलेष्वपि ज्ञायकभावस्वरूपप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(38)

पुग्गलकम्मं रागो, तस्स विवागोदओ हवदि एसो।
ण दु एस मज्झ भावो, जाणगभावो दु अहमिक्को।।211।।

सम्यग्दृष्टी निज पर के भेद, ज्ञान में तत्पर रहता है।
है पुद्गल कर्म राग उसका, फल उदय स्वयं अनुभवता है।।
फिर भी ये मेरे भाव नहीं, नहिं इन भावों का कर्त्ता मैं।
मैं ज्ञायक एक स्वभावी हूँ, अगणित गुणमणि का भर्त्ता मैं।।211।।

सोरठा – **सप्तम है अधिकार, कर्म निर्जरा के लिए।**
अर्घ्य चढ़ाऊँ आय, निजसुख पाने के लिए।।

ॐ ह्रीं निश्चयनयेन अहमिक्कोजाणगभावोगुणप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(39)

पुग्गलकम्मं कोहो, तस्स विवागोदयो हवदि एसो।
ण दु एस मज्झ भावो, जाणगभावो दु अहमिक्को।।212।।

सम्यग्दृष्टी निज पर के भेद, ज्ञान में तन्मय रहता है।
है पुद्गलकर्म क्रोध उसका, फल उदय स्वयं अनुभवता है।।
फिर भी ये भाव न आत्मा के, नहिं इन भावों का कर्ता है।
वह ज्ञायक एक स्वभावी है, अगणित गुणमणि का भर्ता है।।212।।

सोरठा – **सप्तम है अधिकार, कर्म निर्जरा के लिए।**
अर्घ्य चढ़ाऊँ आय, निजसुख पाने के लिए।।

ॐ ह्रीं निश्चयनयापेक्षया क्रोधभावरहितशुद्धज्ञायकभावप्रतिपादक-समयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(40)

कह एस तुज्झ ण हवदि, विविहो कम्मोदयफलविवागो।
परदव्वाणुवओगो, ण दु देहो हवदि अण्णाणी।।213।।

नाना कर्मोदय फलविपाक, तेरे स्वभाव कैसे नहिं हैं ?
तू ही तो उनका कर्त्ता है, तो भोक्ता भी कैसे नहिं है ?
ऐसा पूछे जाने पर ज्ञानी, सब पर को जड़ कहता है।
सारे औपाधिक भाव और, निज तन को भी पर कहता है।।213।।

सोरठा – **सप्तम है अधिकार, कर्म निर्जरा के लिए।**
अर्घ्य चढ़ाऊँ आय, निजसुख पाने के लिए।।

ॐ ह्रीं नानाकर्मोदयफलानि आत्मद्रव्यात्पृथक्प्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(41)

एवं सम्माइट्ठी, अप्पाणं मुणदि जाणगसहावं।
उदयं कम्मविवागं, य मुअदि तच्चं वियाणंतो।।214।।

यों सम्यग्दृष्टि निजात्मा को, ज्ञायक स्वभाव मय जान रहा।
वह वस्तु तत्त्व के यथारूप को, जान रहा अरु मान रहा।।
इस ज्ञान के प्रतिफल में वह कर्म, विपाक आदि भी तज देता।
तत्त्वों का ज्ञाता हो करके, निज सहज रूप को वर लेता।।214।।

सोरठा – **सप्तम है अधिकार, कर्म निर्जरा के लिए।**
अर्घ्य चढ़ाऊँ आय, निजसुख पाने के लिए।।

ॐ ह्रीं आत्मस्वभावज्ञायकसम्यग्दृष्टिजीवस्य ज्ञानवैराग्यप्रतिपादक-समयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(42)

परमाणुमित्तयंपि य, रागादीणं तु विज्जदे जस्स।
णवि सो जाणदि अप्पा-णयं तु सव्वागमधरोवि।।215।।

जिस प्राणी के रागादि भाव का, लेशमात्र भी रहता है।
वह सर्वागम का ज्ञानी भी, आत्मा को नहिं लख सकता है।।

आगम का ज्ञान मात्र उसका, कल्याण नहीं कर सकता है।
आत्मा में ही रम जाने पर, वह वीतराग बन सकता है।।215।।

सोरठा – **सप्तम है अधिकार, कर्म निर्जरा के लिए।**
अर्घ्य चढ़ाऊँ आय, निजसुख पाने के लिए।।

ॐ ह्रीं परमाणुमात्रमपि रागीसर्वागमधरोऽपि अज्ञानीइतिप्रतिपादक-समयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(43)

अप्पाणमयाणंतो, अणप्पयं चेव सो अयाणंतो।
कह होदि सम्मदिट्ठी, जीवाजीवे अयाणंतो।।216।।

निज आत्मा को जो नहिं जाने, वह पर को नहिं लख सकता है।
निज पर को जाने बिन सम्यग्दृष्टि कैसे बन सकता है।।
पर द्रव्य और परभावों से, जो भिन्न स्वयं को जान रहा।
वह ही सच्चा सम्यग्दृष्टी, भगवान स्वयं को ध्याय रहा।।216।।

सोरठा – **सप्तम है अधिकार, कर्म निर्जरा के लिए।**
अर्घ्य चढ़ाऊँ आय, निजसुख पाने के लिए।।

ॐ ह्रीं निश्चयनयेन रागीजीवस्य सम्यक्त्वाभावप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(44)

आदह्मि दव्वभावे, अथिरे मोत्तूण गिण्ह तव णियदं।
थिरमेगमिमं भावं, उपलब्भंतं सहावेण।।217।।

आत्मा के अपद द्रव्यभावों, को तज निज भाव ग्रहण कर ले।
निश्चित सुस्थिर वह एक तथा, स्वाभाविक भाव प्राप्त कर ले।।
प्रत्यक्ष रूप अनुभव गोचर, चैतन्यमात्र आत्मा भजले।
हे भव्य! यही तेरा पद है, बस इस पद में ही तू रम ले।।217।।

सोरठा – **सप्तम है अधिकार, कर्म निर्जरा के लिए।**
अर्घ्य चढ़ाऊँ आय, निजसुख पाने के लिए।।

ॐ ह्रीं स्थिरपरमात्मपदप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(45)

आभिणिसुदोहिमणकेवलं, च तं होदि एक्कमेव पदं।
सो एसो परमट्ठो, जं लहिदुं णिव्वुदिं जादि।।218।।

जो मति श्रुत अवधि मनःपर्यय, केवल ये पाँच ज्ञान भी हैं।
इन सभी भेद से युक्त ज्ञान, बस एक ज्ञान पद युत ही है।।
ऐसा वह जो परमार्थ ज्ञान, वह मोक्ष प्राप्त करवाता है।
वास्तव में आत्मा और ज्ञान जब, एक रूप बन जाता है।।218।।

सोरठा – **सप्तम है अधिकार, कर्म निर्जरा के लिए।**
अर्घ्य चढ़ाऊँ आय, निजसुख पाने के लिए।।

ॐ ह्रीं परमार्थज्ञानप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(46)

णाणगुणेहिं विहीणा, एदं तु पदं बहूवि ण लहंति।
तं गिण्ह सुपदमेदं, जदि इच्छसि कम्मपरिमोक्खं।।219।।

हे भव्य! ज्ञानगुण हीन कोई, इस पद को प्राप्त न कर सकते।
तुम उसको निश्चित ग्रहण करो, यदि चाहो मुक्ती कर्मों से।।
इस ज्ञान रहित बहु प्राणीगण, कितने ही पुण्य कर्म करते।
लेकिन शुद्धात्म ध्यान के बिन, परमातम पद को नहिं वरते।।219।।

सोरठा – **सप्तम है अधिकार, कर्म निर्जरा के लिए।**
अर्घ्य चढ़ाऊँ आय, निजसुख पाने के लिए।।

ॐ ह्रीं ज्ञानगुणविहीनप्राणिनां परंपदप्राप्तियोग्यताऽभावप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(47)

एदह्मि रदो णिच्चं, संतुट्ठो होहि णिच्चमेदह्मि।
एदेण होहि तित्तो, होहदि उत्तमं सुक्खं।।220।।

इस ज्ञान में ही रत हो जाओ, संतुष्ट इसी से हो जाओ।
इसमें ही तृप्त सदा होकर, निज में ही सुस्थिर हो जाओ।।

बस उत्तम सुख तो यह ही है, जिसके पश्चात् न दुःख आता।
ज्ञानात्मा में रम जाने पर, जग से न रहा तेरा नाता।।220।।

सोरठा – **सप्तम है अधिकार, कर्म निर्जरा के लिए।**
अर्घ्य चढ़ाऊँ आय, निजसुख पाने के लिए।।

ॐ ह्रीं उत्तमसौख्यप्राप्तिहेतुज्ञानगुणप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(48)

को णाम भणिज्ज बुहो, परदव्वं मम इमं हवदि दव्वं।
अप्पाणमप्पणो, परिग्गहं तु णियदं वियाणंतो।।221।।

है कौन सुधी ऐसा जो पर, द्रव्यों को अपना कह सकता ?
जो आत्मा को ही आत्मपरिग्रह, मान उसी में रम सकता।।
पर को अपना कहने वाला, ज्ञानी पण्डित नहिं हो सकता।
शुद्धात्मध्यान में लीन साधु ही, पर भावों को खो सकता।।221।।

सोरठा – **सप्तम है अधिकार, कर्म निर्जरा के लिए।**
अर्घ्य चढ़ाऊँ आय, निजसुख पाने के लिए।।

ॐ ह्रीं ज्ञानिआत्मना परद्रव्यग्रहणाभावप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(49)

मज्झं परिग्गहो जइ, तदो अहमजीवदं तु गच्छेज्ज।
णादेव अहं जह्मा, तह्मा ण परिग्गहो मज्झ।।222।।

यदि अन्य परिग्रह मेरा हो, तो कैसे जीव कहाऊँगा।
मैं खुद अजीवपन को पाकर, जड़ता को ही पा जाऊँगा।।
अतएव परिग्रह नहिं मेरा, क्योंकी मैं ज्ञाता दृष्टा हूँ।
ज्ञायक स्वभाव में ही रमकर, परद्रव्य ग्रहण नहिं करता हूँ।।222।।

सोरठा – **सप्तम है अधिकार, कर्म निर्जरा के लिए।**
अर्घ्य चढ़ाऊँ आय, निजसुख पाने के लिए।।

ॐ ह्रीं परद्रव्यग्रहणाभावरूपज्ञातादृष्टागुणप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(50)

छिज्जदु वा भिज्जदु वा, णिज्जदु वा अहव जादु विप्पलयं।
जह्मा तह्मा गच्छदु, तहावि ण परिग्गहो मज्झ।।223।।

छिद जावे भिद जावे अथवा, कोई भी उसको ले जावे।
हो नष्ट किसी भी तरह कहीं भी, किन्हीं युक्ति से हो जावे।।
तो भी उन पर द्रव्यों को मैं, कथमपि स्वीकार न कर सकता।
प्रत्येक द्रव्य निज सत्ता तज, परद्रव्य-रूप नहिं परिणमता।।223।।

सोरठा – **सप्तम है अधिकार, कर्म निर्जरा के लिए।**
अर्घ्य चढ़ाऊँ आय, निजसुख पाने के लिए।।

ॐ ह्रीं शुद्धनिश्चयनयापेक्षया अच्छेद्य-अभेद्यस्वात्मगुणप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(51)

अपरिग्गहो अणिच्छो, भणिदो णाणी य णिच्छदे धम्मं।
अपरिग्गहो दु धम्मस्स, जाणगो तेण सो होदि।।224।।

ज्ञानी विराग सम्यग्दृष्टी ने, पूर्ण परिग्रह त्याग दिया।
मनवचनकाय से परिग्रह की, इच्छा का भी परित्याग किया।।

इस ही कारण उस ज्ञानी के, नहिं धर्म परिग्रह की इच्छा।
बस मात्र धर्म का ज्ञायक जो, वह ही जग में ज्ञानी सच्चा।।224।।

सोरठा – **सप्तम है अधिकार, कर्म निर्जरा के लिए।**
अर्घ्य चढ़ाऊँ आय, निजसुख पाने के लिए।।

ॐ ह्रीं शुद्धज्ञायकभावप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(52)

अपरिग्गहो अणिच्छो, भणिदो णाणी य णिच्छदि अहम्मं।
अपरिग्गहो अधम्मस्स, जाणगो तेण सो होदि।।225।।

उस इच्छा रहित तपोधन ने, सम्पूर्ण परिग्रह त्याग दिया।
उस तत्त्वज्ञानि ने अधर्ममय, विषयों का भी परित्याग किया।।

वह तो बस मात्र अधर्म विषय, का ज्ञायक एक स्वभावी है।
अज्ञानी इनमें रमता है, ज्ञानी सबमें समभावी है।।225।।

सोरठा – **सप्तम है अधिकार, कर्म निर्जरा के लिए।**
अर्घ्य चढ़ाऊँ आय, निजसुख पाने के लिए।।

ॐ ह्रीं निश्चयनयेन अपरिग्रहगुणप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(53)

धम्मच्छि अधम्मच्छी, आयासं सुत्तमंगपुव्वेसु।
संगं च तहा णेयं, देवमणुअत्तिरियणेरइयं।।226।।

ज्ञानी के धर्म अधर्म और, आकाश परिग्रह भी नहिं हैं।
श्रुतज्ञान अंग पूरब संयुत, बाह्याभ्यंतर परिग्रह नहिं हैं।।
नहिं देव मनुज तिर्यञ्च और, नरकादि परिग्रह भी उसके।
आत्मा तो ज्ञायक भाव मात्र, उसके न परिग्रह कह सकते।।226।।

सोरठा – **सप्तम है अधिकार, कर्म निर्जरा के लिए।**
अर्घ्य चढ़ाऊँ आय, निजसुख पाने के लिए।।

ॐ ह्रीं धर्मास्तिकायादिसमस्तज्ञेयपरिग्रहत्यागभावप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(54)

अपरिग्गहो अणिच्छो, भणिदो असणं च णिच्छदे णाणी।
अपरिग्गहो दु असणस्स, जाणगो तेण सो होदि।।227।।

उस आत्मलीन सम्यग्ज्ञानी ने, सभी परिग्रह त्याग दिया।
उस शुद्धातम ज्ञानी ने भोजन, की गृद्धी का त्याग किया।।
वह तो बस ज्ञानामृत भोजन से, तृप्त सदा ही रहता है।
वह युक्ताहार विहारी मुनि, उसका ज्ञायक ही रहता है।।227।।

सोरठा – **सप्तम है अधिकार, कर्म निर्जरा के लिए।**
अर्घ्य चढ़ाऊँ आय, निजसुख पाने के लिए।।

ॐ ह्रीं भोजनपरिग्रहरहितज्ञानगुणप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(55)

अपरिग्गहो अणिच्छो, भणिदो पाणं तु णिच्छदे णाणी।
अपरिग्गहो दु पाणस्स, जाणगो तेण सो होदि।।228।।

जो इच्छा रहित तपोधन है, वह सर्वपरिग्रह मुक्त कहा।
जल आदिक पीने की इच्छा का, उसके नहिं सद्भाव रहा।।
इस कारण पानक का परिग्रह, ज्ञानी के कभी न होता है।
उसका बस ज्ञायक ही होकर, शुद्धातम ध्यानी होता है।।228।।

सोरठा – **सप्तम है अधिकार, कर्म निर्जरा के लिए।**
अर्घ्य चढ़ाऊँ आय, निजसुख पाने के लिए।।

ॐ ह्रीं पानकपरिग्रहरहितज्ञानगुणप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(56)

इच्चादिए दु विविहे, सव्वे भावे य णिच्छदे णाणी।
जाणगभावो णियदो, णीरालंबो दु सव्वत्थ।।229।।

पूर्वोक्त कथित ये विविध भाव, ज्ञानी के हुआ न करते हैं।
सबसे विरक्त होकर वे इनकी, इच्छा भी नहिं करते हैं।।
क्योंकी आत्मा तो नियमरूप से, ज्ञायक भाव कहाता है।
आलम्बन में भी रह करके वह, निरालम्ब कहलाता है।।229।।

सोरठा – **सप्तम है अधिकार, कर्म निर्जरा के लिए।**
अर्घ्य चढ़ाऊँ आय, निजसुख पाने के लिए।।

ॐ ह्रीं निरालम्बभावप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(57)

उप्पण्णोदयभोगे, वियोगबुद्धीय तस्स सो णिच्चं।
कंखामणागदस्स य, उदयस्स ण कुव्वदे णाणी।।230।।

उत्पन्न हुआ जो उदय भोग, ज्ञानी नित भोगा करता है।
वह सदा हेयबुद्धी से उस, फल रूप वर्तना करता है।।
आगामी कर्म उदय की वह, आकांक्षा कभी न करता है।
इसलिए अतीत अनागत कर्म, परिग्रह नहिं वह रखता है।।230।।

सोरठा – **सप्तम है अधिकार, कर्म निर्जरा के लिए।**
अर्घ्य चढ़ाऊँ आय, निजसुख पाने के लिए।।

ॐ ह्रीं भोगाकांक्षाविरहितज्ञानिभावप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

(58)

जो वेददि वेदिज्जदि, समए समए विणस्सदे उहयं।
तं जाणगो दु णाणी, उभयं पि ण कंखदि कयावि।।231।।

जो वेद्य और वेदक स्वरूप, आत्मा में भाव उपजते हैं।
वे हैं वैभाविक भाव अतः, निज समय समय में नशते हैं।।
ज्ञानी इन दोनों भावों में, ज्ञायक स्वरूप ही रहता है।
वह नहीं कदाचित् भी दोनों, भावों की कांक्षा करता है।।231।।

सोरठा – **सप्तम है अधिकार, कर्म निर्जरा के लिए।**
अर्घ्य चढ़ाऊँ आय, निजसुख पाने के लिए।।

ॐ ह्रीं ज्ञानीजीवस्य वेद्यवेदकभावप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(59)

बंधुवभोगणिमित्तं, अज्झवसाणोदयेसु णाणिस्स।
संसारदेहविसएसु, णेव उप्पज्जदे रागो।।232।।

जग में जो बन्ध निमित्त और, उपभोग निमित्त भाव आते।
संसार देह के विषयों में, अध्यवसानादि उदय आते।।
ज्ञानी तो उनमें रागभाव, उत्पन्न न होने देता है।
अज्ञानी रागभाव करके, निजकर्म बंध कर लेता है।।232।।

सोरठा – **सप्तम है अधिकार, कर्म निर्जरा के लिए।**
अर्घ्य चढ़ाऊँ आय, निजसुख पाने के लिए।।

ॐ ह्रीं बंधोपभोगनिमित्तेषु अध्यवसानप्रति रागभावरहितज्ञानिगुणप्रतिपादक-समयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(60)

णाणी रागप्पजहो, सव्वदव्वेसु कम्ममज्झगदो।
णो लिप्पदि कम्मरएण दु, कद्दममज्झे जहा कणयं।।233।।

शुद्धातम ज्ञानी सब द्रव्यों का, राग छोड़कर रहता है।
वह कर्मों के संग रहकर भी, उस रज से लिप्त न रहता है।।
जैसे कीचड़ में पड़े हुये, सोने में जंग न लगता है।
जग में रहकर जग से अलिप्त, योगी भी बन्ध न करता है।।233।।

सोरठा – **सप्तम है अधिकार, कर्म निर्जरा के लिए।**
अर्घ्य चढ़ाऊँ आय, निजसुख पाने के लिए।।

ॐ ह्रीं कर्दममध्ये कनकवत्ज्ञानिजीवरजसा अलिप्तभावप्रतिपादक-समयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(61)

अण्णाणी पुण रत्तो, सव्वदव्वेसु कम्ममज्झगदो।
लिप्पदि कम्मरएण दु, कद्दममज्झे जहा लोहं।।234।।

लेकिन अज्ञानी का स्वभाव, विपरीत सदा ही रहता है।
वह सब द्रव्यों का रागी हो, पर में ही रमता रहता है।।
जैसे कीचड़ में पड़े हुए, लोहे में जंग लग जाता है।
वैसे ही अज्ञानी के भी, कर्मों का बंधन होता है।।234।।

सोरठा – **सप्तम है अधिकार, कर्म निर्जरा के लिए।**
अर्घ्य चढ़ाऊँ आय, निजसुख पाने के लिए।।

ॐ ह्रीं कर्दममध्ये लोहवत्अज्ञानिजीवरजसा लिप्तभावप्रतिपादकसमय-साराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(62)

णागफणीए मूलं, णाइणितोएण गब्भणागेण।
णागं होइ सुवण्णं, धम्मंतं भच्छवाएण।।235।।

इक नागफणी का मूल नागिनी[1], जल को युक्त क्रियाओं से।
सिन्दूर द्रव्य सीसा धातू, इनको अग्नी में तपाने से।।
यदि पुण्य कर्म का उदय हुआ, तो स्वर्ण रूप बन जाता है।
इन सभी द्रव्य के मिलने से, स्वर्णत्व अवस्था पाता है।।235।।

1. हस्तिनी का मूत्र।

सोरठा – **सप्तम है अधिकार, कर्म निर्जरा के लिए।**
अर्घ्य चढ़ाऊँ आय, निजसुख पाने के लिए।।

ॐ ह्रीं सुवर्णनिर्माणसामग्रीवत्मोक्षतत्त्वसामग्रीप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(63)

कम्मं हवेइ किट्टं, रागादी कालिया अह विभाओ।
सम्मत्तणाणचरणं, परमोसहमिदि वियाणाहि।।236।।

संसारी प्राणी के संग में जो, द्रव्य कर्म हैं लगे हुए।
वे तो हैं कीट तथा रागादिक, भाव कालिमा कहे गए।।
सम्यग्दर्शन अरु ज्ञान चरण, ये तो परमौषधि कहलाते।
इनके ही बल पर भेद ज्ञान, करके अभेदमय बनजाते।।236।।

सोरठा – **सप्तम है अधिकार, कर्म निर्जरा के लिए।**
अर्घ्य चढ़ाऊँ आय, निजसुख पाने के लिए।।

ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचरणपरमौषधिना अभेदमयज्ञायकभावप्रतिपादक-समयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(64)

झाणं हवेइ अग्गी, तवयरणं भत्तली समक्खादो।
जीवो हवेइ लोहं, धमियव्वो परमजोईहिं।।237।।

सम्यक्समाधिमय ध्यान अग्नि, लोहा आसन्न भव्य माना।
तपरूप धौंकिनी से वायू का, योग मिले जब मनमाना।।
सोना बनने के सदृश ही, योगी जब ध्यान लीन होते।
तब मोक्ष स्वभाव प्रगट करके, वैभाविक परिणति को खोते।।237।।

सोरठा – **सप्तम है अधिकार, कर्म निर्जरा के लिए।**
अर्घ्य चढ़ाऊँ आय, निजसुख पाने के लिए।।

ॐ ह्रीं ध्यानाग्निना आत्मतत्त्वरूपस्वर्णत्वभावप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(65)

भुंजंत्तस्सवि विविहे, सच्चित्ताचित्तमिस्सिये दव्वे।
संखस्स सेदभावो, णवि सक्कदि किण्हगो कादुं।।238।।

ज्यों शंख नामका जीव सचित्ताचित्त मिश्र द्रव्यों को भी।
भक्षण कर लेता है परन्तु, नहिं कृष्णरूप होता तो भी।।
जब श्वेत शंख को कोई भी, नर काला नहीं कर सकता है।
तब ज्ञानी आत्मा में बोलो, अज्ञान कहाँ रह सकता है।।238।।

सोरठा – **सप्तम है अधिकार, कर्म निर्जरा के लिए।**
अर्घ्य चढ़ाऊँ आय, निजसुख पाने के लिए।।

ॐ ह्रीं श्वेतशंखवत्आत्मभावकर्ममलीमसकृताभावप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(66)

तह णाणिस्स दु विविहे, सच्चित्ताचित्तमिस्सिए दव्वे।
भुंजंत्तस्सवि णाणं, णवि सक्कदि रागदो णेदुं।।239।।

ज्ञानी भी विविध प्रकार सचित्ताचित्त मिश्र द्रव्यों का भी।
उपभोग आदि करते करते, तन्मय वह कभी न होता भी।।
क्योंकी ज्ञानी का ज्ञान कभी, अज्ञान नहीं बन सकता है।
अज्ञानरूप यदि हो जावे, तो ज्ञानी नहिं रह सकता है।।239।।

सोरठा – **सप्तम है अधिकार, कर्म निर्जरा के लिए।**
अर्घ्य चढ़ाऊँ आय, निजसुख पाने के लिए।।

ॐ ह्रीं शुद्धनिश्चयनयापेक्षया अज्ञानभावाग्राहकज्ञानीजीवगुणप्रतिपादक-समयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(67)

जइया स एव संखो, सेदसहावं सयं पजहिदूण।
गच्छेज्ज किण्हभावं, तइया सुक्कत्तणं पजहे।।240।।

जब कभी शंख अपने स्वभाव के, श्वेतवर्ण को तजता है।
कालेपन की परिणति में वह, वैभाविक परिणति करता है।।

शुक्लत्व भाव को स्वयं छोड़कर, कृष्णरूप बन जाता है।।
परद्रव्यों के निमित्त से भी, वह शंख कृष्ण बन जाता है।।240।।

सोरठा – **सप्तम है अधिकार, कर्म निर्जरा के लिए।**
अर्घ्य चढ़ाऊँ आय, निजसुख पाने के लिए।।

ॐ ह्रीं कृष्णवर्णसमन्वितश्वेतशंखवत्अशुद्धजीवतत्त्वप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(68)

जह संखो पोग्गलदो, जइया सुक्कत्तणं पजहिदूण।
गच्छेज्ज किण्हभावं, तइया सुक्कत्तणं पजहे।।241।।

निर्जीव शंख जब इसी तरह से, श्वेतपने को तज देता।
वह कृष्णरूप में परिणत हो, निज को ही कृष्ण बना लेता।।
परद्रव्य निमित्तों के कारण, इतना अधीन हो जाता है।
खुद छोड़ स्वयं की सत्ता भी, निज को पर रूप बनाता है।।241।।

सोरठा – **सप्तम है अधिकार, कर्म निर्जरा के लिए।**
अर्घ्य चढ़ाऊँ आय, निजसुख पाने के लिए।।

ॐ ह्रीं अज्ञानभावपरिणतज्ञानिनां अज्ञानभावप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(69)

तह णाणी विय जइया, णाणसहावत्तयं पजहिदूण।
अण्णाणेण परिणदो, तइया अण्णाणदं गच्छे।।242।।

बस इसी तरह से ज्ञानी भी, जब निज स्वभाव को तजता है।
निज आतमा में नहिं रम करके, जब ज्ञानभाव को तजता है।।
तब ज्ञानभाव अज्ञानरूप, परिणमित स्वयं हो जाता है।
अपनी अज्ञान क्रिया से वह, अज्ञान अवस्था पाता है।।242।।

सोरठा – **सप्तम है अधिकार, कर्म निर्जरा के लिए।**
अर्घ्य चढ़ाऊँ आय, निजसुख पाने के लिए।।

ॐ ह्रीं परद्रव्यनिमित्तेन अज्ञानभावप्राप्तजीवतत्त्वप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(70)

पुरिसो जह कोवि इह, वित्तिणिमित्तं तु सेवदे रायं।
तो सोवि देदि राया, विविहे भोए सुहुप्पादे।।243।।

जैसे जग में कोई मानव, राजा की सेवा करता है।
अपनी जीविका चलाने को, स्वीकार दासता करता है।।
तब राजा भी निज सेवक को, अनुकूल वस्तुएं देता है।
सेवा के बदले में सेवक, निज सेव्य वस्तुएं लेता है।।243।।

सोरठा – **सप्तम है अधिकार, कर्म निर्जरा के लिए।**
अर्घ्य चढ़ाऊँ आय, निजसुख पाने के लिए।।

ॐ ह्रीं नृपसेवकप्राप्तसुखवत्जीवात्मानः क्षणिकसुखप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(71)

एमेव जीवपुरिसो, कम्मरयं सेवदे सुहणिमित्तं।
तो सो वि कम्मरायो, देदि सहुप्पादगे भोगे।।244।।

ऐसे ही जीवात्मा नामक, इक पुरुष कर्मराजा सेता।
सुख के निमित्त सेवा करने के, बदले वह सुख को लेता।।
वे कर्मराज भी निजसेवक को, भोगवस्तुएं देते हैं।
अपना साम्राज्य दिखा करके, सारे जग को छल लेते हैं।।244।।

सोरठा – **सप्तम है अधिकार, कर्म निर्जरा के लिए।**
अर्घ्य चढ़ाऊँ आय, निजसुख पाने के लिए।।

ॐ ह्रीं जीवात्मा कर्मनृपस्य सेवकभावप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(72)

जह पुण सो चेव णरो, पुरिसो वित्तिणिमित्तं ण सेवदे रायं।
तो सो ण देदि राया, विविह सुहुप्पादगे भोगे।।245।।

लेकिन जैसे जब वही पुरुष, नृप की सेवा नहिं करता है।
निज जीवन पालन के निमित्त, भूपति का काम न करता है।।

तब राजा भी उस मानव को, नानाविध वस्तु न देता है।
सेवा नहिं करने से सेवक, निज भोग्य वस्तु नहीं लेता है।।245।।

सोरठा – **सप्तम है अधिकार, कर्म निर्जरा के लिए।**
अर्घ्य चढ़ाऊँ आय, निजसुख पाने के लिए।।

ॐ ह्रीं भोग्यवस्तुअप्राप्तसेवकवत्ज्ञानिभावप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(73)

एमेव सम्मदिट्ठी, विसयत्तं सेवदे ण कम्मरयं।
तो सो ण देदि कम्मं, विविहे भोगे सुहुप्पादे।।246।।

ऐसे ही सम्यग्दृष्टि पुरुष, नहिं कर्मराज को सेता है।
विषयों की इच्छा से न कभी, वह विषयसुखों को लेता है।।
तब कर्मराज भी उसे भला, क्यों भोग्य वस्तुएं दे सकते?
फल इच्छा बिन कर्मों के सेवन, से नहिं फल को ले सकते।।246।।

सोरठा – **सप्तम है अधिकार, कर्म निर्जरा के लिए।**
अर्घ्य चढ़ाऊँ आय, निजसुख पाने के लिए।।

ॐ ह्रीं विषयाशारहितवीतरागसम्यग्दृष्टिभावप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(74)

सम्मादिट्ठी जीवा, णिस्संका होंति णिब्भया तेण।
सत्तभयविप्पमुक्का, जह्मा तह्मा दु णिस्संका।।247।।

निःशंक कहे सम्यग्दृष्टी, अतएव सदा निर्भय रहते।
मरणादि रूप सातों प्रकार के, भय से भी विरहित रहते।।
निःशंक अवस्था का ऐसा ही, अर्थ बताया जाता है।
पांडववत् निश्चल रहते वे, उपसर्ग भले ही आता है।।247।।

सोरठा – **सप्तम है अधिकार, कर्म निर्जरा के लिए।**
अर्घ्य चढ़ाऊँ आय, निजसुख पाने के लिए।।

ॐ ह्रीं निश्चयनिःशंकितनिर्भयगुणसमन्वितसम्यग्दर्शनप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(75)

जो चत्तारिवि पाए, छिंददि ते कम्ममोहबाधकरे।
सो णिस्संको चेदा, सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो।।248।।

मिथ्यात्व तथा अविरति कषाय, अरु योग चार ये मुख्य कहे।
इन चारों पायों को एवं, जो मोह कर्म को नष्ट करे।।
वह चेतयिता ही निःशंकित, सम्यग्दृष्टी कहलाता है।
वह आत्मविषय में शंकाकृत, नहिं बंध कभी कर पाता है।।248।।

सोरठा – **सप्तम है अधिकार, कर्म निर्जरा के लिए।**
अर्घ्य चढ़ाऊँ आय, निजसुख पाने के लिए।।

ॐ ह्रीं मिथ्यात्वादिकर्मबंधनिमित्तछेदकनिःशंकसम्यग्दृष्टिलक्षणप्रतिपादक-समयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(76)

जो ण करेदि दु कंखं, कम्मफले तहय सव्वधम्मेसु।
सो णिक्कंखो चेदा, सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो।।249।।

जो प्राणी कर्मों के फल की, इच्छा न कदाचित् करता है।
वह सभी तरह के धर्मों में, वांछा न कदापी करता है।।
बस वही जीव निःकांक्षित, सम्यग्दृष्टी पद को पाता है।
उसके वांछा से जनित कर्म का, बन्ध नहीं हो पाता है।।249।।

सोरठा – **सप्तम है अधिकार, कर्म निर्जरा के लिए।**
अर्घ्य चढ़ाऊँ आय, निजसुख पाने के लिए।।

ॐ ह्रीं निश्चयनिःकांक्षितगुणसमन्वितसम्यग्दर्शनप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(77)

जो ण करेदि दुगुंछं, चेदा सव्वेसिमेव धम्माणं।
सो खलु णिव्विदिगिंछो, सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो।।250।।

जो प्राणी सभी वस्तुओं के, धर्मों में ग्लानि न करता है।
विचिकित्सा दोष रहित होकर, वह सम्यग्दृष्टी बनता है।।

उसके परवस्तू द्वेष निमित्तक, बन्ध न होने पाता है।
पूर्वोपार्जित कर्मों को वह, निर्जीर्ण सदा करवाता है।।250।।

सोरठा – **सप्तम है अधिकार, कर्म निर्जरा के लिए।**
अर्घ्य चढ़ाऊँ आय, निजसुख पाने के लिए।।

ॐ ह्रीं निश्चयनिर्विचिकित्सागुणसमन्वितसम्यग्दर्शनप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(78)

सो हवदि असम्मूढो, चेदा सव्वेसु कम्मभावेसु।
सो खलु अमूढदिट्ठी, सम्मादिट्ठी मुणेयव्वो।।251।।

जो चेतन आत्मा सब भावों में, मूढ़ कभी नहिं होता है।
सब कर्मोदय भावों के प्रति भी, सम्मोहित नहिं होता है।।
वह अंग अमूढ़दृष्टि का पालक, सम्यग्दृष्टि कहा जाता।
निश्चय से यह सम्यग्दृष्टी ही, समयसारमय बन जाता।।251।।

सोरठा – **सप्तम है अधिकार, कर्म निर्जरा के लिए।**
अर्घ्य चढ़ाऊँ आय, निजसुख पाने के लिए।।

ॐ ह्रीं निश्चयअमूढदृष्टिगुणसमन्वितसम्यग्दर्शनप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(79)

जो सिद्धभत्तिजुत्तो, उवगूहणगो दु सव्वधम्माणं।
सो उवगूहणकारी, सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो।।252।।

सिद्धों की भक्ति सहित ज्ञानी, सब धर्मों का उपगूहक है।
इसलिए उसी सम्यग्दृष्टि के, हुआ अंग उपगूहन है।।
वह दोष प्रगट करने स्वरूप, कर्मों का बन्ध न करता है।
प्रत्युत पूर्वोपार्जित कर्मों की, सतत निर्जरा करता है।।252।।

सोरठा – **सप्तम है अधिकार, कर्म निर्जरा के लिए।**
अर्घ्य चढ़ाऊँ आय, निजसुख पाने के लिए।।

ॐ ह्रीं निश्चयउपगूहनगुणसमन्वितसम्यग्दर्शनप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(80)

उम्मग्गं गच्छंतं, सिवमग्गे जो ठवेदि अप्पाणं।
सो ठिदिकरणेण जुदो, सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो।।253।।

जो जीव स्वयं को उन्मारग में, जाते समय बचाता है।
पर को व निजात्मा को भी, जिनमारग की राह दिखाता है।।
वह स्थितिकरण अंग का धारी, सम्यग्दृष्टी ज्ञानी है।
उसके न कर्म का बन्ध किन्तु, निर्जरा कहे जिनवाणी है।।253।।

सोरठा – **सप्तम है अधिकार, कर्म निर्जरा के लिए।**
अर्घ्य चढ़ाऊँ आय, निजसुख पाने के लिए।।

ॐ ह्रीं निश्चयस्थितिकरणगुणसमन्वितसम्यग्दर्शनप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(81)

जो कुणदि वच्छलत्तं, तिण्हे साधूण मोक्खमग्गम्मि।
सो वच्छलभावजुदो, सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो।।254।।

जो सभी मुक्ति पथिकों के प्रति, वात्सल्यभाव नित रखता है।
आचार्य साधु पाठक तीनों की, निश्चय भक्ति करता है।।
वह ज्ञानी सम्यग्दृष्टि जीव, वात्सल्य अंग पालन करता।
वात्सल्य रहित नहिं बन्ध उसे, अतएव निर्जरा ही करता।।254।।

सोरठा – **सप्तम है अधिकार, कर्म निर्जरा के लिए।**
अर्घ्य चढ़ाऊँ आय, निजसुख पाने के लिए।।

ॐ ह्रीं निश्चयवात्सल्यगुणसमन्वितसम्यग्दर्शनप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(82)

विज्जारहमारूढो, मणोरहएसु हणदि जो चेदा।
सो जिणणाणपहावी, सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो।।255।।

आत्मानुभूति में रत प्राणी, जब विद्यारथ पर चढ़ता है।
मनरूपी रथ के पथ पर चल, निज शुद्धातम में रमता है।।

वह ज्ञानी मुनि जिनज्ञान प्रभावक, सम्यग्दृष्टि कहा जाता।
समभाव सारथी ध्यान खड्ग से, वह स्वराज को पा जाता।।255।।

सोरठा – **सप्तम है अधिकार, कर्म निर्जरा के लिए।**
अर्घ्य चढ़ाऊँ आय, निजसुख पाने के लिए।।

ॐ ह्रीं निश्चयप्रभावनागुणसमन्वितसम्यग्दर्शनप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

बंधाधिकार की गाथाओं के अर्घ्य

(83)

जह णाम कोवि पुरुसो, णेहभत्तो दु रेणुबहुलम्मि।
ठाणम्मि ठाइदूण य, करेदि सत्थेहिं वायामं।।256।।

–कुसुमलता छंद –

जैसे कोई पुरुष तेल से, निज शरीर अवलिप्त करे।
पुनः धूलिसंयुत प्रदेश को, जा करके संस्पर्श करे।।
नाना शस्त्रों के माध्यम से, वह व्यायाम किया करता।
धूली को अपने शरीर में, वह स्थान दिया करता।।256।।

सोरठा – **कर्मबंध की बात, कही बंध अधिकार में।**
अर्घ्य चढ़ाकर आज, तजूँ बंध का द्वार मैं।।

ॐ ह्रीं तैलस्निग्धशरीरवत्बंधतत्त्वप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(84)

छिंददि भिंददि य तहा, तालीतलकदलिवंसपिंडीओ।
सच्चित्ताचित्ताणं, करेदि दव्वाणमुवघादं।।257।।

ताड़ बांस कदली वृक्षों का, छेदनभेदन भी करता।
वह व्यायामी पुरुष वहाँ, शारीरिक चेष्टा ही करता।।
वृक्षों के आश्रित जीवों का, भी उपघात किया करता।
वह सजीव निर्जीव द्रव्य का, घात स्वयं करता रहता।।257।।

सोरठा – **कर्मबंध की बात, कही बंध अधिकार में।**
अर्घ्य चढ़ाकर आज, तजूँ बंध का द्वार मैं।।

ॐ ह्रीं सचित्ताचित्तद्रव्याणामुपघातगुणप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(85)

उवघादं कुव्वंतस्स, तस्स णाणाविहेहिं करणेहिं।
णिच्छयदो चिंतिज्ज दु, किं पच्चयगो दु तस्स रयबंधो।।258।।

इस प्रकार नाना कार्यों, द्वारा उपघात हुआ जो भी।
धूलि धूसरित मलिन रूप को, प्राप्त किया करता वो ही।।
घात और उपघात से जो, धूली शरीर में लगती है।
सोचो उस मानव के धूली, किस हेतू से लगती है।।258।।

सोरठा – **कर्मबंध की बात, कही बंध अधिकार में।**
अर्घ्य चढ़ाकर आज, तजूँ बंध का द्वार मैं।।

ॐ ह्रीं निश्चयापेक्षया रजोबंधकारणप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

(86)

जो सो दु णेहभावो, तह्मि णरे तेण रयबंधो।
णिच्छयदो विण्णेयं ण, कायचेट्ठाहिं सेसाहिं।।259।।

सुनो प्रश्न का उत्तर यह, आगम की भाषा मान रहा।
तेल लगे नर के इस कारण, से कर्मों का बन्ध कहा।।
निश्चय ही उस रजोबंध में, तेल निमित्त हुआ करता।
मात्र काय की चेष्टा से नहिं, धूल धूसरित रह सकता।।259।।

सोरठा – **कर्मबंध की बात, कही बंध अधिकार में।**
अर्घ्य चढ़ाकर आज, तजूँ बंध का द्वार मैं।।

ॐ ह्रीं रजोबंधस्य तैलनिमित्तवत्कर्मबंधकारणप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(87)

एवं मिच्छादिट्ठी, वट्टन्तो बहुविहासु चेट्ठासु।
रागादी उवओगे, कुव्वंतो लिप्पदि रयेण।।260।।

ऐसे ही जब मिथ्यादृष्टी, विविध क्रियाएं करता है।
व्रत विरहित नाना प्रकार, शारीरिक चेष्टा करता है।।
वह रागादिक परिणामों से, कर्मधूलि से लिपता है।
रागद्वेष नहिं होवें यदि तो, बन्ध नहीं हो सकता है।।260।।

सोरठा – **कर्मबंध की बात, कही बंध अधिकार में।**
अर्घ्य चढ़ाकर आज, तजूँ बंध का द्वार मैं।।

ॐ ह्रीं कर्मबंधेषु रागादिनिमित्तप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(88)

जह पुण सो चेव णरो, णेहे सव्वह्मि अवणिये संते।
रेणुबहुलम्मि ठाणे, करेदि सत्थेहिं वायामं।।261।।

जैसे जब वही पुरुष समस्त, तैलादि पदार्थ अलग करके।
धूल भरी क्षिति में करता, व्यायाम शस्त्र को लेकर के।।
नाना शस्त्रों के माध्यम से, कितना ही श्रम करता है।
तो भी वह अपने शरीर में, रजोबन्ध नहिं करता है।।261।।

सोरठा – **कर्मबंध की बात, कही बंध अधिकार में।**
अर्घ्य चढ़ाकर आज, तजूँ बंध का द्वार मैं।।

ॐ ह्रीं तैलरहितशरीरवत्अबंधकभावप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(89)

छिंददि भिंददि य तहा, तालीतलकदलिवंसपिंडीओ।
सच्चित्ताचित्ताणं, करेदि दव्वाणमुवघादं।।262।।

ताड़ बांस कदली वृक्षों का, छेदनभेदन भी करता।
वह व्यायामी पुरुष वहाँ, शारीरिक चेष्टा ही करता।।
वृक्षों के आश्रित जीवों का, भी उपघात किया करता।
वह सजीव निर्जीव द्रव्य का, घात स्वयं करता रहता।।262।।

सोरठा – **कर्मबंध की बात, कही बंध अधिकार में।**
अर्घ्य चढ़ाकर आज, तजूँ बंध का द्वार मैं।।

ॐ ह्रीं सचित्ताचित्तद्रव्याणामुपघातरहितगुणप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(90)

उवघादं कुव्वतंस्स, तस्स णाणाविहेहिं करणेहिं।
णिच्छयदो चिंतिज्ज हु, किंपच्चयगो ण तस्स रयबंधो।।263।।

इस प्रकार नाना कार्यों, द्वारा उपघात हुआ जो भी।
धूलिधूसरित मलिन रूप को, नहीं प्राप्त करता तो भी।।
घात और उपघात से भी, जब धूल ग्रहण नहिं करता है।
तब सोचो किस हेतू से वह, रजोबन्ध नहिं करता है।।263।।

सोरठा – **कर्मबंध की बात, कही बंध अधिकार में।**
अर्घ्य चढ़ाकर आज, तजूँ बंध का द्वार मैं।।

ॐ ह्रीं निश्चयनयापेक्षया रजोबंधरहितगुणप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(91)

जो सो दुणेहभावो, तह्मि णरे तेण तस्स रयबंधो।
णिच्छयदो विण्णेयं, ण कायचेट्ठाहिं सेसाहिं।।264।।

सुनो प्रश्न का उत्तर यह, श्री कुन्दकुन्द आचार्य कहें।
जब शरीर में तेल नहीं तो, धूल कहो क्यों जीव गहे।।
निश्चित ही बिन तेल निमित्त के, रजोबन्ध नहिं कर सकता।
मात्र काय की चेष्टा से नहिं, धूल धूसरित हो सकता।।264।।

सोरठा – **कर्मबंध की बात, कही बंध अधिकार में।**
अर्घ्य चढ़ाकर आज, तजूँ बंध का द्वार मैं।।

ॐ ह्रीं तैलनिमित्ताभावे रजोबन्धरहितवत्अबंधकगुणप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(92)

एवं सम्मादिट्ठी, वट्टंतो बहुविहेसु जोगेसु।
अकरंतो उवओगे, रागादी णेव बज्झदि रयेण।।265।।

ऐसे ही सम्यग्दृष्टी भी, विविध क्रियाएं करता है।
व्रत संयुत नाना प्रकार, शरीरिक चेष्टा करता है।।
रागादिक परिणाम बिना, नहिं कर्मधूलि से लिपता है।
बिना रागद्वेषादिक के वह, बन्ध नहीं कर सकता है।।265।।

सोरठा – **कर्मबंध की बात, कही बंध अधिकार में।**
अर्घ्य चढ़ाकर आज, तजूँ बंध का द्वार मैं।।

ॐ ह्रीं रागादिपरिणामरहितवीतरागसम्यग्दृष्टिअबंधकभावप्रतिपादक-समयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(93)

जो मण्णदि हिंसामि य, हिंसिज्जामि य परेहिं सत्तेहिं।
सो मूढो अण्णाणी, णाणी एत्तो दु विवरीदो।।266।।

पर जीवों का वध करता मैं, ऐसा जो मानव मान रहा।
पर से मेरा वध होता है, ऐसा अज्ञानी जान रहा।।
जिनके ऐसे परिणाम हुए, वह मोही आत्मा कहलाता।
इससे विपरीत भाव वाला, ज्ञानी शुद्धात्मा कहलाता।।266।।

सोरठा – **कर्मबंध की बात, कही बंध अधिकार में।**
अर्घ्य चढ़ाकर आज, तजूँ बंध का द्वार मैं।।

ॐ ह्रीं अज्ञानमोहभावयुक्तहिंसाहिंस्यभावप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(94)

आउक्खयेण मरणं, जीवाणं जिणवरेहिं पण्णत्तं।
आउं ण हरेसि तुमं, कह ते मरणं कदं तेसिं।।267।।

अपनी आयू के क्षय से ही, सब जीव मरण को करते हैं।
ऐसे जिनवर के वचन भला, मिथ्या कैसे हो सकते हैं?।।

तुम आयुकर्म नहिं हर सकते, तब पर का मरण किया कैसे।
अज्ञानभाव के कारण कर्मबन्ध को स्वयं किया वैसे।।267।।

सोरठा – **कर्मबंध की बात, कही बंध अधिकार में।**
अर्घ्य चढ़ाकर आज, तजूँ बंध का द्वार मैं।।

ॐ ह्रीं जिनवरप्रज्ञप्तनिश्चयनयापेक्षया मरणाद्यभावप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(95)

आउक्खयेण मरणं, जीवाणं जिणवरेहिं पण्णत्तं।
आउं न हरंति तुहं, कह ते मरणं कयं तेहिं।।268।।

जीवों का मरण आयु क्षय से, होता यह जिनवरदेव कहा।
सो मैं पर जीवों से मारा, जाता हूँ यह अज्ञान महा।।
पर जीव तेरे आयू कर्मों का, हरण नहीं कर सकते हैं।
फिर उनके द्वारा मरण तेरा, ज्ञानी कैसे कह सकते हैं।।268।।

सोरठा – **कर्मबंध की बात, कही बंध अधिकार में।**
अर्घ्य चढ़ाकर आज, तजूँ बंध का द्वार मैं।।

ॐ ह्रीं वीतरागविज्ञानापेक्षया आयुहरणादिरहितभावप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(96)

जो मण्णदि जीवेमि य, जीविज्जामि य परेहिं सत्तेहिं।
सो मूढो अण्णाणी, णाणी एत्तो दु विवरीदो।।269।।

पर को मैं जीवित रखता हूँ, ऐसा अज्ञानी जान रहा।
पर जीव मुझे जीवित रखते, ऐसा जो प्राणी मान रहा।।
जिनके ऐसे परिणाम हुए, वह मोही आत्मा कहलाता।
इससे विपरीत भाव वाला, ज्ञानी शुद्धात्मा बन जाता।।269।।

सोरठा – **कर्मबंध की बात, कही बंध अधिकार में।**
अर्घ्य चढ़ाकर आज, तजूँ बंध का द्वार मैं।।

ॐ ह्रीं शुद्धनयेन परजीवजीवनादिअभावप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(97)

आउउदयेण जीवदि, जीवो एवं भणंति सव्वण्हू।
आउं च ण देसि तुमं, कहं तए जीविदं कदं तेसिं।।270।।

निज आयु उदय के ही बल पर, सब प्राणी जीवित रहते हैं।
ऐसे जिनवर के वचन भला, मिथ्या कैसे हो सकते हैं?।।
तुम पर को आयु न दे सकते, तो जीवित कैसे कर सकते।
अज्ञान भाव के कारण ही, तुम अहंकार करते रहते।।270।।

सोरठा – **कर्मबंध की बात, कही बंध अधिकार में।**
अर्घ्य चढ़ाकर आज, तजूँ बंध का द्वार मैं।।

ॐ ह्रीं आयुकर्मोदयेन जीवितं जीवनदानरूपअहंकारभावप्रतिपादक-समयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(98)

आऊदयेण जीवदि, जीवो एवं भणंति सव्वण्हू।
आउं च ण दिंति तुहं, कहं णु ते जीवियं कयं तेहिं।।271।।

जीना तो आयु उदय से हो, ऐसी जिनवर की वाणी है।
मैं पर जीवों को जिला रहा, यह भाव करे अज्ञानी है।।
पर जीव तेरी बांधी आयू को, बढ़ा कभी नहिं सकते हैं।
फिर उनसे जीवितपना तेरा, ज्ञानी कैसे कह सकते हैं।।271।।

सोरठा – **कर्मबंध की बात, कही बंध अधिकार में।**
अर्घ्य चढ़ाकर आज, तजूँ बंध का द्वार मैं।।

ॐ ह्रीं आयुकर्मोदयेन जीवितं आयुवृद्धिकारकअहंभावप्रतिपादक-समयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(99)

जो अप्पणो दु मण्णदि, दुक्खिदसुहिदे करेमि सत्तेति।
सो मूढो अण्णाणी, णाणी एत्तो दु विवरीदो।।272।।

मैं पर को सुखी दुःखी करता, जो जीव मानता है ऐसा।
पर जीव मुझे सुख दुःख देते, जो अध्यवसाय करे ऐसा।।

वह मूढात्मा अज्ञानपने से, मिथ्यादृष्टी कहलाता।
ज्ञानी इससे विपरीत भावकर, सम्यग्दृष्टी कहलाता।।272।।

सोरठा – **कर्मबंध की बात, कही बंध अधिकार में।**
अर्घ्य चढ़ाकर आज, तजूँ बंध का द्वार मैं।।

ॐ ह्रीं सुखदुःखकर्तृ-अकर्तृभावकारकमिथ्यादृष्टिसम्यग्दृष्टिजीवप्रतिपादक-समयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(100)

कम्मणिमित्तं सव्वे, दुक्खिदसुहिदा हवंति जदि सत्ता।
कम्मं च ण देसि तुमं, दुक्खिदसुहिदा कहं कदा ते।।273।।

सब अपने अपने कर्म उदय, से ही सुख दुःख को पाते हैं।
अपने सुख दुःख फल के कारण, वे सुखी दुःखी कहलाते हैं।।
कर्मों का यह सिद्धान्तअटल, तू कर्म उन्हें नहिं दे सकता।
तो हे भाई! तू उन जीवों को, सुखी दुःखी कैसे करता।।273।।

सोरठा – **कर्मबंध की बात, कही बंध अधिकार में।**
अर्घ्य चढ़ाकर आज, तजूँ बंध का द्वार मैं।।

ॐ ह्रीं कर्मोदयेन दुःखितसुखितजीवप्रति दुःखसुखप्रदायककर्ताभाव निवारणप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(101)

कम्मणिमित्तं सव्वे, दुक्खिदसुहिदा हवंति जदि सत्ता।
कम्मं च ण देसि तुमं, कह तं सुहिदो कदो तेसिं।।274।।

सब जीव स्वयं के कर्मोदय से, सुखी दुःखी होते रहते।
वे जीव तुझे कर्मों के देने, में सक्षम नहिं हो सकते।।
तो उनके द्वारा तू कैसे, दुःखरूप अवस्था पा सकता।
व्यवहार भले कह दे ऐसा, पर निश्चयनय नहिं कह सकता।।274।।

सोरठा – **कर्मबंध की बात, कही बंध अधिकार में।**
अर्घ्य चढ़ाकर आज, तजूँ बंध का द्वार मैं।।

ॐ ह्रीं व्यवहारनिश्चयनयापेक्षया कर्मोदयेन दुःखितसुखितजीवप्रति दुःख-सुखप्रदायककर्तृअकर्तृभावनिवारणप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(102)

कम्मोदएण जीवा, दुक्खिदसुहिदा हवंति जदि सव्वे।
कम्मं च ण देसि तुमं, कह तं दुहिदो कदो तेसिं।।275।।

जब निज कर्मोदय से ही सब, जीवों को सुख दुःख मिलता है।
वे तुझको कर्म न दे सकते, यह ही निष्कर्ष निकलता है।।
तो उनके द्वारा तू अपने को, कैसे सुखी बना सकता।
अपनी आत्मा का सच्चा सुख, शुद्धातम ध्यानी पा सकता।।275।।

सोरठा – **कर्मबंध की बात, कही बंध अधिकार में।**
अर्घ्य चढ़ाकर आज, तजूँ बंध का द्वार मैं।।

ॐ ह्रीं सुखदुःखप्रदायककर्महेतुप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(103)

जो मरदि जो य दुहिदो, जायदि कम्मोदयेण सो सव्वो।
तह्मा दु मारिदो दे, दुहाविदो चेदि ण हु मिच्छा।।276।।

इस जग में जो प्राणी मरते, या दुःखी कभी भी होते हैं।
निज कर्मोदय के कारण ही, वे मोहनींद में सोते हैं।।
इस कारण मारा गया दुःखी, वह किया गया मेरे द्वारा।
ऐसा कहना मिथ्या ही है, इसलिए मिले नहिं शिवद्वारा।।276।।

सोरठा – **कर्मबंध की बात, कही बंध अधिकार में।**
अर्घ्य चढ़ाकर आज, तजूँ बंध का द्वार मैं।।

ॐ ह्रीं कर्मोदयेन दुःखितजीवप्रति मिथ्याविकल्पप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(104)

जो ण मरदि ण य दुहिदो, सोवि य कम्मोदयेण जीवो।
तह्मा ण मारिदो दे, दुहाविदो चेदि ण हु मिच्छा।।277।।

जो जीव नहीं मरते न दुःखी, होते वह भी कर्मोदय से।
संसारचक्र में परिवर्तन, करते हैं निज कर्मोदय से।।

इस कारण मारा नहीं दुःखी, नहिं किया गया ऐसा कहना।
मिथ्या ही है अतएव कर्म-बन्धन को पड़ता है सहना।।277।।

सोरठा – **कर्मबंध की बात, कही बंध अधिकार में।**
अर्घ्य चढ़ाकर आज, तजूँ बंध का द्वार मैं।।

ॐ ह्रीं परमारणदुःखकरणादिभावनिवारणप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(105)

एसा दु जा मदी दे, दुक्खिदसुहिदे करेमि सत्तेति।
एसा दे मूढमदी, सुहासुहं बंधदे कम्मं।।278।।

यदि तेरी मति ऐसी है मैं, जीवों को सुखी दुःखी करता।
इस मोहितमति के द्वारा तू, शुभ अशुभ बन्ध करता रहता।।
ऐसा जो अध्यवसाय भाव, मिथ्यादृष्टी के होता है।
इससे वह प्राणी वीतराग, सम्यग्दृष्टी नहिं होता है।।278।।

सोरठा – **कर्मबंध की बात, कही बंध अधिकार में।**
अर्घ्य चढ़ाकर आज, तजूँ बंध का द्वार मैं।।

ॐ ह्रीं शुभाशुभकर्मबंधप्रति मोहितमरूपमिथ्यात्वभावनिवारणप्रतिपादक-समयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(106)

दुक्खिदसुहिदे सत्ते, करेमि जं एवमज्झवसिदं ते।
तं पावबंधगं वा, पुण्णस्स व बंधगं होदि।।279।।

मैं पर को दुःखी सुखी करता, ऐसा जो अध्यवसाय तेरा।
पापों का बन्ध किया करता, यदि दुःख देने का भाव तेरा।।
यदि सुखी किसी को करने का, तेरा परिणाम हुआ करता।
तो पुण्य कर्म का बन्धक बन, रागी ही सदा बना रहता।।279।।

सोरठा – **कर्मबंध की बात, कही बंध अधिकार में।**
अर्घ्य चढ़ाकर आज, तजूँ बंध का द्वार मैं।।

ॐ ह्रीं पुण्यपापकर्मबन्धप्रति मिथ्यात्वभावनिवारणप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(107)

मारेमि जीवावेमि य, सत्ते जं एव मज्झवसिदं ते।
तं पावबंधगं वा, पुण्णस्स व बंधंगं होदि।।280।।

मारूँ या जीवन देऊँ ये, जब भाव तेरे हो जाते हैं।
तो पाप पुण्य के योग्य कर्म भी, स्वयं बंध हो जाते हैं।।
सविकल्प अवस्था में ही, अज्ञानी इन भावों को करता।
अविकल्प अवस्था में ज्ञानी, शुद्धात्म भावना में रमता।।280।।

सोरठा – **कर्मबंध की बात, कही बंध अधिकार में।**
अर्घ्य चढ़ाकर आज, तजूँ बंध का द्वार मैं।।

ॐ ह्रीं पुण्यपापकर्मबन्धप्रति विकल्परहितशुद्धात्मभावनाप्रतिपादक-समयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(108)

अज्झवसिदेण बंधो, सत्ते मारेहि मा व मारेहि।
एसो बंधसमासो, जीवाणं णिच्छयणयस्स।।281।।

जीवों को मारो अथवा मत, मारो यह निज की परिणति है।
मन के परिणामों के बल पर, कर्मों की स्थिति पड़ती है।।
निश्चयनय के मत में तो जीवों, का ऐसा ही विवरण है।
परभाव ग्रहण करने वाला, व्यवहार नयाश्रित प्रकरण है।।281।।

सोरठा – **कर्मबंध की बात, कही बंध अधिकार में।**
अर्घ्य चढ़ाकर आज, तजूँ बंध का द्वार मैं।।

ॐ ह्रीं निश्चयनयापेक्षया बंधभावनिवारणप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(109)

एवमलिये अदत्ते, अबंभचेरे परिग्गहे चेव।
कीरदि अज्झवसाणं, जं तेण दु बज्झदे पावं।।282।।

ऐसे ही झूठ बोलने में, चोरी आदिक में भी जानो।
अब्रह्मचर्य व परिग्रह में, कर्ता के भाव प्रमुख मानो।।

यह अध्यवसान भाव ही तो, पापों का बन्ध कराता है।
इनसे छुटते ही शुद्धातम, ज्ञानी का पद पा जाता है।।282।।

सोरठा – **कर्मबंध की बात, कही बंध अधिकार में।**
अर्घ्य चढ़ाकर आज, तजूँ बंध का द्वार मैं।।

ॐ ह्रीं व्यवहारापेक्षया पापाध्यवसानप्रति कर्ताभावनिवारणप्रतिपादक-समयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(110)

तह य अचोज्जे सच्चे, बंभे अपरिग्गहत्तणे चेव।
कीरदि अज्झवसाणं, जं तेण दु बज्झदे पुण्णं।।283।।

यूं ही जो सत्य अचौर्य अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य पालन करता।
इन सभी व्रतों के पालन का, शुभ भाव हृदय में है धरता।।
व्रत पालन के परिणामों से ही, पुण्यबन्ध हो जाता है।
निश्चय नय तक पहुँचाने में, यह कारण भी हो जाता है।।283।।

सोरठा – **कर्मबंध की बात, कही बंध अधिकार में।**
अर्घ्य चढ़ाकर आज, तजूँ बंध का द्वार मैं।।

ॐ ह्रीं व्यवहारापेक्षया सत्यअचौर्यब्रह्मचर्यअपरिग्रहादिव्रतपालनरूप-शुभभावप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(111)

वत्थुं पडुच्च जं पुण, अज्झवसाणं तु होदि जीवाणं।
ण हि वत्थुदो दु बंधो, अज्झवसाणेण बंधोत्थि।।284।।

पर वस्तू के अवलंबन से, जो भाव जीव के होते हैं।
उनको ही अध्यवसान कहा, वे बंध हेतु ही होते हैं।।
सद्भाव वस्तु का होने से, परिणाम रागमय बनते हैं।
परिणामों से ही बन्ध अतः, मुनि बाह्यवस्तुएं तजते हैं।।284।।

सोरठा – **कर्मबंध की बात, कही बंध अधिकार में।**
अर्घ्य चढ़ाकर आज, तजूँ बंध का द्वार मैं।।

ॐ ह्रीं निश्चयनयापेक्षया बाह्यपरवस्तुबंधकारणाभावप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(112)

दुक्खिदसुहिदे जीवे, करेमि बंधामि तह विमोचेमि।
जा एसा तुज्झ मदी, णिरत्थया सा हु दे मिच्छा।।285।।

मैं दुःखी सुखी करता जीवों को, ऐसा जो अनुभव करता।
मैं बंधवाता छुड़वाता हूँ, जो ऐसा अहंभाव धरता।।
ऐसी तेरी मति मूढ़ निरर्थक, निश्चय से मिथ्या ही है।
आकाशपुष्प के सदृश यही, परभाव सदा मिथ्या ही है।।285।।

सोरठा – **कर्मबंध की बात, कही बंध अधिकार में।**
अर्घ्य चढ़ाकर आज, तजूँ बंध का द्वार मैं।।

ॐ ह्रीं बंधहेतुरागादिभावनिवारणप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(113)

अज्झवसाणणिमित्तं, जीवा बज्झंति कम्मणा जदि हि।
मुच्चंति मोक्खमग्गे, ठिदा य ते किं करोसि तुमं।।286।।

यदि सचमुच जीव स्वयं परिणामों, से कर्मों का बंध करें।
कर्मों से स्वयं छूट करके, शिवमारग में जाकर ठहरें।।
तब ऐसी सुदृढ़ व्यवस्था में, तू क्या कर सकता है प्राणी ?
किंचित् निमित्त बनने से ही, तू कर्ता बनता अज्ञानी।।286।।

सोरठा – **कर्मबंध की बात, कही बंध अधिकार में।**
अर्घ्य चढ़ाकर आज, तजूँ बंध का द्वार मैं।।

ॐ ह्रीं अध्यवसाननिमित्तेन बंधमोक्षप्राप्तजीवतत्त्वप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(114)

कायेण दुक्खवेमिय, सत्ते एवं तु जं मदिं कुणसि।
सव्वावि एस मिच्छा, दुहिदा कम्मेण जदि सत्ता।।287।।

मैं निजशरीर से परजीवों को, दुख पहुंचाता रहता हूँ।
निज अशुभकाय की चेष्टा से, मैं सबको वश में रखता हूँ।।

यह तेरी मति मिथ्या ही है, तू पर का कुछ नहिं कर सकता।
जो जीव दुःखी होते हैं उनका, कर्म निमित्त बना करता।।287।।

सोरठा – **कर्मबंध की बात, कही बंध अधिकार में।**
अर्घ्य चढ़ाकर आज, तजूँ बंध का द्वार मैं।।

ॐ ह्रीं कायेन सत्त्वान् प्रति सुखदुःखदायकरूपमिथ्याकर्ताभावनिवारण-प्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(115)

वाचाए दुक्खवेमिय, सत्ते एवं तु जं मदिं कुणसि।
सव्वावि एस मिच्छा, दुहिदा कम्मेण जदि सत्ता।।288।।

मैं निजवचनों से परजीवों को, दुःख पहुँचाता रहता हूँ।
निज वचनचतुरता से सबको, संतप्त किया मैं करता हूँ।।
यह भी तेरी मति मिथ्या है, तू पर का क्या कर सकता है?।
दुख पाने वाले जीवों का, निज कर्मोदय ही रहता है।।288।।

सोरठा – **कर्मबंध की बात, कही बंध अधिकार में।**
अर्घ्य चढ़ाकर आज, तजूँ बंध का द्वार मैं।।

ॐ ह्रीं वचसा सत्त्वान् प्रति सुखदुःखदायकरूपमिथ्याकर्ताभावनिवारण-प्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(116)

मणसाए दुक्खवेमिय, सत्ते एवं तु जं मदिं कुणसि।
सव्वावि एस मिच्छा, दुहिदा कम्मेण जदि सत्ता।।289।।

मैं मेरे मन से परजीवों को दुख पहुँचाता रहता हूँ।
निज मानस चिन्तन से पर को सन्तापित करता रहता हूँ।।
यह तेरा चिन्तन मिथ्या है तू पर का क्या कर सकता है?
क्योंकी दुखप्राप्त जीव का तो निजकर्मोदय ही रहता है।।289।।

सोरठा – **कर्मबंध की बात, कही बंध अधिकार में।**
अर्घ्य चढ़ाकर आज, तजूँ बंध का द्वार मैं।।

ॐ ह्रीं मनसा सत्त्वान् प्रति सुखदुःखदायकरूपमिथ्याकर्ताभावनिवारण-प्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(117)

सच्छेण दुक्खवेमिय, सत्ते एवं तुं जं मदिं कुणसि।
सव्वावि एस मिच्छा, दुहिदा कम्मेण जदि सत्ता।।290।।

मैं शस्त्रों के द्वारा परजीवों को दुख देता रहता हूँ।
घातक शस्त्रों को दिखा दिखा मैं सबको पीड़ित करता हूँ।।
यह तेरी मति मिथ्या ही है तू पर का क्या कर सकता है?
निज पापोदय के कारण ही प्राणी जग में दुख सहता है।।290।।

सोरठा – **कर्मबंध की बात, कही बंध अधिकार में।**
अर्घ्य चढ़ाकर आज, तजूँ बंध का द्वार मैं।।

ॐ ह्रीं शस्त्रैः सत्वान् प्रति सुखदुःखदायकरूपमिथ्याकर्ताभावनिवारण-प्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(118)

कायेण च वाया वा, मणेण सुहिदे करेमि सत्तेति।
एवंपि हवदि मिच्छा, सुहिदा कम्मेण जदि सत्ता।।291।।

वैसे ही यदि जग के प्राणी, इन्द्रिय भोगों से सुखी दिखें।
निजकर्मोदय से प्राप्त सुखों में, तेरा मिथ्या मान दिखे।।
मन वच काया से पर को, सुख देने का भ्रम तू करता है।
यह भी तेरी मति मिथ्या है, तू पर का क्या कर सकता है।।291।।

सोरठा – **कर्मबंध की बात, कही बंध अधिकार में।**
अर्घ्य चढ़ाकर आज, तजूँ बंध का द्वार मैं।।

ॐ ह्रीं मनोवचःकायैः सत्वान् प्रति सुखदुःखदायकरूपमिथ्याकर्ताभाव-निवारणप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(119)

सव्वे करेदि जीवो, अज्झवसाणेण तिरियणेरयिए।
देवमणुवेपि सव्वे, पुण्णं पावं च णेयविहं।।292।।

निज अध्यवसानों से प्राणी, जग में सब कुछ करता रहता।
पशु नारक देव मनुज नानाविध, पुण्यपाप करता रहता।।

उदयागत कर्म अवस्था में, निज को तन्मय अनुभव करता।
परमार्थ रूप का ज्ञान नहीं, अतएव उन्हें अपना कहता।।292।।

सोरठा – **कर्मबंध की बात, कही बंध अधिकार में।**
अर्घ्य चढ़ाकर आज, तजूँ बंध का द्वार मैं।।

ॐ ह्रीं अध्यवसानेन चतुर्गतिकारकमिथ्याभावनिवारणप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(120)

धम्माधम्मं च तहा, जीवाजीवे अलोयलोगं च।
सव्वे करेदि जीवो, अज्झवसाणेण अप्पाणं।।293।।

ऐसे ही धर्म-अधर्म जीव, पुद्गल को भी निज मान रहा।
त्रैलोक अलोकाकाश सभी, परद्रव्यों में अज्ञान कहा।।
निज अध्यवसान भाव से सबको, आत्मरूप ही कहता है।
सबकी स्वतन्त्र सत्ता न समझ, ममकार भाव ही करता है।।293।।

सोरठा – **कर्मबंध की बात, कही बंध अधिकार में।**
अर्घ्य चढ़ाकर आज, तजूँ बंध का द्वार मैं।।

ॐ ह्रीं अध्यवसानेन धर्म-अधर्म-जीव-पुद्गल-लोक-अलोकादिकारकमिथ्या-भावनिवारणप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(121)

एदाणि णत्थि जेसिं, अज्झवसाणाणि एवमादीणि।
ते असुहेण सुहेण य, कम्मेण मुणी ण लिप्पंति।।294।।

ये पूर्व कथित परिणाम तथा, इस तरह अन्य भी और कहे।
जो अध्यवसान विभाव भाव, जिन मुनिवर के वे कुछ नहिं हैं।।
वे मुनिवर अशुभ तथा शुभ कर्मों, से नहिं लिप्त हुआ करते।
जो निज स्वरूप में रहते हैं, वे पर में नहीं रमा करते।।294।।

सोरठा – **कर्मबंध की बात, कही बंध अधिकार में।**
अर्घ्य चढ़ाकर आज, तजूँ बंध का द्वार मैं।।

ॐ ह्रीं अध्यवसानेन समस्तविभावभावविरहितमुनिवरस्य अलिप्तभाव-प्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(122)

जा संकप्पवियप्पो, ता कम्मं कुणदि असुहसुहजणयं।
अप्पसरूवा रिद्धी, जाव ण हियए परिप्फुरदि।।295।।

जब तक यह आत्मा बाह्य वस्तुओं, में संकल्प विकल्प करे।
तब तक ही वह प्राणी निज में, शुभ अशुभ कर्म का बंध करे।।
तब तक अनन्तज्ञानादिरूप, ऋद्धी जो आत्मा की मानी।
निज में प्रस्फुरित नहीं होवे, ऐसा कहते हैं मुनिज्ञानी।।295।।

सोरठा – **कर्मबंध की बात, कही बंध अधिकार में।**
अर्घ्य चढ़ाकर आज, तजूँ बंध का द्वार मैं।।

ॐ ह्रीं शुभाशुभजनकं संकल्पविकल्परहितआत्मस्वरूपऋद्धिप्रतिपादक-समयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(123)

बुद्धी ववसाओवि य, अज्झवसाणं मदी य परिणामो।
इक्कट्ठमेव सव्वं, चित्तं भावो य परिणामो।।296।।

व्यवसाय बुद्धि अथवा जो, अध्यवसान नाम से कहलाता।
विज्ञान चित्त परिणाम भाव, मति नामों से जाना जाता।।
इन सबका अर्थ एक ही है, एकार्थवाचि ये कहलाते।
परिणमनशील परिणामों से ही, सभी भाव ये बन जाते।।296।।

सोरठा – **कर्मबंध की बात, कही बंध अधिकार में।**
अर्घ्य चढ़ाकर आज, तजूँ बंध का द्वार मैं।।

ॐ ह्रीं बुद्धिव्यवसायादिविविधनामधारक-अध्यवसानभावप्रतिपादक-समयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(124)

एवं ववहारणओ, पडिसिद्धो जाण णिच्छयणयेण।
णिच्छयणयसल्लीणा, मुणिणो पावंति णिव्वाणं।।297।।

इस तरह पूर्व में जो व्यवहार, नयाश्रित वर्णन आया है।
निश्चय नय के द्वारा आगम में, उसे निषिद्ध बताया है।।

पहले व्यवहार नयाश्रय से, जो तत्त्वज्ञान कर लेते हैं।
निश्चय नय के आश्रित वे मुनि, निर्वाण प्राप्त कर लेते हैं।।297।।

सोरठा – **कर्मबंध की बात, कही बंध अधिकार में।**
अर्घ्य चढ़ाकर आज, तजूँ बंध का द्वार मैं।।

ॐ ह्रीं निश्चयनयापेक्षया व्यवहारनिषिद्धभावसहितमुनिधर्मपूर्वकनिर्वाणपद-प्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(125)

वदसमिदीगुत्तीओ, सीलतवं जिणवरेहि पण्णत्तं।
कुव्वंतोवि अभव्वो, अण्णाणी मिच्छदिट्ठीओ।।298।।

श्री जिनवर ने जो आगम में, व्रत समिति गुप्तियाँ बतलाईं।
तप तथा शील की सतत, भावनाएं अभव्य ने भी भाईं।।
इन सबको धारण करके भी, वह भव्य नहीं बन सकता है।
वह अज्ञानी मिथ्यादृष्टी नहिं, भेद ज्ञान कर सकता है।।298।।

सोरठा – **कर्मबंध की बात, कही बंध अधिकार में।**
अर्घ्य चढ़ाकर आज, तजूँ बंध का द्वार मैं।।

ॐ ह्रीं व्रतादिसहितअभव्यजीवस्य मिथ्यात्वप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(126)

मोक्खं असद्दहंतो, अभवियसत्तो दु जो अधीयेज्ज।
पाठो ण करेदि गुणं, असद्दहंतस्स णाणं तु।।299।।

जो मोक्षशास्त्र की श्रद्धा नहिं, करता अभव्य कहलाता है।
वह शास्त्रों को पढ़कर भी सम्यग्ज्ञानी नहिं बन पाता है।।
बिन ज्ञानभाव भी श्रद्धा के, शास्त्रों का पठन न गुण करता।
एकादशांग ज्ञानी अभव्य, मुक्तीलक्ष्मी को नहिं वरता।।299।।

सोरठा – **कर्मबंध की बात, कही बंध अधिकार में।**
अर्घ्य चढ़ाकर आज, तजूँ बंध का द्वार मैं।।

ॐ ह्रीं एकादशांगश्रुतज्ञानसमन्वितोऽपि अभव्यजीवमोक्षाभावप्रतिपादक-समयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(127)

सद्दहदि य पत्तेदि य, रोचेदि य तह पुणोवि फासेदि।
धम्मं भोगणिमित्तं, ण हु सो कम्मक्खयणिमित्तं।।300।।

जग में अभव्य यदि कभी धर्म की, श्रद्धा रुचि करता भी है।
कभि धर्म प्रेम से जिनशासन में, उसका मन झुकता भी है।।
सांसारिक भोगों के निमित्त ही, उसको धर्म सुहाता है।
नहिं कर्मनाश के हेतु कभी, शुद्धात्मध्यान कर पाता है।।300।।

सोरठा – **कर्मबंध की बात, कही बंध अधिकार में।**
अर्घ्य चढ़ाकर आज, तजूँ बंध का द्वार मैं।।

ॐ ह्रीं भोगनिमित्तधर्मधारकजीवस्य कर्मक्षयाभावप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(128)

आयारादी णाणं, जीवादी दंसणं च विण्णेयं।
छज्जीवाणं रक्खा, भणदि चरित्तं तु ववहारो।।301।।

आचारांगादिक शास्त्रों का, पढ़ना ही ज्ञान कहाता है।
जीवादि पदार्थों की श्रद्धा, करना दर्शन कहलाता है।।
षट्जीवनिकायों की रक्षा, चारित व्यवहार कहा जाता।
वैरागी मुनियों के द्वारा यह, रत्नत्रय पाला जाता।।301।।

सोरठा – **कर्मबंध की बात, कही बंध अधिकार में।**
अर्घ्य चढ़ाकर आज, तजूँ बंध का द्वार मैं।।

ॐ ह्रीं व्यवहारनयेन आचारांगादिशास्त्रज्ञानतत्त्वश्रद्धानरूपसम्यग्दर्शन-जीवरक्षणरूपचारित्रप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(129)

आदा खु मज्झ णाणे, आदा मे दंसणे चरित्ते च।
आदा पच्चक्खाणे, आदा मे संवरे जोगे।।302।।

पर निश्चयनय से तो मेरा, आत्मा ही ज्ञान कहाता है।
आत्मा ही दर्शन है मेरा, आत्मा चारित्र कहाता है।।

आत्मा ही प्रत्याख्यान तथा, आत्मा ही संवर कहलाता।
आत्मा ही योग समाधिरूप, योगी उस आत्मा को ध्याता।।302।।

सोरठा – **कर्मबंध की बात, कही बंध अधिकार में।**
अर्घ्य चढ़ाकर आज, तजूँ बंध का द्वार मैं।।

ॐ ह्रीं निश्चयनयापेक्षया ज्ञानदर्शनचारित्ररूपआत्मतत्त्वप्रतिपादक-समयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(130)

जह फलियमणिविसुद्धो ण सयं परिणमदि रायमादीहिं।
राइज्जदि अण्णेहिं दु, सो रत्तादीयेहिं दव्वेहिं।।303।।

जैसे स्फटिकमणी जो कि, स्वयमेव शुद्ध निर्मल रहती।
वह रंग संग के बिना कभी, स्वयमेव रंगमय नहिं रंगती।।
बाहर की रंग उपाधी से, वह स्वयं लाल हो जाती है।
पर द्रव्यों के संबंधों से, वैभाविक परिणति आती है।।303।।

सोरठा – **कर्मबंध की बात, कही बंध अधिकार में।**
अर्घ्य चढ़ाकर आज, तजूँ बंध का द्वार मैं।।

ॐ ह्रीं व्यवहारेण स्फटिकमणिवत्लालिमादिभावपरिणतजीवतत्त्व-प्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(131)

एवं णाणी सुद्धो, ण सयं परिणमदि रायमादीहिं।
राइज्जदि अण्णेहिं दु, सो रागादीहिं दोसेहिं।।304।।

ऐसे ही ज्ञानी आत्मा भी, स्वाभाविक शुद्ध कहा जाता।
लेकिन रागादिक भावों से, वह पर स्वभावमय बन जाता।।
कर्मोदय से होने वाले, रागादि दोष जो आते हैं।
वे ही आत्मा के शुद्ध भाव को, भी अशुद्ध कर जाते हैं।।304।।

सोरठा – **कर्मबंध की बात, कही बंध अधिकार में।**
अर्घ्य चढ़ाकर आज, तजूँ बंध का द्वार मैं।।

ॐ ह्रीं शुद्धनयेन रागादिभावापरिणतशुद्धजीवप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(132)

ण वि रागदोसमोहं, कुव्वदि णाणी कसायभावं वा।
सयमप्पणो ण सो, तेण कारगो तेसिं भावाणं।।305।।

ज्ञानी अपने में रागद्वेष, मोहादि भाव नहिं करता है।
वह स्वयं निजात्मा में कषाय का, भाव न किंचित् करता है।।
इस कारण वह ज्ञानी उन भावों, का कर्ता नहिं कहलाता।
शुद्धात्म ध्यान में रत मुनि ही, इस शुद्ध अवस्था को पाता।।305।।

सोरठा – **कर्मबंध की बात, कही बंध अधिकार में।**
अर्घ्य चढ़ाकर आज, तजूँ बंध का द्वार मैं।।

ॐ ह्रीं शुद्धात्मध्यानरतमुनेः रागद्वेषाद्यभावप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(133)

रागह्मि य दोसह्मि य, कसायकम्मेसु चेव जे भावा।
तेहिं दु परिणममाणो, रागादी बंधदि पुणोवि।।306।।

जब उसी जीव के रागद्वेष, कर्मादि उदय में आते हैं।
क्रोधादि कषाय भाव आने पर, अपना रंग दिखाते हैं।।
इन उदयागत भावों से जब तक, वह तन्मय होता रहता।
तन्मय परिणति से ही आत्मा, रागादि बन्ध करता रहता।।306।।

सोरठा – **कर्मबंध की बात, कही बंध अधिकार में।**
अर्घ्य चढ़ाकर आज, तजूँ बंध का द्वार मैं।।

ॐ ह्रीं क्रोधादिकषायरूपतन्मयअज्ञानीजीवतत्त्वप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(134)

रागह्मि य दोसह्मि य, कसायकम्मेसु चेव जे भावा।
ते मम दु परिणमंतो, रागादी बंधदे चेदा।।307।।

रागद्वेषादि कषायरूप, जब कर्म उदय में आते हैं।
उन भावों से ही आत्मा के, परिणाम विकृत हो जाते हैं।।

रागादि भाव ये मेरे हैं, ऐसा वह जब तक कहता है।
तब तक रागादिक कर्मों को, वह स्वयं बांधता रहता है।।307।।

सोरठा – **कर्मबंध की बात, कही बंध अधिकार में।**
अर्घ्य चढ़ाकर आज, तजूँ बंध का द्वार मैं।।

ॐ ह्रीं रागादिभावनिमित्तकर्मबंधप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(135)

अपडिक्कमणं दुविहं, अपच्चक्खाणं तहेव विण्णेयं।
एदेणुवदेसेण दु, अकारगो वण्णिदो चेदा।।308।।

अप्रतिक्रमण दो भेद रूप, बतलाया है जिनशासन में।
अप्रत्याख्यान भाव भी दो ही, कहे गए परमागम में।।
इस प्रवचन से यह सिद्ध हुआ, आत्मा तो कुछ नहिं करता है।
वह दोनों कार्यों से विरहित, कर्मों का हुआ अकर्ता है।।308।।

सोरठा – **कर्मबंध की बात, कही बंध अधिकार में।**
अर्घ्य चढ़ाकर आज, तजूँ बंध का द्वार मैं।।

ॐ ह्रीं द्विविधअप्रतिक्रमणअप्रत्याख्यानप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(136)

अपडिक्कमणं दुविहं, दव्वे भावे अपच्चक्खाणंपि।
एदेणुवेदसेण दु, अकारगो वण्णिदो चेदा।।309।।

-शंभु छंद-

यह अप्रतिक्रमण तथा अप्रत्याख्यान द्विविध जो बतलाया।
उन द्रव्य भाव दोनों को अज्ञानी करता है बतलाया।।
लेकिन शुद्धात्मध्यान युत मुनि, कर्मों के कर्ता नहिं होते।
इस परमागम के प्रवचन से, वे निर्विकल्प ध्यानी होते।।309।।

सोरठा – **कर्मबंध की बात, कही बंध अधिकार में।**
अर्घ्य चढ़ाकर आज, तजूँ बंध का द्वार मैं।।

ॐ ह्रीं द्रव्यभावरूपअप्रतिक्रमण-अप्रत्याख्यानकर्ता-अकर्ता प्रतिपादक-समयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(137)

जाव ण पच्चक्खाणं, अपडिक्कमणं तु दव्वभावाणं।
कुव्वदि आदा तावदु, कत्ता सो होदि णादव्वो।।310।।

जब तक यह प्राणी द्रव्यभाव-मय प्रत्याख्यान नहीं करता।
जब तक यह प्राणी द्रव्यभाव-मय अप्रतिक्रमण किया करता।।
तब तक वह परमसमाधि न पाने, से अज्ञानी रहता है।
कर्मों का कर्ता बनने से वह, बंध किया ही करता है।।310।।

सोरठा – **कर्मबंध की बात, कही बंध अधिकार में।**
अर्घ्य चढ़ाकर आज, तजूँ बंध का द्वार मैं।।

ॐ ह्रीं द्रव्यभावरूपअप्रतिक्रमणअप्रत्याख्यानकर्तृत्वपरमसमाधिध्यानरूप-प्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(138)

आधाकम्मादीया, पुग्गलदव्वस्स जे इमे दोसा।
कह ते कुव्वदि णाणी, परदव्वगुणा दु जे णिच्चं।।311।।

आहार क्रिया में अधःकर्म, आदिक जो दोष बताए हैं।
वे शुद्धात्मा से पृथग्भूत, पुद्गल के गुण कहलाए हैं।।
निश्चयज्ञानी मुनिवर केवल, निज आत्मा में ही रमते हैं।
तो अधःकर्म आदिक दूषण, उनके कैसे लग सकते हैं।।311।।

सोरठा – **कर्मबंध की बात, कही बंध अधिकार में।**
अर्घ्य चढ़ाकर आज, तजूँ बंध का द्वार मैं।।

ॐ ह्रीं अधःकर्मदूषितआहाररहितशुद्धोपयोगीमुनिगणप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(139)

आधाकम्मादीया, पुग्गलदव्वस्स जे इमे दोसा।
कहमणुमण्णदि अण्णेण, कीरमाणा परस्स गुणा।।312।।

आहारक्रिया में अधःकर्म, आदिक जो दोष बताए हैं।
वे शुद्धात्मा से सदा पृथक्, पुद्गल के गुण कहलाए हैं।।

निश्चयज्ञानी मुनिवर केवल, निजआत्मा में ही रमते हैं।
तो निज अहार के बनने में कैसे अनुमोदन करते हैं।।312।।

सोरठा – **कर्मबंध की बात, कही बंध अधिकार में।**
अर्घ्य चढ़ाकर आज, तजूँ बंध का द्वार मैं।।

ॐ ह्रीं अधःकर्मदूषितआहारअनुमोदनारहितनिश्चयज्ञानीपरमसमाधिरत-मुनिगुणप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(140)

आधाकम्मं उद्देसियं च, पोग्गलमयं इमं दव्वं।
कह तं मम होदि कदं, जं णिच्चमचेदणं वुत्तं।।313।।

जब अधःकर्म औद्देशिकादि, दूषण सारे पुद्गलमय हैं।
वे आत्मद्रव्य से पृथक् सदा, होने से कहे अचेतन हैं।।
तब मेरे द्वारा किये गये, वे दोष भला कैसे होंगे।
मैं चिच्चैतन्य स्वरूपी हूँ, ये भाव मेरे कैसे होंगे।।313।।

सोरठा – **कर्मबंध की बात, कही बंध अधिकार में।**
अर्घ्य चढ़ाकर आज, तजूँ बंध का द्वार मैं।।

ॐ ह्रीं अधःकर्मऔद्देशिकदूषणरहितआहारग्राहीभावप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(141)

आधाकम्मं उद्देसियं च, पोग्गलमयं इमं दव्वं।
कह तं मम कारविदं, जं णिच्चमचेदणं वुत्तं।।314।।

जब अधःकर्म औद्देशिकादि, दूषण सारे पुद्गलमय हैं।
वे आत्मद्रव्य से पृथक् सदा, होने से कहे अचेतन हैं।।
तब मेरे द्वारा करवाए भी, दोष भला कैसे होंगे ?
मैं चिच्चैतन्यस्वरूपी हूँ, ये दोष मेरे कैसे होंगे।।314।।

सोरठा – **कर्मबंध की बात, कही बंध अधिकार में।**
अर्घ्य चढ़ाकर आज, तजूँ बंध का द्वार मैं।।

ॐ ह्रीं अधःकर्मादिसमस्तदोषरहितआहारभावपृथक् शुद्धात्मरतमुनिगण-प्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

-पूर्णार्घ्य (शंभु छंद)-

आस्रव-संवर-निर्जरा-बंध, चउ अधिकार समाहित हैं।
इस पूजन में चार तत्व का, सार सुचारू वर्णित है।।
कुन्दकुन्द आचार्य प्रवर ने, भेदज्ञान बतलाया है।
उसको पढ़ पूर्णार्घ्य चढ़ाने, भक्त पुजारी आया है।।1।।

ॐ ह्रीं समयसारग्रंथस्य आस्रव-संवर-निर्जरा-बंध नाम चतुरधिकारेषु वर्णित सर्वगाथासूत्रेभ्यः पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शांतये शांतिधारा, दिव्य पुष्पांजलिः

जाप्य मंत्र – **ॐ ह्रीं शुद्धात्मभावप्रतिपादकश्रीसमयसारग्रंथाय नमः।**

जयमाला

-शंभु छन्द-

श्री कुन्दकुन्द आचार्य रचित, इस समयसार को नमन करो।
जयमाला पढ़कर समयसार को, अर्घ्य चढ़ा अध्ययन करो।।
मिथ्या अविरति व कषाय योग, ये चार हेतु आश्रव के हैं।
इन चारों में मिथ्यात्व भाव को, समयसार बस मुख्य कहे।।1।।

जैसे लघु बाला निरुपभोग्य, नहिं पुरुष को आकर्षित करती।
वह ही तरुणी बन तरुण पुरुष के, संग प्रेमालिंगन करती।।
बस इसी तरह मिथ्यात्व आदि भी, निरुपभोग्य जब तकरहते।
नहिं कर्मबंध करते लेकिन, उपभोग्य समय बंधते रहते।।2।।

संवर अधिकार बताता है, हम भेदविज्ञानी बन जावें।
आते कर्मों को रोक सकें, तब आत्मरूप को लख पावें।।
जैसे सुवर्ण तपने पर भी, निज स्वर्णपने को नहिं तजता।
कर्मोदय से संतप्त जीव, वैसे ही ज्ञान नहिं तजता।।3।।

शुद्धात्मा की उपलब्धि से, ही संवर भाव प्रगट होता।
हे आत्मन्! तू तो ज्ञानी है, अज्ञानी भव भव में रोता।।
जब तक शुभ अशुभ उभय भावों को, रोका नहिं जा सकता है।
तब तक बस अशुभ का त्याग करो, तब क्रम से शिव पा सकता है।। 4।।

सम्यग्दृष्टि इन्द्रिय द्वारा, चेतन व अचेतन द्रव्यों का।
उपभोग किया करता उसको, निर्जरा निमित्त कहा उनका।।
अष्टांग सहित सम्यग्दर्शन, आत्मा को शुद्ध बनाता है।
ऐसा ज्ञानी मुनि कर्म निर्जरा, कर मुक्ति श्री पाता है।।5।।

बंधाधिकार में कर्मबंध का, सूक्ष्म विवेचन मिलता है।
बंधन के कारण ही जग में, शुद्धात्मतत्त्व नहिं मिलता है।।
जैसे स्नेहिल तन में धूली, देखो शीघ्र चिपक जाती।
वैसे ही मिथ्यादृष्टि जीव में, कर्मधूलि भी बस जाती।।6।।

तन में चिकनाई नहिं हो तो, रज उसपर चिपक न पाती है।
सम्यग्दृष्टि में इसी तरह, नहिं कर्म धूलि जम पाती है।।
कर्ताबुद्धि ही जीवों के संग, कर्मबंध करवाती है।
कर्ताबुद्धि के हटते ही, सम्यक्त्व कली खिल जाती है।।7।।

आस्रव संवर निर्जरा बंध, क्रम समयसार में बतलाया।
गौतमगणधर के क्रम से ही, श्री कुंदकुंद ने समझाया।।
इनकी पूजन करके मेरे, मन में यह भाव उपज आया।
हो समयसार साकार अगर, जीवन में समझो सब पाया।।।8।।

आठों द्रव्यों का थाल सजा, पूर्णार्घ्य चढ़ाने आए हैं।
'चन्दनामती' श्रुतज्ञान प्राप्ति का, लक्ष्य बनाकर लाए हैं।।
इस ग्रंथराज के निकट आज, मिथ्यातम हरने आए हैं।
श्री कुंदकुंदस्वामी को भी, हम शीश झुकाने आए हैं।।9।।

ॐ ह्रीं आस्रवसंवरनिर्जराबंधाधिकारसमन्वितश्रीसमयसारमहाग्रंथाय जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शांतये शांतिधारा, दिव्य पुष्पांजलिः

-दोहा-

समयसार का सार ही, है जीवन का सार।
शेष द्रव्य का भार है, जीवन में निस्सार।।

।। इत्याशीर्वादः, पुष्पांजलिः।।

(पूजा नं.-5)

मोक्ष अधिकार एवं सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार पूजा

स्थापना –अडिल्ल छन्द

समयसार की पूजन कर लो भाव से।
उसका अध्यन करो भव्यजन चाव से।।
मोक्ष व सर्व विशुद्ध ज्ञान अधिकार है।
आह्वानन स्थापन करलूं आज मैं।।1।।

ॐ ह्रीं मोक्षाधिकारसर्वविशुद्धज्ञानाधिकारसमन्वितश्रीसमयसारग्रंथराज! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं।

ॐ ह्रीं मोक्षाधिकारसर्वविशुद्धज्ञानाधिकारसमन्वितश्रीसमयसारग्रंथराज! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।

ॐ ह्रीं मोक्षाधिकारसर्वविशुद्धज्ञानाधिकारसमन्वितश्रीसमयसारग्रंथराज! अत्र मम सन्निहितो भव-भव वषट् सन्निधिकरणम्।

-अथ अष्टक-

तर्ज - आओ बच्चों तुम्हें दिखाएं....।

चलो सभी मिल पूजन कर लें, समयसार जी शास्त्र की।
उसमें वर्णित मोक्ष तत्त्व अरु, शुद्ध ज्ञान अधिकार की।।
जय जिनवाणी माँ, बोलो जय जिनवाणी माँ-2।।टेक.।।

जलधारा कर श्रुत अर्चन से, ज्ञानामृत मिल जाता है।
जन्मजरामृत के बंधन से, छूट अमर पद पाता है।।
शुद्ध नीर से पूजन कर लें, समयसार जी शास्त्र की।
उसमें वर्णित मोक्ष तत्त्व अरु, शुद्ध ज्ञान अधिकार की।।
जय जिनवाणी माँ, बोलो जय जिनवाणी माँ-2।।टेक.।।

ॐ ह्रीं मोक्षाधिकारसर्वविशुद्धज्ञानाधिकारसमन्वितश्रीसमयसाराय जन्म-जरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।।1।।

चलो सभी मिल पूजन कर लें, समयसार जी शास्त्र की।
उसमें वर्णित मोक्ष तत्त्व अरु, शुद्ध ज्ञान अधिकार की।।
जय जिनवाणी माँ, बोलो जय जिनवाणी माँ-2।।टेक.।।
चंदन लेकर श्रुतअर्चन से, भव आतप मिट जाता है।
आत्मा शाश्वत शीतलता से, अजर अमर पद पाता है।।
चंदन द्वारा पूजन करलें, समयसारजी शास्त्र की।
उसमें वर्णित मोक्ष तत्त्व अरु, शुद्ध ज्ञान अधिकार की।।
जय जिनवाणी माँ, बोलो जय जिनवाणी माँ-2।।टेक.।।

ॐ ह्रीं मोक्षाधिकारसर्वविशुद्धज्ञानाधिकारसमन्वितश्रीसमयसाराय संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।।2।।

चलो सभी मिल पूजन कर लें, समयसार जी शास्त्र की।
उसमें वर्णित मोक्ष तत्त्व अरु, शुद्ध ज्ञान अधिकार की।।
जय जिनवाणी माँ, बोलो जय जिनवाणी माँ-2।।टेक.।।
श्वेताक्षत ले श्रुत पूजन से, अक्षय पद मिल जाता है।
शुभ भावों युत अर्चन से, भौतिक सुख भी मिल जाता है।।
अक्षत लेकर पूजन कर लें, समयसार जी शास्त्र की।
उसमें वर्णित मोक्ष तत्त्व अरु, शुद्ध ज्ञान अधिकार की।।
जय जिनवाणी माँ, बोलो जय जिनवाणी माँ-2।।टेक.।।

ॐ ह्रीं मोक्षाधिकारसर्वविशुद्धज्ञानाधिकारसमन्वितश्रीसमयसाराय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।।3।।

चलो सभी मिल पूजन कर लें, समयसार जी शास्त्र की।
उसमें वर्णित मोक्ष तत्त्व अरु, शुद्ध ज्ञान अधिकार की।।
जय जिनवाणी माँ, बोलो जय जिनवाणी माँ-2।।टेक.।।
चंप चमेली आदि पुष्प ले, श्रुत के निकट चढ़ाना है।
कामबाण विध्वंसन होगा, आतम सुख को पाना है।।
अतः पुष्प ले पूजन कर लें, समयसार जी शास्त्र की।

उसमें वर्णित मोक्ष तत्त्व अरु, शुद्ध ज्ञान अधिकार की।।
जय जिनवाणी माँ, बोलो जय जिनवाणी माँ-2।।टेक.।।

ॐ ह्रीं मोक्षाधिकारसर्वविशुद्धज्ञानाधिकारसमन्वितश्रीसमयसाराय कामबाणविनाशनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।।4।।

चलो सभी मिल पूजन कर लें, समयसार जी शास्त्र की।
उसमें वर्णित मोक्ष तत्त्व अरु, शुद्ध ज्ञान अधिकार की।।
जय जिनवाणी माँ, बोलो जय जिनवाणी माँ-2।।टेक.।।
व्यंजन सरस थाल में लेकर, श्रुत के निकट चढ़ाना है।
क्षुधारोग करके विनाश अब, आतमतृप्ति पाना है।।
व्यंजन लेकर पूजन कर लें, समयसार जी शास्त्र की।
उसमें वर्णित मोक्ष तत्त्व अरु, शुद्ध ज्ञान अधिकार की।।
जय जिनवाणी माँ, बोलो जय जिनवाणी माँ-2।।टेक.।।

ॐ ह्रीं मोक्षाधिकारसर्वविशुद्धज्ञानाधिकारसमन्वितश्रीसमयसाराय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।।5।।

चलो सभी मिल पूजन कर लें, समयसार जी शास्त्र की।
उसमें वर्णित मोक्ष तत्त्व अरु, शुद्ध ज्ञान अधिकार की।।
जय जिनवाणी माँ, बोलो जय जिनवाणी माँ-2।।टेक.।।
घृतदीपक का थाल सजाकर, श्रुत की आरति करना है।
मोहतिमिर नाशन हो मेरा, समयसारजी शास्त्र की।।
दीपक लेकर पूजन कर लें, यही भावना करना है।
उसमें वर्णित मोक्ष तत्त्व अरु, शुद्ध ज्ञान अधिकार की।।
जय जिनवाणी माँ, बोलो जय जिनवाणी माँ-2।।टेक.।।

ॐ ह्रीं मोक्षाधिकारसर्वविशुद्धज्ञानाधिकारसमन्वितश्रीसमयसाराय मोहांधकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।।6।।

चलो सभी मिल पूजन कर लें, समयसार जी शास्त्र की।
उसमें वर्णित मोक्ष तत्त्व अरु, शुद्ध ज्ञान अधिकार की।।
जय जिनवाणी माँ, बोलो जय जिनवाणी माँ-2।।टेक.।।

धूपदान में धूप जलाकर, श्रुत की पूजन करना है।
अष्टकर्म का नाशन करके, आतमसुख को वरना है।।
सुरभित धूप से पूजन कर लें, समयसार जी शास्त्र की।
उसमें वर्णित मोक्ष तत्त्व अरु, शुद्ध ज्ञान अधिकार की।।
जय जिनवाणी माँ, बोलो जय जिनवाणी माँ-2।।टेक.।।

ॐ ह्रीं मोक्षाधिकारसर्वविशुद्धज्ञानाधिकारसमन्वितश्रीसमयसाराय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।।7।।

चलो सभी मिल पूजन कर लें, समयसार जी शास्त्र की।
उसमें वर्णित मोक्ष तत्त्व अरु, शुद्ध ज्ञान अधिकार की।।
जय जिनवाणी माँ, बोलो जय जिनवाणी माँ-2।।टेक.।।
आम सेव अंगूर फलों से, श्रुत की पूजन करना है।
शाश्वतसुख की प्राप्ति हेतु, मोक्ष महाफल वरना है।।
फल थाली ले पूजन कर लें, समयसार जी शास्त्र की।
उसमें वर्णित मोक्ष तत्त्व अरु, शुद्ध ज्ञान अधिकार की।।
जय जिनवाणी माँ, बोलो जय जिनवाणी माँ-2।।टेक.।।

ॐ ह्रीं मोक्षाधिकारसर्वविशुद्धज्ञानाधिकारसमन्वितश्रीसमयसाराय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।।8।।

चलो सभी मिल पूजन कर लें, समयसार जी शास्त्र की।
उसमें वर्णित मोक्ष तत्त्व अरु, शुद्ध ज्ञान अधिकार की।।
जय जिनवाणी माँ, बोलो जय जिनवाणी माँ-2।।टेक.।।
स्वर्णथाल में अर्घ्य सजाकर, श्रुत की पूजन करना है।
तभी ''चन्दनामती'' शीघ्र ही, पद अनर्घ्य को वरना है।।
अष्टद्रव्य ले पूजन करलें, समयसार जी शास्त्र की।
उसमें वर्णित मोक्ष तत्त्व अरु, शुद्ध ज्ञान अधिकार की।।
जय जिनवाणी माँ, बोलो जय जिनवाणी माँ-2।।टेक.।।

ॐ ह्रीं मोक्षाधिकारसर्वविशुद्धज्ञानाधिकारसमन्वितश्रीसमयसाराय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।9।।

-सोरठा-

गंगनदी का नीर, सुवरण झारी में भरा।
हो जाऊँ भवतीर, शांतीधारा मैं करूँ।।10।।

शांतये शांतिधारा।

बेला कमल गुलाब, पुष्पों को कर में लिया।
पुष्पांजलि कर आज, आतमगुण सुरभित किया।।11।।

दिव्य पुष्पांजलिः।

अथ प्रत्येक अर्घ्य

समयसार मण्डल विधान में, वलय चतुर्थ के निकट चलो।
इसमें वर्णित तीस अधिक सौ गाथाएँ स्मरण करो।।
मोक्ष व सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार कहे हैं दो इसमें।
इन्हें अर्घ्य अर्पण से पहले पुष्पांजलि करना है हमें।।1।।

इति श्री समयसारमण्डलविधानस्य चतुर्थवलये पुष्पांजलिं क्षिपेत्।

मोक्षाधिकार की गाथाओं के अर्घ्य

(1)

जह णाम कोवि पुरिसो, बंधणियह्मि चिरकालपडिबद्धो।
तिव्वं मंदसहावं, कालं च वियाणदे तस्स।।315।।

-बसंततिलका छन्द-

जैसे कोई पुरुष बंधन में बंधा है,
चिरकाल से स्वयं दुक्ख उठा रहा है।
बंधन के तीव्र या मन्द स्वभाव को भी,
वह बन्धकाल को भी खुद जानता है।।315।।

दोहा – **मोक्ष नवम अधिकार को, अर्घ्य चढ़ाऊँ आज।**
क्रम से पाऊँ मोक्ष को, सिद्ध होंय सब काज।।

ॐ ह्रीं बंधनपूर्वकमोक्षतत्त्वप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(2)

जदि णवि, कुव्वदि छेदं, ण मुंचदि तेण कम्मबंधेण।
कालेण बहुएणवि, ण सो णरो पावदि विमोक्खं।।316।।

फिर भी न बन्ध को यदि वह छेदता है,
तो कर्मबन्ध से वैसे छूट सकता।
पुरुषार्थ बिन समय कितना ही गंवा ले,
पर मोक्षप्राप्ति में सक्षम हो न सकता।।316।।

दोहा – **मोक्ष नवम अधिकार को, अर्घ्य चढ़ाऊँ आज।**
क्रम से पाऊँ मोक्ष को, सिद्ध होंय सब काज।।

ॐ ह्रीं बंधछेदनप्रयत्नाभावे मोक्षप्राप्त्यभावप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(3)

इय कम्मबंधणाणं, पदेसपयडिट्ठिदीयअणुभागं।
जाणंतोवि ण मुंचदि, मुंचदि सव्वे जदि विसुद्धो।।317।।

प्रकृती प्रदेश स्थिति अनुभाग आदी,
कर्मों के भेद भी जान न छूटता है।
रागादि भाव तजकर यदि शुद्ध होता,
मानव वही तब करम से छूटता है।।317।।

दोहा – **मोक्ष नवम अधिकार को, अर्घ्य चढ़ाऊँ आज।**
क्रम से पाऊँ मोक्ष को, सिद्ध होंय सब काज।।

ॐ ह्रीं प्रकृतिस्थितिअनुभागप्रदेशचतुःभेदरूपबंधज्ञाने सति रागादिभावविरहित-मोक्षप्राप्तिभावप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(4)

जह बंधे चिंतंतो, बंधणबद्धो ण पावदि विमोक्खं।
तह बंधे चिंतंतो, जीवोवि ण पावदि विमोक्खं।।318।।

ज्यों बंध में बंधा कोई जीव चाहे,
बंधन विचार केवल नहिं मुक्ति देता।

त्यों जीव भी करम बन्धन के विषय में,
चिन्तन ही मात्र से वह नहिं मोक्ष लेता।।318।।

दोहा – **मोक्ष नवम अधिकार को, अर्घ्य चढ़ाऊँ आज।**
क्रम से पाऊँ मोक्ष को, सिद्ध होंय सब काज।।

ॐ ह्रीं बंधनबद्धचिंतकमात्रपुरुषवत्कर्मबंधकस्य मोक्षाभावप्रतिपादक समयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(5)

जह बंधे मुत्तूण य बंधणबद्धो य पावदि विमोक्खं।
तह बंधे मुत्तूण य, जीवो संपावदि विमोक्खं।।319।।

जैसे बंधा पुरुष बन्धन को छुड़ाकर,
बन्धन से शीघ्र मुक्ती को प्राप्त करता।
वैसे हि कर्मबन्धन को छेद करके,
मानव भी शीघ्र शिवपद को प्राप्त करता।।319।।

दोहा – **मोक्ष नवम अधिकार को, अर्घ्य चढ़ाऊँ आज।**
क्रम से पाऊँ मोक्ष को, सिद्ध होंय सब काज।।

ॐ ह्रीं बंधनमोचकपुरुषवत्कर्मबंधकस्य मोक्षप्राप्तिभावप्रतिपादक समयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(6)

बंधाणं च सहावं वियाणिदुं अप्पणो सहावं च।
बंधेसु जो ण रज्जदि, सो कम्मविमोक्खणं कुणदि।।320।।

जो जीव बन्ध के स्वाभाविक धरम को,
चैतन्य आत्म के स्वाभाविचक मरम को।
वह कर्म बन्ध से शीघ्र विरक्त होता,
निज कर्म काट शिव पद को प्राप्त होता।।320।।

दोहा – **मोक्ष नवम अधिकार को, अर्घ्य चढ़ाऊँ आज।**
क्रम से पाऊँ मोक्ष को, सिद्ध होंय सब काज।।

ॐ ह्रीं बंधस्वभाववत्चैतन्यस्वभावं ज्ञात्वा तत्प्राप्तिउपायप्रतिपादकसमय-साराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(7)

जीवो बंधो य तहा, छिज्जंति सलक्खणेहिं णियएहिं।
पण्णाछेदणएण दु, छिण्णा णाणत्तमावण्णा।।321।।

आत्मा व बन्ध दोनों बिल्कुल अलग हैं,
पर दिख रहे जगत में ये एक संग हैं।
अतएव बुद्धि-छेनी से उन द्वयों को,
ऐसे पृथक करो वे फिर एक नहिं हों।।321।।

दोहा – **मोक्ष नवम अधिकार को, अर्घ्य चढ़ाऊँ आज।**
क्रम से पाऊँ मोक्ष को, सिद्ध होंय सब काज।।

ॐ ह्रीं जीबंधस्वरूपं पृथक्-पृथक् ज्ञात्वा प्रज्ञाछेदकेन जीवतत्त्वप्राप्तिभाव-प्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(8)

जीवों बंधो य तहा, छिज्जंति सलक्खणेहिं णियएहिं।
बंधो छेदेदव्वो, सुद्धो अप्पा य घेत्तव्वो।।322।।

तुम जीव बन्ध इन दोनों को नियम से,
निज निज स्वरूप से ऐसे भिन्न करना।
स्वयमेव बन्ध छिद करके भिन्न होवे,
तब बन्ध त्याग कर आत्मस्वरूप भजना।।322।।

दोहा – **मोक्ष नवम अधिकार को, अर्घ्य चढ़ाऊँ आज।**
क्रम से पाऊँ मोक्ष को, सिद्ध होंय सब काज।।

ॐ ह्रीं स्वयमेव बंधछिन्नप्रक्रियाप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(9)

कह सो घिप्पदि अप्पा, पण्णाए सो दु घिप्पदे अप्पा।
जह पण्णाए विभत्तो, तह पण्णाएव घित्तव्वो।।323।।

कैसे ग्रहण किया जाता आत्मा को,
उत्तर मिला कि प्रज्ञा से ग्रहण कर लो।
प्रज्ञा से बंध से जैसे भिन्न करते,
वैसे उसी से ग्रहण के योग्य कर लो।।323।।

दोहा – **मोक्ष नवम अधिकार को, अर्घ्य चढ़ाऊँ आज।**
क्रम से पाऊँ मोक्ष को, सिद्ध होंय सब काज।।

ॐ ह्रीं कर्मबन्धत्यागआत्मस्वभावग्रहणयोग्यताप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(10)

पण्णाए घेत्तव्वो, जो चेदा सो अहं तु णिच्छयदो।
अवसेसा जे भावा, ते मज्झ परित्ति णादव्वा।।324।।

चेतनस्वरूप आत्मा मैं हूँ नियम से,
प्रज्ञा विशेष से उसको ग्रहण कर लो।
अवशेष भाव जो भी हैं वे नियम से,
मुझसे सदा पृथक् हैं यह मान लो तुम।।324।।

दोहा – **मोक्ष नवम अधिकार को, अर्घ्य चढ़ाऊँ आज।**
क्रम से पाऊँ मोक्ष को, सिद्ध होंय सब काज।।

ॐ ह्रीं आत्मस्वभावात् भिन्नावशेषभावप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(11)

पण्णाए घित्तव्वो, जो दट्ठा सो अहं तु णिच्छयदो।
अवसेसा जे भावा, ते मज्झ परेत्ति णादव्वा।।325।।

यह बात बुद्धि से अंगीकार करना,
दृष्टा स्वभाव वाला मैं हूँ नियम से।
अवशेष भाव जो भी हैं इस जगत में,
मुझसे सदा पृथक् हैं यह मान लो तुम।।325।।

दोहा – **मोक्ष नवम अधिकार को, अर्घ्य चढ़ाऊँ आज।**
क्रम से पाऊँ मोक्ष को, सिद्ध होंय सब काज।।

ॐ ह्रीं दृष्टारूपआत्मस्वभावात् भिन्नावशेषभावप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(12)

पण्णाए घित्तव्वो जो णादा सो अहं तु णिच्छयदो।
अवसेसा जे भावा ते मज्झ परेत्ति णायव्वा।।326।।

तुम भेदज्ञान से यह स्वीकार करना,
ज्ञाता स्वभाव जिसका वह मैं नियम से।
अवशेष भाव जितने भी हैं जगत में,
मेरे नहीं वे सदा मुझसे पृथक् हैं।।326।।

दोहा – **मोक्ष नवम अधिकार को, अर्घ्य चढ़ाऊँ आज।**
क्रम से पाऊँ मोक्ष को, सिद्ध होंय सब काज।।

ॐ ह्रीं ज्ञातारूपआत्मस्वभावात् भिन्नावशेषभावप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(13)

को णाम भणिज्ज बुहो, णादुं सव्वे परोदये भावे।
मज्झमिणं ति य वयणं जाणंतो अप्पयं सुद्धं।।327।।

है कौन विज्ञ जो चेतन भाव तजकर,
निज आत्म और शुद्धातम भाव लखकर।
इनके सिवाय पर के पर भाव को भी,
अपने कहे नहिं कभी उसके हुए भी।।327।।

दोहा – **मोक्ष नवम अधिकार को, अर्घ्य चढ़ाऊँ आज।**
क्रम से पाऊँ मोक्ष को, सिद्ध होंय सब काज।।

ॐ ह्रीं शुद्धात्मविज्ञभावप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(14)

तेयादी अवराहे, कुव्वदि जो सो ससंकिदो होदि।
मा बज्झेहं केणवि, चोरोत्ति जणह्मि विचरंतो।।328।।

जो जीव चोरी प्रभृति अपराध करता,
शंकित हुआ वह पुरुष जग में विचरता।
वह सोचता मैं कभी पकड़ा न जाऊँ,
अपराध चूँकि मन में उसके खटकता।।328।।

दोहा – **मोक्ष नवम अधिकार को, अर्घ्य चढ़ाऊँ आज।**
क्रम से पाऊँ मोक्ष को, सिद्ध होंय सब काज।।

ॐ ह्रीं अपराधयुक्तशंकितपुरुषवत्कर्मबंधकभावप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(15)

जो ण कुणदि अवराहे, सो णिस्संको दु जणवदे भमदि।
णवि तस्स बज्झिदुं जे, चिंता उप्पज्जदि कयावि।।329।।

पर जीव जो कभी नहिं अपराध करता,
वह जीव पूर्ण जनपद में भ्रमण करता।
चिन्ता न रहती उसे निज बंध की भी,
निःशंक रहता निरपराधी कहीं भी।।329।।

दोहा – **मोक्ष नवम अधिकार को, अर्घ्य चढ़ाऊँ आज।**
क्रम से पाऊँ मोक्ष को, सिद्ध होंय सब काज।।

ॐ ह्रीं निरपराधीनिःशंकितपुरुषवत्अबंधकभावप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(16)

एवं हि सावराहो, बज्झामि अहं तु संकिदो चेदा।
जइ पुण णिरवराहो, णिस्संकोहं ण बज्झामि।।330।।

अपराध से सहित यदि मैं भी रहूँगा,
तो कर्मबन्ध से निश्चित ही बंधूंगा।
यदि मैं पुनः निरपराधि नहीं बंधूंगा,
होकर निशंक ज्ञानी पद को लहूँगा।।330।।

दोहा – **मोक्ष नवम अधिकार को, अर्घ्य चढ़ाऊँ आज।**
क्रम से पाऊँ मोक्ष को, सिद्ध होंय सब काज।।

ॐ ह्रीं निःशंकज्ञानीपदप्राप्तिहेतुभावप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(17)

संसिद्धिराधसिद्धी, साधिदमाराधिदं च एयट्ठो।
अवगदराधो जो खलु, चेट्ठो सो होदि अवराहो।।331।।

संसिद्धि सिद्धि साधित आराधितादी,
हैं राध के हि सारे पर्यायवाची।
शुद्धात्मराधन रहित जो आतमा है,
अपराध से सहित वह बहिरातमा है।।331।।

दोहा – **मोक्ष नवम अधिकार को, अर्घ्य चढ़ाऊँ आज।**
क्रम से पाऊँ मोक्ष को, सिद्ध होंय सब काज।।

ॐ ह्रीं सापराधबहिरात्मभावप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(18)

जो पुण णिरवराधो चेया णिस्संकिओ उ सो होइ।
आराहणए णिच्चं वट्टेइ अहं ति जाणंतो।।332।।

जो जीव हो निरपराधी आत्मज्ञानी।
शंकाररहित हो भ्रमे सहजात्मध्यानी।।
शुद्धात्मरूप निज को पहचान करके।
आत्मानुराधन करें मुनिराज ज्ञानी।।332।।

दोहा – **मोक्ष नवम अधिकार को, अर्घ्य चढ़ाऊँ आज।**
क्रम से पाऊँ मोक्ष को, सिद्ध होंय सब काज।।

ॐ ह्रीं निरपराध-निःशंकितआत्मानुराधनभावप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(19)

पडिकमणं पडिसरणं, पडिहरणं धारणा णियत्ती य।
णिंदा गरुहा सोहिय, अट्ठविहो होदि विसकुंभो।।333।।

प्रतिक्रमण प्रतिसरण अरू परिहार आदी।
निवृत्ति निन्दा व गर्हा शुद्धि आदी।।
ज्ञानी समाधि युत मुनि के धारणा युत।
आठों प्रकार ये हैं विषकुंभ जैसे।।333।।

दोहा – **मोक्ष नवम अधिकार को, अर्घ्य चढ़ाऊँ आज।**
क्रम से पाऊँ मोक्ष को, सिद्ध होंय सब काज।।

ॐ ह्रीं वीतरागनिर्विकल्पसमाधिस्थमुनेः अष्टप्रकारप्रतिक्रमणविषकुंभवत्-प्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(20)

अपडिकमणं अप्पडिसरणं, अप्परिहारो अधारणा चेव।
अणियत्ती य अणिंदा, अगरुहा विसोहिय अमयकुंभो।।334।।

अप्रतिक्रमण अप्रतिसरण अधारणा जो।
अनिवृत्ति अरु अपरिहार अशुद्धि हैं जो।।

निन्दारहित अरु अगर्हा आठ ये हैं,
गतराग योगि को अमृतकुम्भ ये हैं।।334।।

दोहा – **मोक्ष नवम अधिकार को, अर्घ्य चढ़ाऊँ आज।**
क्रम से पाऊँ मोक्ष को, सिद्ध होंय सब काज।।

ॐ ह्रीं सरागियोगिनः अष्टप्रतिक्रमणअमृतकुंभवत्प्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार की गाथाओं के अर्घ्य

(21)

दवियं जं उप्पज्जदि, गुणेहिं तं तेहिं जाणसु अणण्णं।
जह कडयादीहिं दु, पज्जएहिं कणयं अणण्णमिह।।335।।

-नरेन्द्र छंद-

जब जो द्रव्य स्वयं के जिन-गुण से उत्पन्न हुए हैं।
उन गुण से वे द्रव्य कदाचित्, भी नहिं भिन्न हुए हैं।।
जैसे सोना कड़ा आदि, पर्याय रूप भी बनता।
वह अपने स्वर्णत्व भाव को, नहीं तथापी तजता।।335।।

दोहा – **सर्व विशुद्धज्ञानमय, है दशवाँ अधिकार।**
अर्घ्य समर्पित कर इसे, मिले ज्ञान का सार।।

ॐ ह्रीं कटकादिभिः अभिन्नकनकमिव गुणैरभिन्नात्मतत्त्वप्रतिपादकसमय-साराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(22)

जीवस्साजीवस्स य, जे परिणामा दु देसिदा सुत्ते।
तं जीवमजीवं वा, तेहिमणण्णं वियाणीहि।।336।।

ऐसे ही जो जीव अजीवों, के परिणाम कहे हैं।
उन परिणामों के संग में, वे द्रव्य अभिन्न रहे हैं।।
द्रव्यों का परिणमन द्रव्य को, तजकर नहिं रह सकता।
इसीलिए पर्यायों से नहिं, द्रव्य भिन्न रह सकता।।336।।

दोहा – **सर्व विशुद्धज्ञानमय, है दशवाँ अधिकार।**
अर्घ्य समर्पित कर इसे, मिले ज्ञान का सार।।

ॐ ह्रीं द्रव्यगुणपर्यायाभिन्नस्वभावप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(23)

ण कुदोचि वि उप्पण्णो, जह्मा कज्जं ण तेण सो आदा।
उप्पादेदि ण किंचिवि, कारणमवि तेण ण सो होदि।।337।।

आत्मा तो नहिं किसी अन्य से, भी उत्पन्न हुआ है।
इसीलिए वह किसी अन्य का, कार्य कभी न हुआ है।।
किसी अन्य को भी उत्पन्न, नहीं आत्मा करता है।
इसीलिए वह पर का कारण, कभी नहीं बनता है।।337।।

दोहा – **सर्व विशुद्धज्ञानमय, है दशवाँ अधिकार।**
अर्घ्य समर्पित कर इसे, मिले ज्ञान का सार।।

ॐ ह्रीं कार्यकारणभावरहितआत्मतत्त्वप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(24)

कम्मं पडुच्च कत्ता, कत्तारं तह पडुच्च कम्माणि।
उप्पज्जंते णियमा, सिद्धी दु ण दिस्सदे अण्णा।।338।।

कर्मों का आश्रय लेकर, कर्त्ता भी बन जाता है।
कर्मों के ही कारण आत्मा, जग में दुःख पाता है।।
कर्त्ता का आश्रय लेकर, आत्मा में कर्म उपजते।
अन्य प्रकारों से कर्ता, कर्मादि सिद्धि नहिं बनते।।338।।

दोहा – **सर्व विशुद्धज्ञानमय, है दशवाँ अधिकार।**
अर्घ्य समर्पित कर इसे, मिले ज्ञान का सार।।

ॐ ह्रीं व्यवहारनयापेक्षया कार्यकारणभावसहितआत्मतत्त्वप्रतिपादक-समयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(25)

चेदा दु पयडियट्ठं, उप्पज्जदि विणस्सदि।
पयडीवि चेदयट्ठं, उप्पज्जदि विणस्सदि।।339।।

चेतयिता ज्ञानावरणादि, प्रकृतियों से है उपजता।
उन्हीं प्रकृतियों के निमित्त से, नाशवान है बनता।।
प्रकृती भी आत्मा निमित्त से, कर्मरूप परिणमती।
आत्मा के भी प्रबल निमित्त, सो नाशवान है बनती।।339।।

दोहा – **सर्व विशुद्धज्ञानमय, है दशवाँ अधिकार।**
अर्घ्य समर्पित कर इसे, मिले ज्ञान का सार।।

ॐ ह्रीं कर्मप्रकृतिनिमित्तेन उत्पत्तिविनाशभावसहितआत्मतत्त्वप्रतिपादक-समयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(26)

एवं बंधो दुण्हंपि, अण्णोण्णपच्चयाण हवे।
अप्पणो पयडीएय, संसारो तेण जायदे।।340।।

इसी तरह आत्मा व कर्म का, मिलन बन्ध को करता।
आत्मा प्रकृति उभय निमित्त, संसार भ्रमण को करता।।
निज स्वभाव से च्युत आत्मा ही, पर विभाव में रमता।
सार यही है निज स्वरूप से, आत्मा बन्ध न करता।।340।।

दोहा – **सर्व विशुद्धज्ञानमय, है दशवाँ अधिकार।**
अर्घ्य समर्पित कर इसे, मिले ज्ञान का सार।।

ॐ ह्रीं आत्माप्रकृतिउभयनिमित्तेन बंधभावसहितआत्मतत्त्वप्रतिपादक-समयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(27)

जा एसो पयडीयट्ठं, चेदगो ण विमुंचदि।
अयाणओ हवे ताव, मिच्छादिट्ठी असंजदो।।341।।

जब तक प्राणी पूर्वकथित, प्रकृती का अर्थ न तजता।
कर्मोदय से प्राप्त हुई, परिणति रागादि न तजता।।
तब तक अज्ञायक स्वभाव से, आत्मा को अनुभवता।
मिथ्यादृष्टि असंयत बनकर, मोक्ष प्राप्त नहिं करता।।341।।

दोहा – **सर्व विशुद्धज्ञानमय, है दशवाँ अधिकार।**
अर्घ्य समर्पित कर इसे, मिले ज्ञान का सार।।

ॐ ह्रीं व्यवहारेण अज्ञायकभावयुक्तआत्मतत्त्वप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(28)

जदा विमुंचदे चेदा, कम्मफ्फलमणंतयं।
तदा विमुत्तो हवदि, जाणगो पस्सगो मुणी।।342।।

वही जीव जब बहुत भेदयुत, कर्मफलों को तजता।
शुद्ध बुद्ध अपनी आत्मा में, सम्यक् श्रद्धा करता।।
तब ही वह मुनि सम्यग्दृष्टी, ज्ञायक रूप कहाता।
द्रव्य भाव दोनों से उपजे, कर्म समूह नशाता।।342।।

दोहा – **सर्व विशुद्धज्ञानमय, है दशवाँ अधिकार।**
अर्घ्य समर्पित कर इसे, मिले ज्ञान का सार।।

ॐ ह्रीं कर्मफलप्रकरणे ज्ञानी-अज्ञानीभावप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(29)

अण्णाणी कम्मफलं, पयडि-सहावट्ठिदो दु वेदेदि।
णाणी पुण कम्मफलं, जाणदि उदिदं ण वेदेदि।।343।।

अज्ञानी प्राणी कर्मों के, फल को भोगा करता।
प्रकृति भाव में स्थित होकर, कर्मबन्ध को करता।।
ज्ञानी तो उदयागत कर्म-फलों का ज्ञाता रहता।
लेकिन अहंभाव से उनका, भोक्ता कभी न बनता।।343।।

दोहा – **सर्व विशुद्धज्ञानमय, है दशवाँ अधिकार।**
अर्घ्य समर्पित कर इसे, मिले ज्ञान का सार।।

ॐ ह्रीं कर्मफलप्रकरणे ज्ञानी-अज्ञानीभावप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(30)

जो पुण णिरवराहो, चेदा णिस्संकिदो दु सो होदि।
आराहणाए णिच्चं, वट्टदि अहमिदि वियाणंतो।।344।।

जो अपराधरहित आत्मा, परमात्मा को ही भजता।
चेतयिता ज्ञानी निशंक, होकर निज में ही रहता।।
निज के ही आराधन में, वह हर क्षण तत्पर रहता।
निज अनंत ज्ञानादि चतुष्टय, का ही अनुभव करता।।344।।

दोहा – **सर्व विशुद्धज्ञानमय, है दशवाँ अधिकार।**
अर्घ्य समर्पित कर इसे, मिले ज्ञान का सार।।

ॐ ह्रीं निश्चयनयापेक्षया आत्मनः निःशंकभावप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(31)

ण मुयदि पयडिमभव्वो, सुट्ठुवि अज्झाइदूण सच्छाणि।
गुडदुद्धं पि पिवंता, ण पण्णया णिव्विसा होंति।।345।।

पन्नग मिष्ट मधुर गुड़ युत, यदि दुग्ध पान भी कर ले।
तो भी अपना कटुक विषैला, नहिं स्वभाव तजते वे।।

वैसे ही कितने शास्त्रों को, यदि अभव्य भी पढ़ ले।
तो भी कर्मोदय स्वभाव को, नहीं छोड़ सकते वे।।345।।

दोहा – **सर्व विशुद्धज्ञानमय, है दशवाँ अधिकार।**
अर्घ्य समर्पित कर इसे, मिले ज्ञान का सार।।

ॐ ह्रीं मिष्टदुग्धपिबन्नपि विषधरसर्पवत्अभव्यजीवस्वभावप्रतिपादक-समयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(32)

णिव्वेदसमावण्णो, णाणी कम्मफ्फलं वियाणादि।
महुरं कडुयं बहुविह-मवेदको तेण पण्णत्तो।।346।।

परमतत्त्वज्ञानी जग के, भोगों में ममत न करता।
पूर्णविरक्त हुआ वह कर्मों, के फल को बस लखता।।

मधुर कटुक उनके फल में, वह सुखी दुःखी नहिं होता।
इसीलिए वह ज्ञानमात्र से, भोक्ता कभी न होता।।346।।

दोहा – **सर्व विशुद्धज्ञानमय, है दशवाँ अधिकार।**
अर्घ्य समर्पित कर इसे, मिले ज्ञान का सार।।

ॐ ह्रीं निर्वेदगुणयुक्तमुनेः आत्मस्वभावप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(33)

णवि कुव्वदि णवि वेददि, णाणी कम्माइ बहुपयाराइ।
जाणदि पुण कम्मफलं, बंधं पुण्णं च पावं च।।347।।

तीन गुप्ति से गुप्त मुनी, पर के आलम्बन विरहित।
नाना कर्मों में कर्त्ता, भोक्तापन भावादि रहित।।
निज शुद्धात्म भावनामृत से, तृप्त हुआ वह ज्ञाता।
कर्मबंध कर्मों का फल अरु, पाप पुण्य का ज्ञाता।।347।।

दोहा – **सर्व विशुद्धज्ञानमय, है दशवाँ अधिकार।**
अर्घ्य समर्पित कर इसे, मिले ज्ञान का सार।।

ॐ ह्रीं त्रिगुप्तिसहितपुण्यपापकर्तृत्वभोक्तृत्वरहितशुद्धात्मतत्त्वप्रतिपादक-समयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(34)

दिट्ठी सयं पि णाणं, अकारयं तह अवेदयं चेव।
जाणदि य बंधमोक्खं, कम्मुदयं णिज्जरं चेव।।348।।

जैसे नेत्रेन्द्रिय निज ज्ञेय, पदार्थों को लखता है।
लेकिन उन ज्ञेयों का कर्ता, भोक्ता नहिं बनता है।।
शुद्ध ज्ञान वैसे ही बंध, व मोक्ष निर्जरा जाने।
कर्मोदय कृत समझ न निज को, कर्ता भोक्ता माने।।348।।

दोहा – **सर्व विशुद्धज्ञानमय, है दशवाँ अधिकार।**
अर्घ्य समर्पित कर इसे, मिले ज्ञान का सार।।

ॐ ह्रीं ज्ञेयपदार्थप्रति नेत्रेन्द्रियवत्शुद्धज्ञानभावप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(35)

लोगस्स कुणदि विण्हू, सुरणारयतिरियमाणुसे सत्ते।
समणाणं पि य अप्पा, जदि कुव्वदि छव्विहे काए।।349।।

जग में लोगों ने विष्णु को, सृष्टी कर्ता माना।
सुर नारक तिर्यंच मनुज सब-को उनकी रचना माना।।
इसी तरह यदि यतिगण भी, ऐसा विश्वास बनाते।
षट्कायिक जीवों का कर्ता, आत्मा को बतलाते।।349।।

दोहा – **सर्व विशुद्धज्ञानमय, है दशवाँ अधिकार।**
अर्घ्य समर्पित कर इसे, मिले ज्ञान का सार।।

ॐ ह्रीं षट्कायिकजीवकर्तामान्यतारूपअज्ञानभावप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(36)

लोगसमणाणमेवं, सिद्धंतं पडि ण दिस्सदि विसेसो।
लोगस्स कुणदि विण्हू, समणाण अप्पओ कुणदि।।350।।

फिर तो श्रमण लोक मान्यता, एक सदृश दिखती है।
कोई नहीं विशेष बात, सामान्य प्रवृत्ति दिखती है।।

क्योंकी जैसे विष्णु जगत की, रचना कर सकता है।
उसी तरह आत्मा को कर्ता, श्रमण भी कह सकता है।।350।।

दोहा – **सर्व विशुद्धज्ञानमय, है दशवाँ अधिकार।**
अर्घ्य समर्पित कर इसे, मिले ज्ञान का सार।।

ॐ ह्रीं लोकमान्यतानुसारेण जगत्कर्ताविष्णुरिव मिथ्यादृष्टिमुनिमान्यता-प्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(37)

एवं ण कोवि मुक्खो, दीसदि दुण्हं पि समणलोयाणं।
णिच्चं कुव्वंताणं, सदेवमणुआसुरे लोगे।।351।।

दोनों जन भी कर्त्तापन की, सहज मान्यता करते।
श्रमण व लोक अतः दोनों ही, मोक्ष प्राप्त नहिं करते।।
क्योंकि देव मनुजादि असुर-युत विश्व नित्य रचते जो।
मुक्ति अवस्था का शाश्वत सुख, प्राप्त न कर सकते वो।।351।।

दोहा – **सर्व विशुद्धज्ञानमय, है दशवाँ अधिकार।**
अर्घ्य समर्पित कर इसे, मिले ज्ञान का सार।।

ॐ ह्रीं लोकश्रमणद्वयोः मिथ्यामान्यतावशात् मोक्षाभावप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(38)

ववहारभासिदेण दु, परदव्वं मम भणंति विदिदच्छा।
जाणंति णिच्छयेण दु, ण य इह परमाणुमित्त ममकिंचि।।352।।

तत्त्वों के ज्ञाता मुनिवर, व्यवहार वचन कहते हैं।
परद्रव्य पिच्छिका आदि, को मेरी यह कहते हैं।।
लेकिन निश्चय नय से तो, वे ऐसा जान रहे हैं।
परवस्तू परमाणुमात्र नहिं, अपना मान रहे हैं।।352।।

दोहा – **सर्व विशुद्धज्ञानमय, है दशवाँ अधिकार।**
अर्घ्य समर्पित कर इसे, मिले ज्ञान का सार।।

ॐ ह्रीं व्यवहारनिश्चयनयापेक्षया परद्रव्यं प्रति भावनाप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(39)

जह कोवि णरो जंपदि, अम्हाणं गामविसयपुररट्ठं।
ण य हुंतिताणि तस्स दु, भणदि य मोहेण सो अप्पा।।353।।

जैसे कोई पुरुष ग्राम, नगरादिक अपने कहते।
उसके कहने से ग्रामादिक, उसके नहिं हो सकते।।
मात्र मोह के वश से मेरा, मेरा कहता रहता।
निश्चय से तो यह भी उनसे, भिन्न सदा ही रहता।।353।।

दोहा – **सर्व विशुद्धज्ञानमय, है दशवाँ अधिकार।**
अर्घ्य समर्पित कर इसे, मिले ज्ञान का सार।।

ॐ ह्रीं मोहकर्मवशेन परद्रव्यं प्रति अहंभावप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(40)

एमेव मिच्छदिट्ठी, णाणी णिस्संसयं हवइ एसो।
जो परदव्वं मम इदि, जाणंतो अप्पयं कुणदि।।354।।

इसी तरह परद्रव्यों को पर, जान रहा जो ज्ञानी।
तो भी मेरा मेरा कहकर, अपनाता वो ज्ञानी।।
तब तो उस क्षण वह अवश्य, मिथ्यादृष्टी बन जाता।
क्योंकि ज्ञान का दुरुपयोग, नहिं सम्यग्ज्ञान कहाता।।354।।

दोहा – **सर्व विशुद्धज्ञानमय, है दशवाँ अधिकार।**
अर्घ्य समर्पित कर इसे, मिले ज्ञान का सार।।

ॐ ह्रीं मिथ्यादृष्टिजीवस्य परद्रव्यं प्रति ममकारभावप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(41)

तह्मा ण ममेति णच्चा, दुण्हं एदाण कत्तिववसाओ।
परदव्वे जाणंतो, जाणिज्जो दिट्ठिरहिदाणं।।355।।

पर तो मेरा हो नहिं सकता, ऐसा भी चिन्तन है।
पर लौकिक जन मुनि दोनों ने, माना कर्तापन है।।

उसको मिथ्यादृष्टीकृत, व्यवसाय मानता ज्ञानी।
पर को पर प्रतिक्षण जो कहता, वह ही भेदविज्ञानी।।355।।

दोहा – **सर्व विशुद्धज्ञानमय, है दशवाँ अधिकार।**
अर्घ्य समर्पित कर इसे, मिले ज्ञान का सार।।

ॐ ह्रीं परद्रव्यं प्रति परभावमान्यताप्रतिपादक समयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(42)

मिच्छत्ता जदि पयडी, मिच्छादिट्ठी करेदि अप्पाणं।
तह्मा अचेदणा दे, पयडी णणु कारगो पत्तो।।356।।

यदि मिथ्यात्व प्रकृति आत्मा को, मिथ्यादृष्टि बनाती।
तो वह स्वयं अचेतन चेतन, की कर्त्ता बन जाती।।
सांख्यमती तुम सुनो तुम्हारा, मत ऐसा बतलाता।
जीव अकर्त्ता पुद्गल कर्त्ता, यह एकांत न भाता।।356।।

दोहा – **सर्व विशुद्धज्ञानमय, है दशवाँ अधिकार।**
अर्घ्य समर्पित कर इसे, मिले ज्ञान का सार।।

ॐ ह्रीं एकान्तेन जीवअकर्तृत्वभावप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(43)

सम्मत्ता जदि पयडी, सम्मादिट्ठी करेदि अप्पाणं।
तह्मा अचेदणा दे, पयडी णणु कारगो पत्तो।।357।।

यदि सम्यक्त्व प्रकृति आत्मा को, सम्यग्दृष्टि बनाती।
तो वह स्वयं अचेतन चेतन, का कर्त्ता बन जाती।।
ऐसे तो पुद्गल प्रकृति, निश्चय से कर्त्ता बनती।
लेकिन जिनशासन में ऐसी, बात कहीं नहिं मिलती।।357।।

दोहा – **सर्व विशुद्धज्ञानमय, है दशवाँ अधिकार।**
अर्घ्य समर्पित कर इसे, मिले ज्ञान का सार।।

ॐ ह्रीं जिनशासनानुसारेण शुद्धनिश्चयनयेन सम्यक्त्वप्रकृतिअकर्तृत्वभाव-प्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(44)

अहवा एसो जीवो, पुग्गल दव्वस्स कुणदि मिच्छत्तं।
तह्मा पुग्गलदव्वं, मिच्छादिट्ठी ण पुण जीवो।।358।।

यदि ऐसा माना जावे यह, जीव सभी कुछ करता।
पुद्गल के मिथ्यात्व भाव, को आत्मा ही करता।।
तब तो पुद्गल द्रव्य को ही, मिथ्यादृष्टी तुम जानो।
जीव कभी मिथ्यादृष्टी नहिं, हो सकता यह मानो।।358।।

दोहा – **सर्व विशुद्धज्ञानमय, है दशवाँ अधिकार।**
अर्घ्य समर्पित कर इसे, मिले ज्ञान का सार।।

ॐ ह्रीं पुद्गलद्रव्यं प्रति मिथ्यात्वभावकर्ताप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(45)

अह जीवो पयडी विय, पुग्गलदव्वं कुणंति मिच्छत्तं।
तह्मा दोहिकदत्तं दुण्णिवि भुंजंति तस्स फलं।।359।।

यदि ऐसा मानें यह जीवरु, पुद्गल ऐसा करते।
दोनों मिलकर पुद्गल को, मिथ्यात्वरूप हैं करते।।
दोनों द्वारा संचित कर्मों, का फल द्वय को मिलता।
पर ऐसा सिद्धान्त नहीं है, अतः कथन नहिं बनता।।359।।

दोहा – **सर्व विशुद्धज्ञानमय, है दशवाँ अधिकार।**
अर्घ्य समर्पित कर इसे, मिले ज्ञान का सार।।

ॐ ह्रीं जीवपुद्गलद्वयोः प्रति मिथ्यात्वभावकर्ताप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(46)

अह ण पयडी ण जीवो, पुग्गलदव्वं करेदि मिच्छत्तं।
तह्मा पुग्गलदव्वं, मिच्छत्तं तं तु ण हु मिच्छा।।360।।

पुद्गल को मिथ्यात्वरूप यदि, प्रकृति जीव नहिं करते।
तो भी पुद्गलद्रव्य स्वयं, मिथ्यात्व स्वरूप ठहरते।।

अतः सिद्ध यह हुआ कि, अज्ञानी मिथ्यात्व करे हैं।
उस निमित्त से पुद्गल, परमाणू भी कर्म बने हैं।।360।।

दोहा – **सर्व विशुद्धज्ञानमय, है दशवाँ अधिकार।**
अर्घ्य समर्पित कर इसे, मिले ज्ञान का सार।।

ॐ ह्रीं जीवपुद्गलौ एकान्तेन अकर्तारूपमिथ्यात्वभावप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(47)

कम्मेहिं दु अण्णाणी, किज्जदि णाणी तहेव कम्मेहिं।
कम्मेहिं सुवाविज्जदि, जग्गाविज्जदि तहेव कम्मेहिं।।361।।

कर्मों के द्वारा ही आत्मा, अज्ञानी है बनता।
कर्मों के द्वारा ही आत्मा, सम्यग्ज्ञानी बनता।।
जीवात्मा कर्मों के द्वारा, ही सोता रहता है।
तथा कर्म के ही द्वारा, जागृत आत्मा रहता है।।361।।

दोहा – **सर्व विशुद्धज्ञानमय, है दशवाँ अधिकार।**
अर्घ्य समर्पित कर इसे, मिले ज्ञान का सार।।

ॐ ह्रीं कर्मभिरेव ज्ञानी-अज्ञानीभावकर्ताप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(48)

कम्मेहिं सुहाविज्जदि, दुक्खाविज्जदि तहेव कम्मेहिं।
कम्मेहिं य मिच्छत्तं, णिज्जदि असंजयं चेव।।362।।

यह आत्मा कर्मों के द्वारा, सुखी दुःखी बनता है।
कर्मों से मिथ्यात्व अवस्था, को भि प्राप्त करता है।।
तथा असंयम की प्राप्ती, वे कर्म उसे करवाते।
जीव इसी कर्मोदय से, शुभ भाव नहीं कर पाते।।362।।

दोहा – **सर्व विशुद्धज्ञानमय, है दशवाँ अधिकार।**
अर्घ्य समर्पित कर इसे, मिले ज्ञान का सार।।

ॐ ह्रीं एकान्तेन जीवस्यकर्मभिरेव सुखदुःखभोक्ताभावप्रतिपादक-समयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(49)

कम्मेहिं भमाडिज्जदि, उड्ढमहं चावि तिरियलोयम्मि।
कम्मेहिं चेव किज्जदि, सुहासुहं जेत्तियं किंचि।।363।।

ऊर्ध्व अधो तिर्यंच लोक में, जीव भ्रमण जो करता।
उसको भ्रमण कराने में भी, कर्म निमित्त ही रहता।।
जो कुछ शुभ व अशुभ होता है, वह भी कर्म कराता।
प्रबल निमित्त इस जीवात्मा से, सभी कर्म करवाता।।363।।

दोहा – **सर्व विशुद्धज्ञानमय, है दशवाँ अधिकार।**
अर्घ्य समर्पित कर इसे, मिले ज्ञान का सार।।

ॐ ह्रीं एकांतेन पंचपरिवर्तनरूपसंसारभ्रमणकर्ताजीवतत्त्वप्रतिपादक-समयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(50)

जह्मा कम्मं कुव्वदि, कम्मं देदित्ति हरदि जं किंचि।
तह्मा सव्वेजीवा, अकारया हुंति आवण्णा।।364।।

क्योंकि कर्म ही तो करता है, कर्म सभी कुछ देता।
जग में कर्म ही तो हरता है, कर्म ही सब कर लेता।।
इसीलिए तो जीव अकारक, वह कुछ भी नहिं करता।
कर्म अचेतन सब कुछ करते, सांख्य मती यह कहता।।364।।

दोहा – **सर्व विशुद्धज्ञानमय, है दशवाँ अधिकार।**
अर्घ्य समर्पित कर इसे, मिले ज्ञान का सार।।

ॐ ह्रीं एकान्तेन कर्मैवकारकजीवअकारकरूपसांख्यमतप्रतिपादक-समयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(51)

पुरिसिच्छियाहिलासी इच्छी कम्मं च पुरिसमहिलसदि।
एसा आयरियपरंपरागदा एरिसी दु सुदी।।365।।

पुरुष वेद जो कर्म कहा वह, स्त्री का अभिलाषी।
पुरुष मात्र की इच्छा स्त्री, वेद कर्म कहलाती।।

सांख्यमताचार्यों के मुख से, ऐसी बात सुनी है।
जिनशासन में अनेकांत से, करते कथन मुनी हैं।।365।।

दोहा – **सर्व विशुद्धज्ञानमय, है दशवाँ अधिकार।**
अर्घ्य समर्पित कर इसे, मिले ज्ञान का सार।।

ॐ ह्रीं स्त्रीपुरुषवेदप्रति एकांतमतनिराकरणरूपजिनशासनमतप्रतिपादक-समयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(52)

तह्मा ण कोवि जीवो, अबह्मयारी दु तुह्य-मुवदेसे।
जह्मा कम्मं चेव हि, कम्मं अहिलसदि जं भणियं।।366।।

अतः कोई भी जीव अब्रह्म-चारी नहिं है तव मत में।
क्योंकि कर्म को कर्म चाहता, ऐसा माना तुमने।।
किन्तु शुद्ध निश्चय नय से हैं, सभी जीव ब्रह्मचारी।
वे अशुद्ध निश्चय से भी, हो जावेंगे ब्रह्मचारी।।366।।

दोहा – **सर्व विशुद्धज्ञानमय, है दशवाँ अधिकार।**
अर्घ्य समर्पित कर इसे, मिले ज्ञान का सार।।

ॐ ह्रीं ब्रह्मचारित्वगुणप्रति शुद्धाशुद्धनिश्चयनयप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(53)

जह्मा घादेदि परं, परेण घादिज्जदेदि सा पयडी।
एदेणच्छेण दु किर, भण्णदि परघादणामेत्ति।।367।।

कोई पर को मारे पर के, द्वारा मारा जावे।
कर्म सभी में हैं निमित्त, वह ही सब कुछ करवावे।।
इसीलिए परघात नामकी, प्रकृति उसे कहते हैं।
यथा नाम गुण भी तथैव, सिद्धान्तों में पढ़ते हैं।।367।।

दोहा – **सर्व विशुद्धज्ञानमय, है दशवाँ अधिकार।**
अर्घ्य समर्पित कर इसे, मिले ज्ञान का सार।।

ॐ ह्रीं परघातनामकर्मप्रकृतिस्वरूपप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(54)

तह्मा ण कोवि जीवो, उवघादगो अत्थि तुह्म उवदेसे।
जह्मा कम्मं चेव हि, कम्मं घादेदि जं भणियं।।368।।

अतः आपके मत में कोई, जीव नहीं उपघाती।
क्योंकि केवल कर्म को तुमने, माना है परघाती।।
जिनमत में द्रव्यार्थिक नय से, जीव अपरिणामी है।
पर्यायार्थिक नय से वह, आत्मा परिणामी भी है।।368।।

दोहा – **सर्व विशुद्धज्ञानमय, है दशवाँ अधिकार।**
अर्घ्य समर्पित कर इसे, मिले ज्ञान का सार।।

ॐ ह्रीं द्रव्यार्थिकपर्यायार्थिकनयापेक्षया परघातनामकर्मप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(55)

एवं संखुवदेसं, जे दु परूविंति एरिसं समणा।
तेसिं पयडी कुव्वदि, अप्पा य अकारया सव्वे।।369।।

जो कोई भी श्रमण इस तरह, का प्रवचन करते हैं।
जिनमत बाह्य सांख्यमत के, अनुसार वचन उनके हैं।।
क्योंकी उनके यहाँ प्रकृति ही, सब कुछ करती माना।
जीव अकर्ता है ऐसा, उनके ऋषियों ने जाना।।369।।

दोहा – **सर्व विशुद्धज्ञानमय, है दशवाँ अधिकार।**
अर्घ्य समर्पित कर इसे, मिले ज्ञान का सार।।

ॐ ह्रीं सांख्यमतानुसारेण एकान्तेन परघातनामकर्मप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(56)

अहवा मण्णसि मज्झं, अप्पा अप्पाणमप्पणो कुणदि।
एसो मिच्छसहावो, तुम्हं एवं मुणंतस्स।।370।।

यदि ऐसा माना जावे, आत्मा निज को ही करता।
यह एकान्त कथन भी मिथ्या, मत का पोषण करता।।

जिनमत तो निश्चय व्यवहार, कथन के बल पर चलता।
शुद्ध अशुद्ध जीव ही उसमें, कर्ता और अकर्ता।।370।।

दोहा – **सर्व विशुद्धज्ञानमय, है दशवाँ अधिकार।**
अर्घ्य समर्पित कर इसे, मिले ज्ञान का सार।।

ॐ ह्रीं असंख्यातप्रदेशिआत्मनःप्रति मिथ्याकल्पनाप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(57)

अप्पा णिच्चासंखेज्जपदेसो देसिदो दु समयम्हि।
णवि सो सक्कदि तत्तो, हीणो अहियो य कादुं जे।।371।।

द्रव्यार्थिक नय से यह आत्मा, नित्य असंख्य प्रदेशी।
परमागम में उसे कहा, चैतन्यपना पहले ही।।
सो उस आत्मा का प्रमाण, हीनाधिक नहिं कर सकते।
इसीलिये आत्मा का कर्ता, आत्मा नहिं कह सकते।।371।।

दोहा – **सर्व विशुद्धज्ञानमय, है दशवाँ अधिकार।**
अर्घ्य समर्पित कर इसे, मिले ज्ञान का सार।।

ॐ ह्रीं द्रव्यार्थिकनयेन आत्मतत्त्वप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(58)

जीवस्स जीवरूवं, वित्थरदो जाण लोगमित्तं हि।
तत्तो सो किं हीणो, अहियो व कदं भणसि दव्वं।।372।।

जीवद्रव्य जब आत्म प्रदेशों, को विस्तारित करता।
उसी अपेक्षा से वह लोका-काश प्रमित है रहता।।
उससे हीनाधिक उसको क्या, कभी किया जा सकता ?
पर्यायार्थिक नय से आत्मा, निज शरीर में रहता।।372।।

दोहा – **सर्व विशुद्धज्ञानमय, है दशवाँ अधिकार।**
अर्घ्य समर्पित कर इसे, मिले ज्ञान का सार।।

ॐ ह्रीं लोकाकाशप्रमितआत्मप्रदेशसमन्वितजीवतत्त्वप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(59)

अह जाणओ दु भावो णाणसहावेण अत्थि देदि मदं।
तह्मा णवि अप्पा, अप्पयं तु सयमप्पणो कुणदि।।373।।

ज्ञान भाव में सुस्थित आत्मा, ज्ञायक रूप कही है।
अतः जीव निज को करता है, ऐसा सत्य नहीं है।।
आत्मा तो अज्ञान दशा में, कर्मों को करता है।
परमागम का सार यही, ज्ञानी कुछ नहिं कर्ता है।।373।।

दोहा – **सर्व विशुद्धज्ञानमय, है दशवाँ अधिकार।**
अर्घ्य समर्पित कर इसे, मिले ज्ञान का सार।।

ॐ ह्रीं ज्ञायकस्वभावीआत्मतत्त्वप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(60)

केहिचिदु पज्जयेहिं, विणस्सदे णेव केहिचिदु जीवो।
जह्मा तह्मा कुव्वदि, सो वा अण्णो व णियंतो।।374।।

जीव नाम के तत्त्व की कितनी, ही पर्याय विनशतीं।
किन्तु अन्य कितनी ही, पर्यायें जो नहीं विनशतीं।।
इसीलिए वह ही कर्ता, या अन्य दूसरा कर्ता।
होता है इन विषयों का, एकान्त कथन नहिं बनता।।374।।

दोहा – **सर्व विशुद्धज्ञानमय, है दशवाँ अधिकार।**
अर्घ्य समर्पित कर इसे, मिले ज्ञान का सार।।

ॐ ह्रीं विनश्वराविनश्वरपर्यायसमन्वितजीवतत्त्वप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(61)

केहिचिदु पज्जयेहिं, विणस्सदे णेव केहिचिदु जीवो।
जह्मा तह्मा वेददि, सो वा अण्णो व णेयंतो।।375।।

इसी तरह वह जीव तत्त्व, कुछ पर्यायों से नशता।
तथा अन्य कुछ पर्यायों से, भी वह नहीं विनशता।।
अतः जीव ही भोक्ता अथवा, अन्य भोगने वाला।
होता यह एकान्त कथन, विपरीत मानने वाला।।375।।

दोहा – **सर्व विशुद्धज्ञानमय, है दशवाँ अधिकार।**
अर्घ्य समर्पित कर इसे, मिले ज्ञान का सार।।

ॐ ह्रीं पर्यायार्थिकनयापेक्षया भोक्तृत्वगुणसमन्वितजीवतत्त्वप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(62)

जो चेव कुण सो चेव, वेदको जस्स एस सिद्धंतो।
सो जीवो णायव्वो, मिच्छादिट्ठी अणारिहदो।।376।।

जो कर्मों का कर्त्ता है, वह भोक्ता नहिं कहलाता।
ऐसा जिसका मत है वह, मिथ्यादृष्टि कहलाता।।
यह ऐकांतिक कथनी अर्हन्मत में नहिं मिलती है।
क्योंकि सांख्य के मत में ऐसी, ही परिणति मिलती है।।376।।

दोहा – **सर्व विशुद्धज्ञानमय, है दशवाँ अधिकार।**
अर्घ्य समर्पित कर इसे, मिले ज्ञान का सार।।

ॐ ह्रीं सांख्यमतनिराकरणरूपकर्तृत्वभोक्तृत्वगुणसमन्वितजीवतत्त्वप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(63)

अण्णो करेदि अण्णो, परिभुंजदि जस्स एस सिद्धंतो।
सो जीवो णादव्वो, मिच्छादिट्ठी अणारिहदो।।377।।

ऐसे ही कर्मों का कर्ता, अन्य तथा भोक्ता भी।
अन्य कहा जिसके मत में, वह मिथ्यादृष्टि सदा ही।।
क्योंकी अर्हन्मत में ऐसा, कथन न पाया जाता।
बौद्ध क्षणिक के ऐकान्तिक, मत में यह पाया जाता।।377।।

दोहा – **सर्व विशुद्धज्ञानमय, है दशवाँ अधिकार।**
अर्घ्य समर्पित कर इसे, मिले ज्ञान का सार।।

ॐ ह्रीं अर्हंतमतानुसारेण आत्मनः कर्तृत्वभोक्तृत्वगुणप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(64)

जह सिप्पिओ दु कम्मं, कुव्वदि ण य सो दु तम्मओह्वि।
तह जीवोवि य कम्मं, कुव्वदि ण य तम्मओ होदि।।378।।

जैसे शिल्पी स्वर्णकार, आभूषण आदि बनाता।
लेकिन उन आभूषणादि से, तन्मय नहिं बन जाता।।
वैसे ही जीवात्मा भी, पुद्गल कर्मों को करता।
किन्तु कभी वह तन्मय होकर, कर्मरूप नहिं बनता।।378।।

दोहा – **सर्व विशुद्धज्ञानमय, है दशवाँ अधिकार।**
अर्घ्य समर्पित कर इसे, मिले ज्ञान का सार।।

ॐ ह्रीं शिल्पिवत्अतन्मयरूपआत्माऽपि पुद्गलकर्माकर्ताभावप्रतिपादक-समयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(65)

जह सिप्पिओ दु करणेहिं, कुव्वदि ण य सो दु तम्मओ होदि।
तह जीवो करणेहिं, कुव्वदि ण य तम्मओ होदि।।379।।

जैसे शिल्पी उपकरणों से, कुण्डल आदि बनाता।
लेकिन उपकरणों के संग वह, उस मय नहिं बन जाता।।
मनवचकाय करण से आत्मा, भी कर्मों को करता।
तो भी उन करणों के संग, तन्मय होकर नहिं रहता।।379।।

दोहा – **सर्व विशुद्धज्ञानमय, है दशवाँ अधिकार।**
अर्घ्य समर्पित कर इसे, मिले ज्ञान का सार।।

ॐ ह्रीं उपकरणसमन्वितशिल्पिवत्मनोवचःकायसमन्वितात्मनः अतन्मय-अवस्थाप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(66)

जह सिप्पिउ करणाणि, गिण्हदि ण य सो दु तम्मओ होदि।
तह जीवो करणाणि य, गिण्हदि ण य तम्मओ होदि।।380।।

उन उपकरणों को शिल्पी, स्वयमेव ग्रहण भी करता।
तन्मय होकर तत्स्वरूप, तो भी परिणति नहिं करता।।
जीवद्रव्य भी उसी तरह, कायादि ग्रहण करता है।
तो भी कायादिक स्वरूप से, उस मय नहिं बनता है।।380।।

दोहा – **सर्व विशुद्धज्ञानमय, है दशवाँ अधिकार।**
अर्घ्य समर्पित कर इसे, मिले ज्ञान का सार।।

ॐ ह्रीं निश्चयनयेन कायादिस्वरूपजीवतत्त्वप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(67)

जह सिप्पिउ कम्मफलं, भुंजदि ण य सो दु तम्मओ होदि।
तह जीवो कम्मफलं, भुंजदि ण य सोवि तम्मओ होदि।।381।।

शिल्पी जैसे कुण्डलादि, कर्मों के फल को भोक्ता।
फिर भी वह निज कर्मफलों से, तन्मय रूप न होता।।
वैसे ही आत्मा कर्मों के, सुख दुख फल को सहता।
फिर भी उन कर्मों के फल में, तन्मय रूप न बनता।।381।।

दोहा – **सर्व विशुद्धज्ञानमय, है दशवाँ अधिकार।**
अर्घ्य समर्पित कर इसे, मिले ज्ञान का सार।।

ॐ ह्रीं परमार्थेन सुखदुःखफलेष्वपि असंगभावसमन्वितजीवतत्त्वप्रतिपादक-समयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(68)

एवं ववहारस्स दु, वत्तव्वं दंसणं समासेण।
सुणु णिच्छयस्स वयणं, परिणामकदं तु जं होदि।।382।।

ऐसा यह व्यवहार कथन, संक्षेप रूप कह आए।
अब आगे निश्चयनय के, वचनों को भी बतलाएं।।
सुनो उन्हें निज परिणामों से, किया हुआ जो होता।
निज के ही रागादि विकल्पों, से संपादित होता।।382।।

दोहा – **सर्व विशुद्धज्ञानमय, है दशवाँ अधिकार।**
अर्घ्य समर्पित कर इसे, मिले ज्ञान का सार।।

ॐ ह्रीं निजपरिणामकृतविकल्पसमन्वितजीवतत्त्वप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(69)

जह सिप्पिओ दु चेट्ठंकुव्वदि हवदि य तहा अणण्णो सो।
तह जीवोवि य कम्मं, कुव्वदि हवदि य अणण्णो से।।383।।

शिल्पी निज परिणामों की, चेष्टा जैसी करता है।
उस चेष्टा से पृथक् न होकर, तन्मय ही रहता है।।
जीवद्रव्य भी निज परिणामों, से कर्मों को करता।
उन परिणाम स्वरूप कर्म से, पृथक् नहीं हो सकता।।383।।

दोहा – **सर्व विशुद्धज्ञानमय, है दशवाँ अधिकार।**
अर्घ्य समर्पित कर इसे, मिले ज्ञान का सार।।

ॐ ह्रीं व्यवहारनयेन शिल्पिकारस्य तन्मयचेष्टावत्कर्मरूपतन्मयजीवतत्त्व-प्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(70)

जह चेट्ठं कुव्वंतो, दु सिप्पिओ णिच्च दुक्खिदो होदि।
तत्तो सेय अणण्णो, तह चेट्ठंतो दुही जीवो।।384।।

शिल्पी जैसे चेष्टा करके, सदा दुःखी रहता है।
वह अपने दुख सहकर दुख से, भिन्न नहीं रहता है।।
उसी तरह से जीव द्रव्य भी, दुःखी बना रहता है।
दुःखी अवस्था में निज चेष्टा, से तन्मय रहता है।।384।।

दोहा – **सर्व विशुद्धज्ञानमय, है दशवाँ अधिकार।**
अर्घ्य समर्पित कर इसे, मिले ज्ञान का सार।।

ॐ ह्रीं संसारपेक्षया निजचेष्टया दुःखीशिल्पिवत्दुःखफलभोक्ताजीवतत्त्व-प्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(71)

जह सेटिया दु ण परस्स, सेटिया सेटिया य सहोदि।
तह जाणगो दु ण परस्स, जाणगो जाणगो सो दु।।385।।

श्वेत वर्ण की खड़िया जैसे, नहिं दिवाल की होती।
लेकिन खड़िया स्वयं स्वगुण से, शुक्लरूप ही होती।।

यूं ही ज्ञायक आत्मा भी, परद्रव्य ज्ञेय का नहिं है।
प्रत्युत निज के ज्ञायक गुण से, ही तो ज्ञायक वह है।।385।।

दोहा – **सर्व विशुद्धज्ञानमय, है दशवाँ अधिकार।**
अर्घ्य समर्पित कर इसे, मिले ज्ञान का सार।।

ॐ ह्रीं आत्मशक्त्यपेक्षया स्वगुणेन शुक्लभावग्राहकजीवतत्त्वप्रतिपादक-समयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(72)

जह सेटिया दु ण परस्स, सेटिया सेटिया य सा होदि।
तह पस्सगो दु ण परस्स, पस्सगो पस्सगो सो दु।।386।।

पर को श्वेत बनाने से, खड़िया नहिं श्वेत कही है।
वह तो अपनी सहज सफेदी, गुण से श्वेत कही है।।
यूं ही मात्र परद्रव्य देखने, से न जीव दर्शक है।
प्रत्युत वह तो सहज स्वभावी, होने से दर्शक है।।386।।

दोहा – **सर्व विशुद्धज्ञानमय, है दशवाँ अधिकार।**
अर्घ्य समर्पित कर इसे, मिले ज्ञान का सार।।

ॐ ह्रीं निजसहजदर्शकगुणसमन्वितजीवतत्त्वप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(73)

जह सेटिया दु ण परस्स, सेटिया सेटिया दु सा होदि।
तह संजदो दु ण परस्स, संजदो संजदो सो दु।।387।।

पर को श्वेत बनाने से, मिट्टी नहिं श्वेत कही है।
वह तो निज के सहज श्वेत गुण, से ही श्वेत कही है।।
यूं ही त्यागन वाला संयत, मुनि भी पर का नहिं है।
वह संयत तो स्वयं संयमी, होने से संयत है।।387।।

दोहा – **सर्व विशुद्धज्ञानमय, है दशवाँ अधिकार।**
अर्घ्य समर्पित कर इसे, मिले ज्ञान का सार।।

ॐ ह्रीं संयमगुणसमन्वितआत्मनः संयतभावप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(74)

जह सेटिया दु ण परस्स, सेटिया सेटिया दु सा होदि।
तह दंसणं दु ण परस्स, दंसणं दंसणं तं तु।।388।।

पर को रंगने से सफेद, मिट्टी नहिं पर की मानी।
वह तो अपनी सहज सफेदी, से संयुक्त बखानी।।
वैसे ही श्रद्धान क्रिया, पर की नहिं मानी जाती।
सम्यग्दर्शन युक्त क्रिया ही, सम्यग्दर्श कहाती।।388।।

दोहा – **सर्व विशुद्धज्ञानमय, है दशवाँ अधिकार।**
अर्घ्य समर्पित कर इसे, मिले ज्ञान का सार।।

ॐ ह्रीं परमात्मश्रद्धानरूपवीतरागसम्यग्दर्शनसमन्वितजीवतत्त्वप्रतिपादक-समयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(75)

एवं तु णिच्छयणयस्स, भासियं णाणदंसणचरित्ते।
सुणु ववहारणयस्स य, वत्तव्वं से समासेण।।389।।

ऐसा यह दर्शन सुज्ञान, चारित्र विषय में माना।
निश्चय नय का वचन यही, परमागम से है जाना।।
अब व्यवहारनयाश्रित कथनी, कहता हूँ सो सुनिये।
दोनों के संक्षिप्त कथन सुन, निज आत्मा को गुनिये।।389।।

दोहा – **सर्व विशुद्धज्ञानमय, है दशवाँ अधिकार।**
अर्घ्य समर्पित कर इसे, मिले ज्ञान का सार।।

ॐ ह्रीं व्यवहारनिश्चयापेक्षया ज्ञानदर्शनचारित्रसमन्वितजीवतत्त्वप्रतिपादक-समयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(76)

जह परदव्वं सेडिदि हु, सेटिया अप्पणो सहावेण।
तह परदव्वं जाणदि, णादा वि सएण भावेण।।390।।

पर को श्वेत बनाने से, खड़िया ज्यों श्वेत कही है।
वह अपने इस सहज भाव से, मानी श्वेत सही है।।

उसी तरह परद्रव्य जानने, वाला भी ज्ञायक है।
ज्ञातापन के निज गुण से ही, सबका वह ज्ञायक है।।390।।

दोहा – **सर्व विशुद्धज्ञानमय, है दशवाँ अधिकार।**
अर्घ्य समर्पित कर इसे, मिले ज्ञान का सार।।

ॐ ह्रीं व्यवहारनयेन परद्रव्यज्ञायकजीवतत्त्वप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(77)

जह परदव्वं सेटिदि हु सेटिया अप्पणो सहावेण।
तह परदव्वं पस्सदि, जीवोवि सएण भावेण।।391।।

पर को रंगने से सफेद, मिट्टी सफेद कहलाती।
क्योंकी वह तो इसी श्वेत, गुण से संयुक्त कहाती।।
इसी तरह परवस्तु देखने, से आत्मा दर्शक है।
दर्शकपन के निज गुण से ही, सबका वह दर्शक है।।391।।

दोहा – **सर्व विशुद्धज्ञानमय, है दशवाँ अधिकार।**
अर्घ्य समर्पित कर इसे, मिले ज्ञान का सार।।

ॐ ह्रीं व्यवहारनयाश्रयेण परद्रव्यदर्शकगुणसमन्वितजीवतत्त्वप्रतिपादक-समयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(78)

जह परदव्वं सेटदि हु, सेटिया अप्पणो सहावेण।
तह परदव्वं विरमदि, णादावि सएण भावेण।।392।।

श्वेत वर्ण की खड़िया जैसे, पर को श्वेत बनाती।
इसी हेतु से वह खड़िया है, बात कही यह जाती।।
ऐसे ही परद्रव्य त्यागने, से आत्मा संयत है।
त्यागभाव के हेतुपने से, ही आत्मा संयत है।।392।।

दोहा – **सर्व विशुद्धज्ञानमय, है दशवाँ अधिकार।**
अर्घ्य समर्पित कर इसे, मिले ज्ञान का सार।।

ॐ ह्रीं व्यवहारदृष्ट्या परद्रव्यत्यागरूपसंयतगुणसमन्वितजीवतत्त्वप्रतिपादक-समयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(79)

जह परदव्वं सेटदि हु, सेटिया अप्पणो सहावेण।
तह परदव्वं सद्दहदि, सम्मदिट्ठी सहावेण।।393।।

पर को रंगने से सफेद, मिट्टी सफेद है मानी।
वह तो पर को श्वेत करन, गुण से संयुक्त बखानी।।
यूं ही परद्रव्यों की श्रद्धा, से आत्मा दर्शन है।
श्रद्धापन के हेतू से, आत्मा सम्यग्दर्शन है।।393।।

दोहा – **सर्व विशुद्धज्ञानमय, है दशवाँ अधिकार।**
अर्घ्य समर्पित कर इसे, मिले ज्ञान का सार।।

ॐ ह्रीं व्यवहारसम्यग्दर्शनगुणसमन्वितजीवतत्त्वप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(80)

एसो ववहारस्स दु, विणिच्छओ णाणदंसणचरित्ते।
भणिदो अण्णेसु वि, पज्जएसु एमेव णादव्वो।।394।।

ऐसा यह दर्शन सुज्ञान, चारित्र विषय में माना।
है व्यवहारनयाश्रित निर्णय, परमागम से जाना।।
इसी तरह से अन्य और, पर्यायों में भी जानो।
निश्चय अरु व्यवहार कथन से, वस्तुतत्त्व श्रद्धानो।।394।।

दोहा – **सर्व विशुद्धज्ञानमय, है दशवाँ अधिकार।**
अर्घ्य समर्पित कर इसे, मिले ज्ञान का सार।।

ॐ ह्रीं व्यवहारापेक्षयाज्ञानदर्शनचारित्रगुणसमन्वितजीवतत्त्वप्रतिपादक-समयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(81)

दंसणणाणचरित्तं, किंचिवि णत्थि दु अचेदणे विसए।
तह्मा किं घादयदे, चेदयिदा तेसु विसएसु।।395।।

आत्मा के सम्यग्दर्शन, ज्ञान व चरित्र माने हैं।
नहीं अचेतन के विषयों में, कुछ भी पहचाने हैं।।

इसीलिये उन विषयों में, आत्मा क्या घात करेगा।
क्योंकि घातने योग्य वहाँ, साधन ही नहीं मिलेगा।।395।।

दोहा – **सर्व विशुद्धज्ञानमय, है दशवाँ अधिकार।**
अर्घ्य समर्पित कर इसे, मिले ज्ञान का सार।।

ॐ ह्रीं निश्चयनयेन अचेतनविषयेषु अनात्मभावप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(82)

दंसणणाणचरित्तं, किंचिवि णत्थि दु अचेदणे कम्मे।
तह्मा किं घादयदे, चेदयिदा तेसु कम्मेसु।।396।।

दर्शन-ज्ञान चरित्र स्वरूपी, जीवात्मा कहलाती।
कर्म अचेतन में वह कुछ भी, कार्य नहीं कर पाती।।
अतः भला उन कर्मों में, आत्मा क्या घात करेगा।
क्योंकि घातने योग्य वहाँ, साधन ही कहाँ मिलेगा।।396।।

दोहा – **सर्व विशुद्धज्ञानमय, है दशवाँ अधिकार।**
अर्घ्य समर्पित कर इसे, मिले ज्ञान का सार।।

ॐ ह्रीं निश्चयदृष्ट्या अचेतनकर्मेषु अनात्मभावप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(83)

दंसणणाणचरित्तं, किंचिवि णत्थि दु अचेदणे काये।
तह्मा किं घादयदे, चेदयिदा तेसु कायेसु।।397।।

सम्यग्दर्शन ज्ञानचरितयुत, आत्मस्वरूप बताया।
नहीं अचेतन काय संग में, उसकी कोई माया।।
अतः भला उन कायों में, आत्मा क्या घात करेगा।
क्योंकि घातने योग्य वहाँ, साधन ही कहाँ मिलेगा ?।।397।।

दोहा – **सर्व विशुद्धज्ञानमय, है दशवाँ अधिकार।**
अर्घ्य समर्पित कर इसे, मिले ज्ञान का सार।।

ॐ ह्रीं निश्चयनयाश्रयेण अचेतनकायेषु अनात्मभावप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(84)

णाणस्स दंसणस्स य, भणिदो घादो तहा चरित्तस्स।
णवि तह्मि कोवि पुग्गलदव्वे घादो दु णिद्दिट्ठो।।398।।

आत्मा में जो सम्यग्दर्शन, ज्ञान चरित कहलाते।
मिथ्यादर्शन आदि निमित्तों, से वे घाते जाते।।
क्योंकि अचेतन द्रव्य कर्म का, कुछ भी घात न होता।
इनके कारण चेतन आत्मा, निज परिणति को खोता।।398।।

दोहा – **सर्व विशुद्धज्ञानमय, है दशवाँ अधिकार।**
अर्घ्य समर्पित कर इसे, मिले ज्ञान का सार।।

ॐ ह्रीं रत्नत्रयघातकमिथ्यात्वपरिणामप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(85)

जीवस्स जे गुणा, केई णत्थि ते खलु परेसु दव्वेसु।
तह्मा सम्मादिट्ठिस्स, णत्थि रागो दु विसएसु।।399।।

जीव द्रव्य अपने जिन स्वाभाविक गुण से संयुत है।
उन गुण से पर द्रव्य सदा, निश्चय से नहीं सहित है।।
इसीलिए सम्यग्दृष्टी, विषयों में राग न करता।
वह तो आत्मा के स्वाभाविक, गुण में ही अनुरक्ता।।399।।

दोहा – **सर्व विशुद्धज्ञानमय, है दशवाँ अधिकार।**
अर्घ्य समर्पित कर इसे, मिले ज्ञान का सार।।

ॐ ह्रीं वीतरागसम्यग्दृष्टिपरद्रव्यानुरक्तभावरहितगुणप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(86)

रागो दोसो मोहो, जीवस्सेव दु अणण्णपरिणामा।
एदेण कारणेण दु, सद्दादिसु णत्थि रागादी।।400।।

रागद्वेष अरु मोह जीव के, ही परिणाम कहे हैं।
जो कि शुद्ध निश्चय नय से, चैतन्य अभिन्न रहे हैं।।

इस कारण शब्दादि विषय में, अज्ञानी है रागी।
निर्विकल्प सम्यग्दृष्टी, शब्दादिक में नहिं रागी।।400।।

दोहा – **सर्व विशुद्धज्ञानमय, है दशवाँ अधिकार।**
अर्घ्य समर्पित कर इसे, मिले ज्ञान का सार।।

ॐ ह्रीं शुद्धनिश्चयनयापेक्षया चैतन्याभिन्नपरिणामसमन्वितजीवतत्त्व-प्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(87)

अण्णदविएण अण्णदवियस्स णे कीरदे गुणविघादो।
तह्मा दु सव्वदव्वा, उप्पज्जंते सहावेण।।401।।

अन्य द्रव्य से अन्य द्रव्य के, गुण का घात न होता।
बाह्य निमित्तों के मिलने पर, भी तद्रूप न होता।।
अतः द्रव्य सब निज स्वभाव से, प्रगट हुए ही मानो।
शब्दादिक को सदा अचेतन, चेतन आत्मा जानो।।401।।

दोहा – **सर्व विशुद्धज्ञानमय, है दशवाँ अधिकार।**
अर्घ्य समर्पित कर इसे, मिले ज्ञान का सार।।

ॐ ह्रीं परमार्थेन निजनिजस्वभावोत्पन्न द्रव्यगुणोत्पादकरूपजीवादितत्त्व-प्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(88)

णिंदिदसंथुदवयणाणि, पोग्गला परिणमंति बहुगाणि।
ताणि सुणिदूण रूसदि, तूसदि य अहं पुणो भणिदो।।402।।

बहुत तरह के निन्दा स्तुति, रूप वचन माने हैं।
पुद्गल ही उन वचन रूप, परिणमित हुए जाने हैं।।
उन वचनों को सुनकर, अज्ञानी ऐसा है कहता।
मुझको ही यह कहा गया है, रोष तोष यह करता।।402।।

दोहा – **सर्व विशुद्धज्ञानमय, है दशवाँ अधिकार।**
अर्घ्य समर्पित कर इसे, मिले ज्ञान का सार।।

ॐ ह्रीं व्यवहारेण निंदास्तुतिरूपपुद्गलवचनेषु अज्ञानीजीवमान्यताप्रतिपादक-समयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(89)

पुग्गलदव्वं सद्दत्तपरिणदं, तस्स जदि गुणो अण्णो।
तह्मा ण तुमं भणिदो, किंचिवि किं रूससे अबुहो।।403।।

शब्द रूप में परिणत पुद्गल, द्रव्य अचेतन ही है।
वह न कभी चेतन होता, उसका गुण पुद्गल ही है।।
अतः तुझे तो उन शब्दों ने, कुछ भी नहीं कहा है।
तब तू अज्ञानी बनकर, उनमें क्यों रुष्ट हुआ है।।403।।

दोहा – **सर्व विशुद्धज्ञानमय, है दशवाँ अधिकार।**
अर्घ्य समर्पित कर इसे, मिले ज्ञान का सार।।

ॐ ह्रीं अचेतनशब्दरूपपरिणतपुद्गलद्रव्यप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(90)

असुहो सुहो व सद्दो, ण तं भणदि सुणसु मंति सो चेव।
ण य एदि विणिग्गहिदं, सोदविसयमागदं सद्दं।।404।।

शुभ या अशुभ शब्द पुद्गल, क्या तुझको यह कहते हैं।
हे प्राणी तू मुझको सुन ले, ऐसा नहिं कहते हैं।।
श्रोत्रेन्द्रिय अपने विषयागत, शब्द ग्रहण करता है।
निश्चयनय से आत्मा उनको, ग्रहण नहीं करता है।।404।।

दोहा – **सर्व विशुद्धज्ञानमय, है दशवाँ अधिकार।**
अर्घ्य समर्पित कर इसे, मिले ज्ञान का सार।।

ॐ ह्रीं शुभाशुभशब्दरूपपरिणतपुद्गलद्रव्यप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(91)

असुहं सुहं च रूवं, ण तं भणदि पेच्छमंति सो चेव।
णय एदि विणिग्गहिदुं, चक्खुविसयमागदं रूवं।।405।।

इसी तरह शुभ अशुभ रूप, क्या तुझसे यह कहता है ?
रे आत्मन् ! तू मुझे देख ले, ऐसा नहिं कहता है।।

नेत्रेन्द्रिय अपने विषयागत, रूप ग्रहण करता है।
निश्चय से तो जीव रूप को, ग्रहण नहीं करता है।।405।।

दोहा – **सर्व विशुद्धज्ञानमय, है दशवाँ अधिकार।**
अर्घ्य समर्पित कर इसे, मिले ज्ञान का सार।।

ॐ ह्रीं शुभाशुभपुद्गलवर्णपरिणतपुद्गलद्रव्यप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(92)

असुहो सुहो व गंधो, ण तं भणदि जिग्घ मंति सो चेव।
णय एदि विणिग्गहिदुं, घाणविसयमागदं गंधं।।406।।

शुभ या अशुभ गंध भी तुझसे, ऐसा कब कहते हैं ?
हे प्राणी तू मुझे सूँघ ले, कभी नहीं कहते हैं।।
घ्राणेन्द्रिय निज विषय समझ वह गन्ध ग्रहण करता है।
लेकिन आत्मा किसी गन्ध को, नहीं ग्रहण करता है।।406।।

दोहा – **सर्व विशुद्धज्ञानमय, है दशवाँ अधिकार।**
अर्घ्य समर्पित कर इसे, मिले ज्ञान का सार।।

ॐ ह्रीं शुभाशुभगंधमयपरिणतपुद्गलद्रव्यप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(93)

असुहो सुहो व रसो, ण तं भणदि रसय मंति सो चेव।
ण य एदि विणिग्गहिदुं, रसणविसयमागदं तु रसं।।407।।

ऐसे ही शुभ अशुभ रसों ने, कभी कहा क्या तुझको ?
मेरे मीठे कटुक स्वाद में, चख ले प्राणी मुझको ?
जिह्वा इन्द्रिय मात्र उसे निज, विषय समझ चखता है।
आत्मा निश्चय से षट् रसमय, भोजन नहिं चखता है।।407।।

दोहा – **सर्व विशुद्धज्ञानमय, है दशवाँ अधिकार।**
अर्घ्य समर्पित कर इसे, मिले ज्ञान का सार।।

ॐ ह्रीं शुभाशुभरसमयपरिणतपुद्गलद्रव्यप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(94)

असुहो सुहो य फासो, ण तं भणदि फास मंति सो चेव।
ण य एदि विणिग्गहिदुं, कायविसयमागदं फासं।।408।।

चउ इन्द्रिय व्यापार सदृश, स्पर्श भी नहिं कहता है।
मैं हूँ शुभ या अशुभ मुझे, छू लो यह नहिं कहता है।।
मात्र प्रथम इन्द्रिय स्पर्शन, उसे ग्रहण करता है।
आत्मा उस स्पर्श योग्य को, नहीं ग्रहण करता है।।408।।

दोहा – **सर्व विशुद्धज्ञानमय, है दशवाँ अधिकार।**
अर्घ्य समर्पित कर इसे, मिले ज्ञान का सार।।

ॐ ह्रीं शुभाशुभस्पर्शमयपरिणतपुद्गलद्रव्यप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(95)

असुहो सुहो य गुणो, ण तं भणदि बुज्झ मंति सो चेव।
ण य एदि विणिग्गहिदुं, बुद्धिविसमागदं तु गुणं।।409।।

इसी तरह से बाह्य द्रव्य के, गुण शुभ अशुभ कहे जो।
मुझे जान ले हे प्राणी तू, ऐसा नहीं कहें वो।।
मात्र बुद्धि निज विषयागत, गुण ग्रहण सदा करती है।
आत्मा लेकिन बाह्य गुणों को, नहीं ग्रहण करती है।।409।।

दोहा – **सर्व विशुद्धज्ञानमय, है दशवाँ अधिकार।**
अर्घ्य समर्पित कर इसे, मिले ज्ञान का सार।।

ॐ ह्रीं बाह्यद्रव्यस्यशुभाशुभगुणरूपपरिणतपुद्गलद्रव्यप्रतिपादक-समयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(96)

असुहं सुहं य दव्वं, ण तं भणदि बुज्झ मंति सो चेव।
ण य एदि विणिग्गहिदुं, बुद्धिविसयमागदं दव्वं।।410।।

अशुभ तथा शुभ द्रव्य जगत् के, तुझे नहीं यह कहते।
मेरे द्रव्यपने को तू, जाने ऐसा नहिं कहते।।

उन द्रव्यों को बुद्धि स्वयं का, विषय ग्रहण करती है।
आत्मा उन द्रव्यों को लेकिन, ग्रहण नहीं करती है।।410।।

दोहा – **सर्व विशुद्धज्ञानमय, है दशवाँ अधिकार।**
अर्घ्य समर्पित कर इसे, मिले ज्ञान का सार।।

ॐ ह्रीं शुभाशुभद्रव्यग्रहणरूपपुद्गलद्रव्यप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(97)

एवं तु जाणिदव्वस्स, उवसमेणेव गच्छदे मूढो।
णिग्गहमणा परस्स य, सयं च बुद्धिं सिवमपत्तो।।411।।

मूढ़ जीव यह जान समझ भी, उपशम भाव न करता।
प्रत्युत पर के ग्रहणरूप, परिणाम सदा ही करता।।
क्योंकि उसे कल्याणकारिणी, बुद्धि न प्राप्त हुई है।
अतः मुक्ति से दूर परात्मा, में ही दृष्टि रही है।।411।।

दोहा – **सर्व विशुद्धज्ञानमय, है दशवाँ अधिकार।**
अर्घ्य समर्पित कर इसे, मिले ज्ञान का सार।।

ॐ ह्रीं परद्रव्यग्रहणबुद्धिसमन्वितमूढ़ात्मनः परिणामप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(98)

कम्मं जं पुव्वकयं, सुहासुहमणेयवित्थरविसेसं।
तत्तो णियत्तदे अप्पयं, तु जो सो पडिक्कमणं।।412।।

कर्म शुभाशुभ विविध तरह के, विस्तारों से युत हैं।
पूर्व काल में किए गए, सब आत्मा से संयुत हैं।।
जो जीवात्मा उन कर्मों से, खुद निवृत्त हो जाता।
वह निश्चय प्रतिक्रमण रूप, निज आत्मा में खो जाता।।412।।

दोहा – **सर्व विशुद्धज्ञानमय, है दशवाँ अधिकार।**
अर्घ्य समर्पित कर इसे, मिले ज्ञान का सार।।

ॐ ह्रीं निश्चयप्रतिक्रमणस्वरूपप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(99)

कम्मं जं सुहमसुहं जह्मि य भावह्मि बज्झदि भविस्सं।
तत्ते णियत्तदे जो, सो पच्चक्खाणं हवे चेदा।।413।।

जिन भावों से भाविकाल में, कर्म शुभाशुभ बंधते।
ज्ञानी आत्मा उन भावों से, दूर सदा ही रहते।।
ऐसे वे ज्ञानी ही निश्चय-प्रत्याख्यान कहाते।
निश्चयचारित्री मुनि ही, यह उच्च अवस्था पाते।।413।।

दोहा – **सर्व विशुद्धज्ञानमय, है दशवाँ अधिकार।**
अर्घ्य समर्पित कर इसे, मिले ज्ञान का सार।।

ॐ ह्रीं निश्चयप्रत्याख्यानस्वरूपप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(100)

जं सुहमसुहमदिण्णं, संपडि य अणेयवित्थरविसेसं।
तं दोसं जो वेददि, सो खलु आलोयणं चेदा।।414।।

वर्तमान में उदयागत जो, कर्म विविध हैं माने।
नाना विस्तारों से विस्तृत, शुभ या अशुभ बखाने।।
जो ज्ञानी उन कर्मों को भी, दोष मान तजता है।
वह आत्मा निश्चय से आलोचन स्वरूप रहता है।।414।।

दोहा – **सर्व विशुद्धज्ञानमय, है दशवाँ अधिकार।**
अर्घ्य समर्पित कर इसे, मिले ज्ञान का सार।।

ॐ ह्रीं निश्चयआलोचनास्वरूपप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(101)

णिच्चं पच्चक्खाणं, कुव्वदि णिच्चं पि जो दु पडिक्कमदि।
णिच्चं आलोचेदि य, सो दु चरित्तं हवदि चेदा।।415।।

इस प्रकार का प्रतिक्रमण जो, ज्ञानी आत्मा करता।
प्रत्याख्यान व आलोचनमय, भाव निरन्तर करता।।
वही जीव निश्चय से चारित-वान कहा जाता है।
क्योंकि वहाँ तो शुक्लध्यान में, भेद न रह जाता है।।415।।

दोहा – **सर्व विशुद्धज्ञानमय, है दशवाँ अधिकार।**
अर्घ्य समर्पित कर इसे, मिले ज्ञान का सार।।

ॐ ह्रीं निश्चयप्रतिक्रमणप्रत्याख्यानआलोचनारूपवीतरागचारित्रप्रतिपादक-समयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(102)

वेदंतो कम्मफलं, अप्पाणं जो दु कुणदि कम्मफलं।
सो तं पुणोवि बंधदि, वीयं दुक्खस्स अट्ठविहं।।416।।

उदयागत कर्मों के फल जो, भोग भोगकर प्राणी।
कर्म तथा उसके विपाक को, अपनाता अज्ञानी।।
तब वह दुःख के बीज अष्ट, कर्मों से बंधने लगता।
पुनः पुनः कर कर्मबन्ध वह, जीव जगत में भ्रमता।।416।।

दोहा – **सर्व विशुद्धज्ञानमय, है दशवाँ अधिकार।**
अर्घ्य समर्पित कर इसे, मिले ज्ञान का सार।।

ॐ ह्रीं अज्ञानिजीवकर्मविपाकप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(103)

वेदंतो कम्मफलं, मये कदं जो दु मुणदि कम्मफलं।
सो तं पुणो वि बंधदि, वीयं दुक्खस्स अट्ठविहं।।417।।

जो अज्ञानी कर्मफलों का, वेदन कर यह माने।
मैं ही हूँ इन कर्मफलों का, कर्ता ऐसा जाने।।
फिर तो वह आठों प्रकार के, कर्म बांधने लगता।
दुःख बीज बोकर अज्ञानी, दुखमय फल ही चखता।।417।।

दोहा – **सर्व विशुद्धज्ञानमय, है दशवाँ अधिकार।**
अर्घ्य समर्पित कर इसे, मिले ज्ञान का सार।।

ॐ ह्रीं अज्ञानिजीवकर्मफलवेदनस्वरूपप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(104)

वेदंतो कम्मफलं, सुहिदो दुहिदो य हवदि जो चेदा।
सो तं पुणो वि बंधदि, वीयं दुक्खस्स अट्ठविहं।।418।।

जो आत्मा निज कर्मफलों का, वेदन भी करता है।
एवं उससे निज आत्मा को, सुखी दुःखी कहता है।।
वह चेतयिता फिर भी दुख का, बीज डालता रहता।
आठ तरह के कर्म बांधकर, अज्ञानी ही रहता।।418।।

दोहा – **सर्व विशुद्धज्ञानमय, है दशवाँ अधिकार।**
अर्घ्य समर्पित कर इसे, मिले ज्ञान का सार।।

ॐ ह्रीं अज्ञानिजीवसुखदुःखवेदनभावप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(105)

सत्थं णाणं ण हवदि जह्मा सत्थं ण याणदे किंचि।
तह्मा अण्णं णाणं, अण्णं सत्थं जिणा विंति।।419।।

जिनवाणी का रूप शास्त्र अरु, ज्ञान एक सम नहिं है।
शास्त्र मात्र कुछ नहीं जानता, चूँकी वह तो जड़ है।।
अतः ज्ञान तो भिन्न वस्तु, आत्मा का गुण कहलाया।
तथा शास्त्र भी अन्य पदारथ, जिनवर ने बतलाया।।419।।

दोहा – **सर्व विशुद्धज्ञानमय, है दशवाँ अधिकार।**
अर्घ्य समर्पित कर इसे, मिले ज्ञान का सार।।

ॐ ह्रीं निश्चयनयापेक्षया शास्त्रज्ञानयोः भेदप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(106)

सद्दो णाणं ण हवदि जह्मा सद्दो ण याणदे किंचि।
तह्मा अण्णं णाणं, अण्णं सद्दं जिणा विंति।।420।।

पुद्गल की शब्दावलियां भी, ज्ञान नहीं हो सकतीं।
क्योंकि शब्द कुछ नहीं जानते, जड़ता उनमें रहती।।

अतः ज्ञान तो भिन्न वस्तु, आत्मा का गुण कहलाया।
तथा ज्ञान से भिन्न शब्द है, जिनवर ने बतलाया।।420।।

दोहा – **सर्व विशुद्धज्ञानमय, है दशवाँ अधिकार।**
अर्घ्य समर्पित कर इसे, मिले ज्ञान का सार।।

ॐ ह्रीं जिनवरकथितज्ञानशब्दस्वरूपप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(107)

रूवं णाणं ण हवदि, जह्मा रूवं ण याणदे किंचि।
तह्मा अण्णं णाणं, अण्णं रूवं जिणा विंति।।421।।

पुद्गल मूर्तिक रूप ज्ञानमय, कभी नहीं हो सकता।
रूप न कुछ जाने स्वरूप को, क्योंकी उसमें जड़ता।।
अतः ज्ञान है भिन्न वस्तु, आत्मा का गुण कहलाया।
तथा ज्ञान से भिन्न रूप गुण, जिनवर ने बतलाया।।421।।

दोहा – **सर्व विशुद्धज्ञानमय, है दशवाँ अधिकार।**
अर्घ्य समर्पित कर इसे, मिले ज्ञान का सार।।

ॐ ह्रीं ज्ञानरूपयोः भेदप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(108)

वण्णो णाणं ण हवदि जह्मा वण्णो ण याणदे किंचि।
तह्मा अण्णं णाणं, अण्णं वण्णं जिणा विंति।।422।।

पुद्गल का गुण वर्ण ज्ञानमय, नहीं कहा जा सकता।
क्योंकि वर्ण कुछ नहीं जानता, उसमें केवल जड़ता।।
अतः ज्ञान को भिन्न वस्तु, आत्मा का गुण बतलाया।
तथा ज्ञान से भिन्न वर्ण को, जिनवर ने समझाया।।422।।

दोहा – **सर्व विशुद्धज्ञानमय, है दशवाँ अधिकार।**
अर्घ्य समर्पित कर इसे, मिले ज्ञान का सार।।

ॐ ह्रीं ज्ञानवर्णयोः भेदप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(109)

गंधो णाणं ण हवदि जह्मा गंधो ण याणदे किंचि।
तह्मा णाणं अण्णं, अण्णं गंधं जिणा विंति।।423।।

इसी तरह से गंध कभी नहिं, ज्ञानरूप हो सकता।
गंध न जाने निज सुगंध भी, उसमें नहिं चेतनता।।
अतः ज्ञान तो सदा भिन्न, आत्मा का गुण कहलाया।
तथा ज्ञान से भिन्न गन्ध को, जिनवर ने बतलाया।।423।।

दोहा – **सर्व विशुद्धज्ञानमय, है दशवाँ अधिकार।**
अर्घ्य समर्पित कर इसे, मिले ज्ञान का सार।।

ॐ ह्रीं ज्ञानगंधयोः भेदप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(110)

ण रसो दु हवदि णाणं, जह्मा दु रसो अचेदणो णिच्चं।
तह्मा अण्णं णाणं, रसं च अण्णं जिणा विंति।।424।।

रसना का गुण रस न कभी भी, ज्ञानमयी हो सकता।
रस न जानता निज रस को भी, उसका गुण है जड़ता।।
अतः ज्ञान तो भिन्न वस्तु, आत्मा का गुण कहलाया।
तथा ज्ञान से सदा भिन्न रस, जिनवर ने बतलाया।।424।।

दोहा – **सर्व विशुद्धज्ञानमय, है दशवाँ अधिकार।**
अर्घ्य समर्पित कर इसे, मिले ज्ञान का सार।।

ॐ ह्रीं ज्ञानरसयोः भेदप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(111)

फासो णाणं ण हवदि, जह्मा फासो ण याणदे किंचि।
तह्मा अण्णं णाणं, अण्णं फासं जिणा विंति।।425।।

पुद्गल का संस्पर्श गुण नहीं, ज्ञानरूप बन सकता।
रूप न जाने निज स्वरूप को, उसमें नहिं चेतनता।।
अतः सभी से भिन्न ज्ञान बस, स्वातमगुण कहलाया।
तथा ज्ञान से स्पर्शन को, भिन्न सदा बतलाया।।425।।

दोहा – **सर्व विशुद्धज्ञानमय, है दशवाँ अधिकार।**
अर्घ्य समर्पित कर इसे, मिले ज्ञान का सार।।

ॐ ह्रीं ज्ञानस्पर्शयोः भेदप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(112)

कम्मं णाणं ण हवदि जह्मा कम्मं ण याणदे किंचि।
तह्मा अण्णं णाणं, अण्णं कम्मं जिणा विंति।।426।।

पुद्गल निर्मित कर्म कभी नहिं, ज्ञानरूप बन सकते।
क्योंकि कर्म कुछ नहीं जानते, सदा अचेतन रहते।।
अतः सभी से भिन्न ज्ञान, आत्मा का गुण कहलाया।
तथा ज्ञान से भिन्न कर्म है, जिनवर ने बतलाया।।426।।

दोहा – **सर्व विशुद्धज्ञानमय, है दशवाँ अधिकार।**
अर्घ्य समर्पित कर इसे, मिले ज्ञान का सार।।

ॐ ह्रीं ज्ञानकर्मणोः भेदप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(113)

धम्मच्छिओ ण णाणं, जह्मा धम्मो ण याणदे किंचि।
तह्मा अण्णं णाणं, अण्णं धम्मं जिणा विंति।।427।।

सदा अचेतन धर्मद्रव्य नहिं, ज्ञानरूप बन सकता।
क्योंकि धर्म कुछ नहीं जानता, उसमें नहिं चेतनता।।
अतः धर्म से भिन्न ज्ञान, चेतन का गुण कहलाया।
तथा ज्ञान से भिन्न धर्म को, जिनवर ने बतलाया।।427।।

दोहा – **सर्व विशुद्धज्ञानमय, है दशवाँ अधिकार।**
अर्घ्य समर्पित कर इसे, मिले ज्ञान का सार।।

ॐ ह्रीं ज्ञानधर्मद्रव्ययोः भेदप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(114)

ण हवदि णाणमधम्मच्छिओ जं ण याणदे किंचि।
तह्मा अण्णं णाणं, अण्णमधम्मं जिणा विंति।।428।।

यूं ही द्रव्य अधर्म कभी नहिं, ज्ञान रूप बन सकता।
वह अधर्म कुछ नहीं जानता, क्योंकि उसे है जड़ता।।
अतः सभी से भिन्न ज्ञान, चेतन का गुण कहलाया।
तथा ज्ञान से भिन्न अधर्म है, जिनवर ने बतलाया।।428।।

दोहा – **सर्व विशुद्धज्ञानमय, है दशवाँ अधिकार।**
अर्घ्य समर्पित कर इसे, मिले ज्ञान का सार।।

ॐ ह्रीं ज्ञानअधर्मद्रव्ययोः भेदप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(115)

कालोवि णत्थि णाणं, जह्मा कालो ण याणदे किंचि।
तह्मा ण होदि णाणं, जह्मा कालो अचेदणो णिच्चं।।429।।

कालद्रव्य भी कभी नहीं, इस ज्ञानमयी बन सकता।
क्योंकि काल कुछ नहीं जानता, उसमें नहिं चेतनता।।
अतः इन्हों से भिन्न ज्ञान, आत्मा गुण कहलाया।
तथा ज्ञान से भिन्न काल को, जिनवर ने बतलाया।।429।।

दोहा – **सर्व विशुद्धज्ञानमय, है दशवाँ अधिकार।**
अर्घ्य समर्पित कर इसे, मिले ज्ञान का सार।।

ॐ ह्रीं ज्ञानकालद्रव्ययोः भेदप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(116)

आयासं पि ण णाणं, ण हवदि जह्मा ण याणदे किंचि।
तह्मा अण्णायासं, अण्णं णाणं जिणा विंति।।430।।

इसी तरह आकाश द्रव्य भी, ज्ञान नहीं बन सकता।
वह तो कुछ भी नहीं जानता, क्योंकी उसमें जड़ता।।
अतः सभी से भिन्न ज्ञान, चेतन का गुण कहलाया।
तथा ज्ञान से भिन्न द्रव्य, आकाश सदा बतलाया।।430।।

दोहा – **सर्व विशुद्धज्ञानमय, है दशवाँ अधिकार।**
अर्घ्य समर्पित कर इसे, मिले ज्ञान का सार।।

ॐ ह्रीं ज्ञानआकाशद्रव्ययोः भेदप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(117)

अज्झवसाणं णाणं, ण हवदि जह्मा अचेदणं णिच्चं।
तह्मा अण्णं णाणं, अज्झवसाणं तहा अण्णं।।431।।

उसी तरह से अध्यवसान भी, ज्ञान नहीं बन सकते।
वे तो कुछ भी नहीं जानते, क्योंकि अचेतन रहते।।

अतः सभी से भिन्न ज्ञान, चेतन का गुण कहलाया।
अध्यवसान ज्ञान से है, सर्वदा भिन्न बतलाया।।431।।

दोहा – **सर्व विशुद्धज्ञानमय, है दशवाँ अधिकार।**
अर्घ्य समर्पित कर इसे, मिले ज्ञान का सार।।

ॐ ह्रीं ज्ञानअध्यवसानयोः भेदप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(118)

जह्मा जाणदि णिच्चं, तह्मा जीवो दु जाणदो णाणी।
णाणं च जाणयादो, अव्वदिरित्तं मुणेयव्वं ।।432।।

जीव द्रव्य तो सदा जानता, इसीलिए ज्ञायक है।
वह तो ज्ञानी ही रहता, नहिं शेष द्रव्य ज्ञायक हैं।।
ज्ञान भाव तो निज ज्ञायक से, भिन्न नहीं है रहता।
ऐसा जानो हे भव्यात्मन्!, तुझमें ही प्रभु रहता।।432।।

दोहा – **सर्व विशुद्धज्ञानमय, है दशवाँ अधिकार।**
अर्घ्य समर्पित कर इसे, मिले ज्ञान का सार।।

ॐ ह्रीं नित्यज्ञायकस्वभावआत्मतत्त्वप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(119)

णाणं सम्मादिट्ठी, दु संजमं सुत्तमंगपुव्वगयं।
धम्माधम्मं च तहा, पव्वज्जं अज्झवंति बुहा।।433।।

अतः ज्ञान ही सम्यग्दृष्टी, और ज्ञान संयम है।
अंगपूर्वगत सूत्र ज्ञान ही, वह ही द्रव्य धरम है।।
ज्ञान ही निश्चय से अधर्म, दीक्षा भी ज्ञानमयी है।
महा तपस्वी ज्ञानी मुनि ने, मानी विधी यही है।।433।।

दोहा – **सर्व विशुद्धज्ञानमय, है दशवाँ अधिकार।**
अर्घ्य समर्पित कर इसे, मिले ज्ञान का सार।।

ॐ ह्रीं सम्यक्त्व-ज्ञान-संयम-सूत्रादिरूपज्ञानगुणप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(120)

अत्ता जस्सअमुत्तो, ण हु सो आहारगो हवदि एवं।
आहारो खलु मुत्तो, जह्मा सो पुग्गलमओ दु।।434।।

इस प्रकार जिसने निज आत्मा, को अमूर्त स्वीकारा।
वह निश्चय से ग्रहण नहीं, करता है कभी अहारा।।
पुद्गलमय होने से वह, आहार मूर्त कहलाता।
तब अमूर्त आत्मा कैसे, आहार ग्रहण कर पाता।।434।।

दोहा – **सर्व विशुद्धज्ञानमय, है दशवाँ अधिकार।**
अर्घ्य समर्पित कर इसे, मिले ज्ञान का सार।।

ॐ ह्रीं निश्चयनयापेक्षया निराहारिआत्मनः अमूर्तस्वभावप्रतिपादक-समयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(121)

णवि सक्कदि घित्तुं जे, ण मुंचिदुं चेव जं परं दव्वं।
सो कोवि य तस्स गुणो, पाउग्गिय विस्ससो वापि।।435।।

मूर्तिक वह आहार सदा, परद्रव्य कहा है जाता।
चेतन आत्मा अतः उसे नहीं, ग्रहण त्यजन कर पाता।।
यह कोई आत्मा का गुण, प्रायोगिक हो सकता है।
अथवा हो वैस्रसिकरूप, आत्मा में ही रहता है।।435।।

दोहा – **सर्व विशुद्धज्ञानमय, है दशवाँ अधिकार।**
अर्घ्य समर्पित कर इसे, मिले ज्ञान का सार।।

ॐ ह्रीं व्यवहारनयापेक्षया प्रायोगिकवैस्रसिकगुणसमन्वितआहारग्रहणरूप-जीवद्रव्यप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(122)

तह्मा दु विसुद्धो चेदा, सो णेव गिण्हदे किंचि।
णेव विमुंचदि किंचिवि, जीवाजीवाण दव्वाणं।।436।।

सार यही है जो विशुद्ध, चेतयिता आत्मा रहता।
वह तो जीवाजीव कोई, परद्रव्य ग्रहण नहीं करता।।

इसीलिए उन पर द्रव्यों को, तज भी कैसे सकता ?
ग्रहण त्यजन का भाव शुद्ध, आत्मा कर ही नहीं सकता।।436।।

दोहा – **सर्व विशुद्धज्ञानमय, है दशवाँ अधिकार।**
अर्घ्य समर्पित कर इसे, मिले ज्ञान का सार।।

ॐ ह्रीं विशुद्धचेतयितागुणसमन्वितपरद्रव्यग्रहणाभावरूपजीवद्रव्यप्रतिपादक-समयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(123)

पाखंडीयलिंगाणि य, गिहलिंगाणि य बहुप्पयाराणि।
घित्तुं वदंति मूढा, लिंगमिणं मोक्खमग्गोत्ति।।437।।

पाखंडी जो साधुलिंग, अथवा गृहिलिंग बताए।
बाह्य भेष प्रगटाने वाले, बहु प्रकार दर्शाए।।
उन लिंगों को धारण कर, अज्ञानी ऐसा कहते।
इसी लिंग से मोक्षप्राप्त हो, ऐसा मूढ़ समझते।।437।।

दोहा – **सर्व विशुद्धज्ञानमय, है दशवाँ अधिकार।**
अर्घ्य समर्पित कर इसे, मिले ज्ञान का सार।।

ॐ ह्रीं व्यवहारनयापेक्षया मुनिगृहिलिंगरूपमोक्षमार्गप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(124)

ण य होदि मोक्खमग्गो, लिंगं जं देहणिम्ममा अरिहा।
लिंगं मुइत्तु दंसणणाणचरित्ताणि सेवंते।।438।।

लेकिन श्री गुरु का सम्बोधन, उनको यह बतलाता।
केवल बाह्य लिंग से मुक्ती-मार्ग नहीं मिल पाता।।
देखो श्री अरिहंत देव भी, देह ममत को तजते।
बाह्य लिंग में ममत छोड़, रत्नत्रय को ही भजते।।438।।

दोहा – **सर्व विशुद्धज्ञानमय, है दशवाँ अधिकार।**
अर्घ्य समर्पित कर इसे, मिले ज्ञान का सार।।

ॐ ह्रीं निश्चयनयापेक्षया मुनिगृहिवेषममत्वरहितभावप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(125)

णवि एस मोक्खमग्गो, पाखंडीगिहिमयाणि लिंगाणि।
दंसणणाणचरित्ताणि, मोक्खमग्गं जिणा विंति।।439।।

पाखंडी मुनिलिंग तथा, गृहिलिंग न शिव का मारग।
सम्यग्दर्शन ज्ञान तथा, चारित्र सदा शिवमारग।।
ऐसा श्री जिनवर ने निज, अनुभव का सार बताया।
द्रव्यवेष धारी मुनियों ने, मोक्ष कभी नहिं पाया।।439।।

दोहा – **सर्व विशुद्धज्ञानमय, है दशवाँ अधिकार।**
अर्घ्य समर्पित कर इसे, मिले ज्ञान का सार।।

ॐ ह्रीं जिनवचनानुसारेण रत्नत्रयरूपमोक्षमार्गप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(126)

तह्मा जहित्तु लिंगे, सागारणगारिएहिं वा गहिदे।
दंसणणाणचरित्ते, अप्पाणं जुंज मोक्खपहे।।440।।

चाहे हों सागार तथा, अनगार लिंग से युत हों।
उन दोनों ही बाह्य लिंग को, धारें ममत सहित हों।।
उन लिंगों को तज रत्नत्रय, में निज को रत कर दो।
कुंदकुंद गुरु समझाते हैं, मुक्ति पथिक तुम बन लो।।440।।

दोहा – **सर्व विशुद्धज्ञानमय, है दशवाँ अधिकार।**
अर्घ्य समर्पित कर इसे, मिले ज्ञान का सार।।

ॐ ह्रीं सागार-अनगारगृहीतमोक्षमार्गप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(127)

मोक्खपहे अप्पाणं, ठवेहि चेदयहि झायदि तं चेव।
तत्थेव विहर णिच्चं, मा विहरसु अण्णदव्वेसु।।441।।

तू निज आत्मा को मुक्ती, पथ में स्थापन कर ले।
हे भव्यात्मन् ! उसी निजात्मा, का ही ध्यान तू कर ले।।

आत्मानन्द विहारी बनकर, उसका ही अनुभव कर।
तथा अन्य पर द्रव्यों में तू, कभी नहीं विचरण कर।।441।।

दोहा – **सर्व विशुद्धज्ञानमय, है दशवाँ अधिकार।**
अर्घ्य समर्पित कर इसे, मिले ज्ञान का सार।।

ॐ ह्रीं निजात्मध्यानप्रेरकजिनवचनप्रतिपादकसमयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(128)

पाखंडीयलिंगेसु व, गिहिलिंगेसु व बहुप्पयारेसु।
कुव्वंति जे ममित्तं, तेहि ण णादं समयसारं।।442।।

पाखंडी लिंगों में या, गृहलिंगों में जो रमते।
उनमें कर करके ममत्व, मिथ्यादृष्टी ही बनते।।
उनके द्वारा समयसार को, नहिं जाना जा सकता।
समयसार का सार तत्त्व-ज्ञानी मुनि ही पा सकता।।442।।

दोहा – **सर्व विशुद्धज्ञानमय, है दशवाँ अधिकार।**
अर्घ्य समर्पित कर इसे, मिले ज्ञान का सार।।

ॐ ह्रीं निश्चयनयापेक्षया मुनिआदिवेषममत्वरहितसमयसारज्ञानप्रतिपादक-समयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(129)

ववहारिओ पुण णओ, दोण्णिवि लिंगाणि भणदि मोक्खपहे।
णिच्छयणओ दु णेच्छदि, मुक्खपहे सव्वलिंगाणि।।443।।

मुनि श्रावक दोनों लिंगों में, मोक्षमार्ग रहता है।
इन दोनों को व्यवहारिक नय, मोक्षपंथ कहता है।।
लेकिन निश्चयनय इन सबको, मोक्षमार्ग नहिं कहता।
वह तो दोनों लिंग विकल्पों, को तज निज में रहता।।443।।

दोहा – **सर्व विशुद्धज्ञानमय, है दशवाँ अधिकार।**
अर्घ्य समर्पित कर इसे, मिले ज्ञान का सार।।

ॐ ह्रीं व्यवहारनयापेक्षया मुनिआदिवेषसहितमोक्षमार्गप्रतिपादक-समयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(130)

जो समयपाहुडमिणं, पठिदूण य अत्थतच्चदो णादुं।
अत्थे ठाहिदि चेदा, सो पावदि उत्तमं सोक्खं।।444।।

जो प्राणी इस समयसार को, पढ़कर ज्ञान लहेगा।
अर्थ तत्त्व से जान इसे, भावों से ग्रहण करेगा।।
वह ही पठन ग्रहण का फल, उत्तम सुख प्राप्त करेगा।
वीतराग निर्ग्रन्थ दिगम्बर, यति इस रूप बनेगा।।444।।

दोहा – **सर्व विशुद्धज्ञानमय, है दशवाँ अधिकार।**
अर्घ्य समर्पित कर इसे, मिले ज्ञान का सार।।

ॐ ह्रीं परमोत्तमसौख्यस्वभावसहितसमयप्राभृतस्वाध्यायफलप्रतिपादक-समयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

-पूर्णार्घ्य (शंभु छंद)-

मोक्ष व सर्वविशुद्ध ज्ञान, अधिकार नवम अरु दशवें हैं।
इन दोनों अधिकारों को, पूर्णार्घ्य यहाँ पर अर्पूं मैं।।
कुन्दकुन्द आचार्यप्रवर ने, भेद ज्ञान बतलाया है।
उसको पढ़ पूर्णार्घ्य चढ़ाने, भक्त पुजारी आया है।।

ॐ ह्रीं समयसारग्रन्थस्य मोक्ष-सर्वविशुद्धज्ञाननामद्वयधिकारयोः वर्णित सर्वगाथासूत्रेभ्यः पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शांतये शांतिधारा, दिव्य पुष्पांजलिः

जाप्य मंत्र – **ॐ ह्रीं शुद्धात्मतत्त्वप्रतिपादकश्रीसमयसारग्रंथाय नमः।**

जयमाला

तर्ज - सजधज कर.....।

श्री समयसार की पूजन कर, जयमाला गायेंगे।
सच्चे मन से हम अर्घ्य चढ़ा, ज्ञानामृत पायेंगे।।टेक.।।

जिनशास्त्र का स्वाध्याय, शिवपथ को दिखाएगा।
उस पर करे जो आचरण, मुनिवर बन जाएगा।।
जब तक मुनिवर नहिं बन सकें, मुनि के गुण गायेंगे।
सच्चे मन से हम अर्घ्य चढ़ा, ज्ञानामृत पायेंगे।।1।।

बंधक पुरुष जब बंधनों से, छूटना चाहे।
समझो तभी वह मुक्तिपथ में, बढ़ रहा आगे।।
पढ़ करके प्रकरण मोक्ष का, शुद्धातम ध्याएंगे।
सच्चे मन से हम अर्घ्य चढ़ा, ज्ञानामृत पायेंगे।।2।।

अपराध जो करता नहीं, निःशंक होता है।
त्रय रत्न की आराधना में, लीन होता है।।
प्रतिक्रमण आदि को करके भी, सब दोष नशायेंगे।
सच्चे मन से हम अर्घ्य चढ़ा, ज्ञानामृत पायेंगे।।3।।

निज आत्मा का जो कर्मों के, संग बंधन है।
अज्ञान की महिमा इसे, कहते जिन आगम हैं।।
ज्ञानार्जन करके शास्त्रों का, ज्ञानी बन जायेंगे।
सच्चे मन से हम अर्घ्य चढ़ा, ज्ञानामृत पायेंगे।।4।।

अधिकार सर्वविशुद्ध ज्ञान का, अन्त में कहा।
जिस ज्ञान को पा जिनवरों ने, शुद्ध पद लहा।।
'चन्दनामती' उस पद को हम भी, क्रम से पायेंगे।
सच्चे मन से हम अर्घ्य चढ़ा, ज्ञानामृत पायेंगे।।5।।

पूर्णार्घ्य अर्पण कर उभय, अधिकारों को नमन।
सम्पूर्ण गाथा सूत्रों को, शत शत करें वन्दन।।
श्री कुन्दकुन्द सूरीवर के, गुण को हम गायेंगे।
सच्चे मन से हम अर्घ्य चढ़ा, ज्ञानामृत पायेंगे।।6।।

ॐ ह्रीं मोक्षाधिकारसर्वविशुद्धज्ञानाधिकारसमन्वितश्रीसमयसारमहाग्रंथाय जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शांतये शांतिधारा, दिव्य पुष्पांजलिः।

-दोहा-

समयसार का सार ही, है जीवन का सार।
शेष द्रव्य का भार है, जीवन में निस्सार।।

।। इत्याशीर्वादः, पुष्पांजलिः।।

(पूजा नं.-6)

आचार्य श्री कुन्दकुन्द स्वामी की पूजन

(तर्ज –माता तू दया करके.....)

गुरुवर तेरी पूजा ही, मुझे पूज्य बनाएगी।
तेरी सौम्य सहज मुद्रा, मेरे मन में समाएगी।।
हे कुन्दकुन्द स्वामी, तव आत्मा कुन्दन है।
हे पद्मनन्दि स्वामी, तुमको मम वन्दन है।।
यह पादवन्दना ही, मनकलियाँ खिलाएगी।
गुरुवर तेरी पूजा ही, मुझे पूज्य बनाएगी।।1।।

आह्वानन करके प्रभो, तुझे मन में बिठाऊँ मैं।
पावन मन करके गुरो, अब पूजा रचाऊँ मैं।।
नैया तेरी भक्ती से, भवदधि तिर जाएगी।
गुरुवर तेरी पूजा ही, मुझे पूज्य बनाएगी।।2।।

ॐ ह्रीं श्री कुन्दकुन्दाचार्यप्रवर! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं।
ॐ ह्रीं श्री कुन्दकुन्दाचार्यप्रवर! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्री कुन्दकुन्दाचार्यप्रवर! अत्र मम सन्निहितो भव भव वष्त्सन्निधीकरणम्।

–अष्टक (शंभु छंद) –

जग के स्वादिष्ट रसों को भी, पीने से तृषा न शान्त हुई।
प्रभु कुन्दकुन्द की वाणी से, वह तृष्णा कुछ उपशांत हुई।।
हे योगीश्वर तव चरणों में, बस यही प्रार्थना है मेरी।
तुम सम ही ज्ञान मिले मुझको, बस यही कामना है मेरी।।1।।

ॐ ह्रीं श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेवाय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाह्रा

चन्दन का लेपन बहुत किया, पर मन का ताप न शान्त हुआ।
प्रभु कुन्दकुन्द की वाणी से, अब वह भी कुछ उपशान्त हुआ।।
हे योगीश्वर तव चरणों में, बस यही प्रार्थना है मेरी।
तुम सम ही ज्ञान मिले मुझको, बस यही कामना है मेरी।।2।।

ॐ ह्रीं श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेवाय संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीतिस्वाहा।

क्षत विक्षत आतम का उपवन, नहिं अक्षय पद को प्राप्त हुआ।
प्रभु कुन्दकुन्द की वाणी का, अब उस पर बहुत प्रभाव हुआ।।
हे योगीश्वर तव चरणों में, बस यही प्रार्थना है मेरी।
तुम सम ही ज्ञान मिले मुझको, बस यही कामना है मेरी।।3।।

ॐ ह्रीं श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेवाय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

इन्द्रिय विषयों की सौरभ ने, सारे जग को भरमाया है।
प्रभु कुन्दकुन्द की वाणी से, अब कुछ विराग मन भाया है।।
हे योगीश्वर तव चरणों में, बस यही प्रार्थना है मेरी।
तुम सम ही ज्ञान मिले मुझको, बस यही कामना है मेरी।।4।।

ॐ ह्रीं श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेवाय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पम् निर्वपामीति स्वाहा

मीठे नमकीन व्यंजनों को, खाकर भी क्षुधा सताती है।
प्रभु कुन्दकुन्द की वाणी से, वह भूख स्वयं नश जाती है।।
हे योगीश्वर तव चरणों में, बस यही प्रार्थना है मेरी।
तुम सम ही ज्ञान मिले मुझको, बस यही कामना है मेरी।।5।।

ॐ ह्रीं श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेवाय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मन की विद्युत तो चंचल है, मन में न उजाला कर सकती।
प्रभु कुन्दकुन्द की वाणी ही, मन में उजियारा भर सकती।।
हे योगीश्वर तव चरणों में, बस यही प्रार्थना है मेरी।
तुम सम ही ज्ञान मिले मुझको, बस यही कामना है मेरी।।6।।

ॐ ह्रीं श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेवाय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

धूपों की गंध ग्रहण करने, को घ्राणेन्द्रिय की आदत है।
प्रभु कुन्दकुन्द की वाणी का, हे भव्य! करो तुम स्वागत है।।
हे योगीश्वर तव चरणों में, बस यही प्रार्थना है मेरी।
तुम सम ही ज्ञान मिले मुझको, बस यही कामना है मेरी।।7।।

ॐ ह्रीं श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेवाय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

उत्तम फल खाकर के भी मेरे, मन की तृप्ती नहीं हुई।
प्रभु कुन्दकुन्द की वाणी सुन, मेरे मन में संतृप्ति हुई।।

हे योगीश्वर तव चरणों में, बस यही प्रार्थना है मेरी।
तुम सम ही ज्ञान मिले मुझको, बस यही कामना है मेरी।।8।।

ॐ ह्रीं श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेवाय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

आठों द्रव्यों की सामग्री से, अर्घ्य बनाया जाता है।
प्रभु कुन्दकुन्द की पूजा करके, फल अनर्घ्य मिल जाता है।।
हे योगीश्वर तव चरणों में, बस यही प्रार्थना है मेरी।
तुम सम ही ज्ञान मिले मुझको, बस यही कामना है मेरी।।9।।

ॐ ह्रीं श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेवाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दोहा – **तीन रत्न धारी गुरू, के पद में त्रय बार।**
शान्तीधारा मैं करूँ, होवे शान्ति अपार।।

शान्तये शांतिधारा।

कुन्द पुष्प की माल ले, पूजन करूँ महान।
बारह विध तप धार के, पा जाऊँ कुछ ज्ञान।।

दिव्य पुष्पांजलिः।

जयमाला

–शंभुछंद–

श्री देव शास्त्र गुरु तीन रत्न, जिनवरशासन में माने हैं।
ये सम्यक्दर्शनज्ञान और, चारित्र को देने वाले हैं।।
अरिहन्त सिद्ध हैं देव कहे, जिनने कर्मों का नाश किया।
अरिहन्त कथित जिनवाणी को ही, परम्परा से शास्त्र कहा।।1।।

गुरुदेव तीसरे रत्न कहे, इन महिमा का क्या कथन करूँ।
श्री कुन्दकुन्द गुरु के चरणों में, श्रद्धा से मैं नमन करूँ।।
अन्तिम श्रुतकेवलि भद्रबाहु की, परम्परा में कुन्दकुन्द।
कलिकाल के ये सर्वज्ञ हुए, इन अपरनाम है पद्मनन्दि।।2।।

श्री वक्रग्रीव अरु गृद्धपिच्छ, एवं श्रीएलाचार्य कहे।
इन पाँचों नामों से संयुत, श्रीकुन्दकुन्द आचार्य हुए।।

निज संघ सहित गिरनार गिरी, वन्दनकर धर्म प्रसार किया।
निर्ग्रन्थ दिगम्बर पंथ सत्य, यह धरती पर साकार किया।।3।।

आध्यात्मिक तप की वृद्धि से, चारणऋद्धी को प्राप्त किया।
फिर क्षेत्र विदेह में सीमंधर की, दिव्यध्वनि का पान किया।।
साहित्य जगत में कुन्दकुन्द, स्वामी का नाम प्रसिद्ध हुआ।
चौरासी पाहुड़, षट्खण्डागम, टीका का भी सृजन किया।।4।।

दशभक्ति, अष्टपाहुड़, पंचास्तिकाय व द्वादश अनुप्रेक्षा।
है समयसार अध्यात्म ग्रंथ, प्रवचनसारादिक को भी रचा।।
शुभ नियमसार अरु रयणसार, मुनियों का मूलाचार रचा।
इक कुरलकाव्य है काव्य महा, जिसमें कवियों का मान रखा।।5।।

इनमें कुछ ही उपलब्ध आज, हो रहे जिनागम हम सबको।
जिनको पढ़कर के तत्त्व ज्ञान भी, प्राप्त हो रहा हम सबको।।
आचार्य प्रवर तो चले गए, उनकी यशगाथा जीवित है।
दो सहस्र वर्ष के बाद आज भी, उनके गुण की कीमत है।।6।।

गुरुदेव! तुम्हारे गुणमणि की, जयमाल गूँथकर लाए हैं।
हे कुन्दकुन्द स्वामी! पूजन का, थाल सजा हम लाए हैं।।
गणिनी माता श्री ज्ञानमती की, शिष्या इक 'चन्दनामती'।
तुम गुणकीर्तन करते-करते, वह चाहे बस इक सिद्धगती।।7।।

ॐ ह्रीं श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेवाय जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शांतये शांतिधारा, दिव्य पुष्पांजलिः।

मंगलमय श्री वीर हैं, मंगल गणधर देव।
कुन्दकुन्द मंगल करें, मंगल धर्म सदैव।। 1।।

समयसार का सार ही, है जीवन का सार।
शेष द्रव्य का भार है, जीवन में निस्सार।।2।।

।। इत्याशीर्वादः, पुष्पांजलिं क्षिपेत् ।।

बड़ी जयमाला

तर्ज-चाँद मेरे आ जा रे.....

अर्घ्य का थाल सजाया है-2,
समयसार की जयमाल का पूर्णार्घ्य बनाया है।।टेक.।।

आत्मा का सार बताने वाला यह ग्रंथ हमारा।
श्री कुन्दकुन्द स्वामी का अध्यात्म ग्रंथ यह प्यारा।।
अर्घ्य का थाल सजाया है....।।1।।

सिद्धों को नमन कर प्राकृत की गाथाएँ रच डालीं।
दश अधिकारों से समन्वित टीका इसकी है निराली।।
अर्घ्य का थाल सजाया है....।।2।।

श्री अमृतचन्द्राचार्य व जयसेनाचार्य हुए हैं।
दोनों ने लिखी संस्कृत में सुन्दर सी टीकाएँ हैं।।
अर्घ्य का थाल सजाया है....।।3।।

श्री अमृतचंद्र की टीका का नाम आत्मख्याति है।
तात्पर्यवृत्ति टीका श्री जयसेनाचार्य की कृति है।।
अर्घ्य का थाल सजाया है....।।5।।

कुल मिल चउ सौ चव्वालिस गाथाएँ इसमें लिखी हैं।
श्री अमृतचंद्र की चउ शत पन्द्रह गाथाएँ मिली हैं।।
अर्घ्य का थाल सजाया है....।।5।।

दोनों संस्कृत टीका का हिन्दी अनुवाद हुआ है।
गणिनी माँ ज्ञानमती ने सुन्दर अनुवाद किया है।।
अर्घ्य का थाल सजाया है....।।6।।

उस ज्ञानज्योति टीका को पढ़ना अवश्य है सबको।
निश्चय व्यवहार नयों का करना है समन्वय हमको।।
अर्घ्य का थाल सजाया है....।।7।।

निर्ग्रन्थ दिगम्बर मुनि ही साकार इसे करते हैं।
उपसर्ग परीषह सहकर आतम सिद्धी करते हैं।।
अर्घ्य का थाल सजाया है....।।8।।

इस समयसार पूजन की जयमाला मिलकर गाओ।
पूर्णार्घ्य चढ़ा श्रुत सम्मुख ''चन्दनामती'' सुख पाओ।।
अर्घ्य का थाल सजाया है....।।9।।

ॐ ह्रीं शुद्धात्मतत्त्वप्रतिपादकचतुश्चत्वारिंशदधिकचतुःशतगाथासूत्रसमन्वित-श्रीसमयसारमहाग्रंथाय महा जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शांतये शांतिधारा, दिव्य पुष्पांजलिः।

-दोहा-

समयसार का सार ही, है जीवन का सार।
शेष द्रव्य का भार है, जीवन में निस्सार।।

।। इत्याशीर्वादः, पुष्पांजलिः ।।

प्रशस्ति

-दोहा-

शांति-कुंथु-अरनाथ को, नमन करूँ त्रयबार।
हस्तिनागपुर में हुए, तीनों के अवतार।।1।।

उनके चार कल्याण से, है यह तीर्थ पवित्र।
इस पावन भू पर बना, जम्बूद्वीप प्रसिद्ध।।2।।

तीनों प्रभु त्रयपद सहित, हुए त्रिजग के ईश।
उनकी तीनों मूर्तियाँ, बनी नमूँ नत शीश।।3।।

गणिनी माता ज्ञानमति, का है ज्ञान प्रभाव।
जिनकी कृपा प्रसाद से, हुए अनेकों कार्य।।4।।

उनकी शिष्या चन्दना-मती आर्यिका नाम।
गुरु आशीषों का मुझे, मिला आज वरदान।।5।।

गुरूप्रेरणा से लिखा, मैंने नया विधान।
समयसार जी ग्रंथ को, पढ़कर पाया ज्ञान।।6।।

वीर संवत् पच्चीस सौ, छत्तिस का शुभ वर्ष।
श्रुतपंचमि तिथि को किया, पूर्ण इसे मन हर्ष।।7।।

यह विधान करके सभी, करो भाव निज शुद्ध।
किन्तु भटकना नहिं कभी, करके भाव अशुद्ध।।8।।

समयसार साकार है, जिनमुद्रा में आज।
उनकी भक्ति प्रसाद से, मिले ज्ञान साम्राज्य।।9।।

कुंदकुंद स्वामी रचित, समयसार यह ग्रंथ।
इसको पढ़कर बन गये, कितने ही निर्ग्रन्थ।।10।।

जब तक है इस ग्रंथ का, धरती पर अस्तित्व।
चिरंजीव हो पाठ यह, ज्ञानामृत सुप्रसिद्ध।।11।।

समयसार मण्डल विधान की आरती

–आर्यिका सुव्रतमती

समयसार मण्डल विधान की, आरति कर लो आज।
श्री कुन्दकुन्द स्वामी की महिमा, सब मिल गाओ आज।।
आओ हम सब उतारें प्रभू आरती, आओ सब मिल उतारे प्रभू आरती।।

महावीर की परम्परा में, गौतम गणधर स्वामी।
कुन्दकुन्द आचार्य प्रवर हैं, अध्यात्म जगत के स्वामी।।
आओ हम सब उतारें प्रभू आरती, आओ सब मिल उतारे प्रभू आरती।।1।।

आत्मा का शुद्धात्म रूप, इस समयसार में बताया।
निश्चय और व्यवहारनयों का, सुन्दर रूप दिखाया।।
आओ हम सब उतारें प्रभू आरती, आओ सब मिल उतारे प्रभू आरती।।2।।

समयसार की गाथाओं पर, तात्पर्यवृत्ति टीका।
श्री जयसेनाचार्य ने लिख दी, सुन्दर संस्कृत टीका।।
आओ हम सब उतारें प्रभू आरती, आओ सब मिल उतारे प्रभू आरती।।3।।

श्री अमृतचन्द्र सूरी की है, आत्मख्याति टीका।
गणिनी माता ज्ञानमती ने, लिखी ज्ञानज्योति टीका।।
आओ हम सब उतारें प्रभू आरती, आओ सब मिल उतारे प्रभू आरती।।4।।

श्री चन्दनामती मात ने, सुन्दर विधान रचा है।
समयसार की गाथाओं का, पद्यानुवाद किया है।।
आओ हम सब उतारें प्रभू आरती, आओ सब मिल उतारे प्रभू आरती।।5।।

इस मण्डल विधान को करके, भक्तों पुण्य कमाओ।
'सुव्रतमती' की यही कामना, दुख संकट शोक नशाओ।।
आओ हम सब उतारें प्रभू आरती, आओ सब मिल उतारे प्रभू आरती।।6।।

समयसार भजन

(मण्डल की प्रदक्षिणा करते हुए यह भजन पढ़ें)

–ब्र. कु. स्वाति जैन (संघस्थ)

श्री समयसार का पाठ, करो सब ठाट बाट से मिलके,
जिनमत श्रद्धानी बनके।।टेक.।।

प्रभु महावीर के शासन में।
श्री कुन्दकुन्द आचार्य बने।।
उनकी कृतियों को श्रद्धाभाव से पढ़ लें,
जिनमत श्रद्धानी बनके।।1।।

चौरासी पाहुड़ ग्रंथ लिखें।
उनमें उपलब्ध नहीं सब हैं।।
दशभक्ति व मूलाचार आदि भी समझें,
जिनमत श्रद्धानी बनके।।2।।

है समयसार अध्यात्म ग्रंथ।
मुनियों का यह शुद्धात्म ग्रंथ।।
श्रावक समझें गुरुमुख से इसको पढ़के,
जिनमत श्रद्धानी बनके।।3।।

इस पर दो टीका लिखी गईं।
हिन्दी टीका दोनों पे हुई।।
श्री ज्ञानमती माता की टीका पढ़ लें,
जिनमत श्रद्धानी बनके।।4।।

उनकी शिष्या चन्दनामती।
जिनने विधान यह रचा सही।।
हम भी पा जावें ज्ञान 'स्वाति' इसे करके,
जिनमत श्रद्धानी बनके।।5।।

समयसार भजन

प्रस्तुति–प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चंदनामती

मैं समयसार को निज आतम में ध्याऊँगा।
बन अन्तरात्म शुद्धात्म भावना भाऊँगा।।
ये क्या है? परमागम है, आध्यात्मिकता का साधन है।
यह कुन्दकुन्द का कुन्दन है, जिससे होता मन पावन है।।
ये क्या है.....

प्रभु कुन्दकुन्द ने समयसार को समझाया,
आत्मा का सहज स्वरूप ग्रंथ में दरसाया।
ये क्या है? प्रभु महिमा है, आतम स्वभाव की गरिमा है।
ये जीवों का कल्याण करे, संसार जलधि से पार करे।।
ये क्या है.....

श्रावक गृहस्थ में भी वैरागी बन करके,
शुद्धात्म अवस्था किंचित् भी नहिं पा सकते,
ये क्या है? जिनवाणी है-जन-जन की यही कल्याणी है।
मुनिधर्म हमें सिखलाती है, आत्मा का सार बताती है।।
ये क्या है.....

अशुभोपयोग को तज हम शुभ में लग जावें।
यह भाव 'चंदनामती' शुद्धता पा जावें।
ये क्या है? जिन भक्ति है, बस समयसार की शक्ति है।
जो जन इसका श्रद्धान करें, वे निज स्वरूप का पान करें।।
ये क्या है.....